राजसिंह
वा
चंचलकुमारी

कालेज सेक्शन

स्वास्थ्यरक्षा, अँगरेजी शिक्षा चार भाग, हिन्दी बंगला शिक्षा, कालज्ञान
के रचयिता और अरेबियन नाइट्स, हिन्दी भगवद्गीता,
उर्दू अँगरेजी शिक्षा आदि पुस्तकोंके
अनुवादक

पण्डित हरिदास वैद्य

द्वारा अनुवादित
और

हरिदास एण्ड कम्पनी द्वारा

प्रकाशित।

श्री गोपीनाथ पुरोहित पुस्तकालय
संख्या ....
तारीख ....
वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (जयपुर)

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोडके नरसिंह प्रेसमें
बाबू रामप्रताप भार्गव
द्वारा मुद्रित
सन् १९१२ ई०

पहली बार १०००] [मूल्य ॥)

Registered under section XVIII of act XXV of 1867
All rights reserved.

भूमिका ।
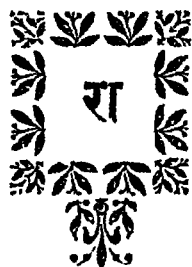
राजसिंहका अनुवाद पहले हमने वीर-भारत नामक पत्रमें पढ़ा था। उस समय ही हमारा विचार इसके अनुवाद करनेका था, किन्तु जब एक सज्जन इसका अनुवाद कर चुके थे तब हमने इसका अनुवाद करना व्यर्थ समझा।

इधर हमारे मित्र बाबू रामप्रतापजी भार्गव एक भार्गव महाशय से उनकी बनायी हुई "औरङ्गज़ेब और चञ्चलकुमारी" ले आये। मुझे उर्दू की पुस्तक बहुत ही पसन्द आयी; क्योंकि उसकी भाषा और उसकी सजावट बहुत ही दिलचस्प और निराली थी। मैं उसीका अनुवाद अपने प्रेमी पाठकोंके सामने रखता हूँ। आशा है कि, उपन्यास-प्रेमियोंको यह अनुवाद खूब पसन्द आयेगा।

एक बात और है कि, इसके अन्तिम भागमें गुजराती की "रूपनगरनी राजकँवरी" से भी सहायता ली गयी है।

भवदीय

हरिदास।

॥ श्रीः

राजसिंह वा चञ्चलकुमारी ।

पहला खण्ड ।

पहला परिच्छेद ।

हमझोलियोंकी चहलपहल ।

जिस समयसे हमारा यह उपन्यास सम्बन्ध रखता है उस समय इस पुण्यभूमि भारतवर्षमें हिन्दुओंका अपना राज्य नहीं था। हिन्दू राजा महाराजा, जहाँ तहाँ पड़े हुए, अपनी ज़िन्दगीके दिन पूरे करते थे। काश्मीरसे कन्या कुमारी तक और अटकसे कटक तक मुसल्मानों-

का ही दौर दौरा था। देशमें सल्तनत मुग़ल बादशाहत की ही तूती बोल रही थी। औरङ्गज़ेब, अपने पूज्य पिता शाहजहाँको क़ैद करके और अपने सहोदर भाइयोंकी हत्या करके, दिल्लीके तख्त पर बैठा था। इसने हिन्दुओंकी नाकों दम कर दिया था; हज़ारों मन्दिर नेस्तनाबूद कर दिये थे। इस बादशाहका रौब-दौब ऐसा जम गया था कि किसीकी चूँ करनेकी हिम्मत न होती थी। बड़े बड़े राजा महाराजा इसके भयके मारे थर थर काँपते थे। क्योंकि बड़ी बड़ी राजधानियाँ इसके ज़रा भृकुटी टेढ़ी करनेसे ही नष्ट भ्रष्ट हो जाती थीं। इस बादशाहने हिन्दू राजाओं और हिन्दू प्रजाके साथ कैसा व्यवहार किया उसकी गवाही इतिहासके वह सफ़े खूब अच्छी तरह दे रहे हैं जिनमें इस बादशाहत का वर्णन है। इस विषयको और अधिक लिखकर हम अपने प्रिय पाठकों का समय नष्ट नहीं किया चाहते। हमें तो इस समय उस राज्यका ज़िक्र करना है जो उस समय रूपनगरके नामसे पुकारा जाता था और जहाँ राजा विक्रमसिंह राज्य करते थे।

यह राज्य कुछ ऐसा लम्बा चौड़ा न था; किन्तु मनुष्य-संख्या और क्षेत्रफल के हिसाब से किसी दूसरी रियासत से एक क़दम भी पीछे न था। इस राज्य की ज़मीन उपजाऊ और जल-वायु स्वास्थ्यके लिये बहुत ही

लाभदायक थी। जगह जगह मुसाफ़िरों के आने जानेके लिये पक्की सड़कें बनी हुई थीं। सड़कों के किनारे दोनों ओर ऊँचे ऊँचे सघन छायादार दरख़्तों की क़तारें खड़ी थीं; जिनकी छाया में थके माँदे यात्री अपनी थकान उतारते और राजा को आशीर्व्वाद देते थे। मुक़ाम मुक़ाम पर धर्मशालाएँ बनी हुई थीं; जिनमें यात्रियों को ठहरने का सब तरह का सुभीता था। नगरमें चौड़ी चौड़ी सड़कें और कुशादा गलियाँ थीं। सैकड़ों दुखने, तिखने और सतखने मकान तने हुए खड़े आस्मान से बातें करते थे। जगह जगह लोगों के दिल बहलाने के लिये छोटे छोटे बग़ीचे लगे हुए थे। नगर-द्वारोंके निकट पक्के तालाब, बावड़ी और कूएँ थे जिनका निर्मल नीर बहुत ही मीठा और हितकारी था। बहुत तारीफ़ लिखने से क्या, रूपनगर रूप-नगर ही था। राजा विक्रमसिंह भी सच्चे न्यायी और मिलनसार राजा थे। वह प्रजा-रञ्जन करना ही अपना कर्त्तव्य धर्म समझते थे। उन्होंने अपनी प्रजा के सुखके सामान जुटानेमें कोई बात उठा न रक्खी थी। राजा विक्रमसिंहने रूपनगरको दूसरी इन्द्र-पुरी बना दिया था। जो कोई रूपनगरको जाता था वह रूपनगरका ही हो लेता था।

राजधानी में एक राज-बाग़ भी था जो अपनी शोभा से इन्द्र के नन्दन कानन का भी सिर नीचा करता था।

इस समय ऋतुराज के प्रादुर्भाव से वृक्षों में नये नये पत्ते निकल आये थे। मौसम बहार के आनेसे वृक्षों में बहार आगयी थी। पतझड़ में जो वृक्ष सूख सूख कर रुण्ड मुण्ड और काँटे से होगये थे इस वक्त नये नये पत्तों से ऐसे भर गये थे कि पहिचाने नहीं जाते थे। हरी भरी डालियों को नज़ाकत के मारे अपना बोझ सम्हालना भी कठिन होगया था। कहीं गुलाब, कहीं केतकी, कहीं चम्पा और कहीं चमेली खिल रही थी। वृक्षों से झड़ झड़ कर फूलों ने सब्ज़ घास पर फूलों का फ़र्श सा बना दिया था। मालुम होता था कि किसीने सब्ज रङ्ग की मखमल पर गुलकारी की है। जगह जगह छोटी छोटी नालियों में निर्मल नीर झरझर बह रहा था। कहीं पपीहा पी पी कर जान खो रहा था, कहीं कोयल कूक रही थी, कहीं मोर पुच्छ-गुच्छ फैलाये आनन्दमें मस्त हो नाच रहे थे। हवाके ठण्डे ठण्डे झोकों में ऐसी मस्ती आगयी थी कि वह इधर से उधर इठलाते हुए निकलते थे और मुँह-बन्द कलियोंके दिलों में गुदगुदी होने लगती थी। छोटे छोटे सुन्दर रङ्ग बिरङ्गे पक्षी इस शाखसे उस शाखपर उछलते कूदते फिरते भले मालुम होते थे। उस अनुपम बाग़में एकबार जाकर फिर निकलने को जी नहीं चाहता था।

बाग़ के बीचों बीच एक बहुत बड़ा आलीशान

महल आस्मान से बातें कर रहा था। इस महल में जो रङ्गामेज़ी और पच्चीकारी का काम हो रहा था उसे देख कर कारीगर का हाथ चूम लेने को जी चाहता था। ऐश-इशरत के सभी ज़रूरी सामान अपनी २ जगह क़रीने से सजे हुए थे। इस महल का नाम-"विक्रम निवास" था। कभी कभी महाराज इस बाग़को सैरको चले आते थे। लेकिन आज तो यहाँ और ही गुल खिल रहा था। एक बरामदे में पन्द्रह सोलह सुन्दरियों का झुण्ड अठखेलियाँ कर रहा था। सभी सोलह सोलह वर्ष या सोलह से भी कम उम्र की मालुम होती थीं। उनके बदन पर सब्ज़ और आस्मानी रंग की ओढ़नियाँ बहुत ही अच्छी मालुम होती थीं। जवानी के जोश के मारे छातियों पर आँचल नहीं टिकते थे। कोई महँदी लगे हुए गोरे गोरे हाथों से फूल तोड़ कर गजरे बनाती थी, कोई उन्हें अपनी उन बालियों में लटकाती थी जो उसके गोरे गोरे गालों पर नखरे के साथ झूम रही थीं। सब की सब अल्हड़ मालुम होती थीं। कोई किसी पर फूल फेंक फेंक कर मारती थी और कोई किसीके पीछे योंही छेड़छाड़ करती हुई दौड़ रही थी। उनसे निचला नहीं बैठा जाता था। आपस के हँसी ठट्ठे में ऐसी मस्त थीं कि उन्हें अपने तन बदन की भी सुध नहीं थी। उन स्वर्गीय अनुपम रूप लाव-

रूपवती सुन्दरियोंके मारे वह बाग़ दूसरा परिस्तान या इन्द्रका अखाड़ा सा हो रहा था।

जब ये सब सुन्दरियाँ आपसमें हँसी मज़ाक़ कर रही थीं उसी समय एक बूढ़ी औरत वहाँ आयी। इस बुढ़िया ने सत्तर साल पार कर दिये थे। इसके मुँहमें दाँत न पेटमें आतें थी। उसकी यह हालत देखने से मालुम होता था कि बुढ़िया ने दुनियाके बहुत से उलट फेर देखे हैं। उसकी बगलमें एक गठरी सी थी। वह आते ही बुढ़ापेकी दुर्व्वलता के मारे एक वृक्षके नीचे कराहती हुई बैठ गयी। वह वहाँ बैठी ही थी, कि उन सुन्दरियोंकी नज़र उस पर पड़ गयी। उन सबमें जो एक बहुत ही चुस्त चालाक और तेज़ तर्रार थी बुढ़िया के पास आकर बोली,—

सुन्दरी—बुढ़िया! तेरी गठरीमें क्या चीज़ है? क्या हमें भी दिखायेगी?

बुढ़िया—बेटी! मेरे पास क्या है जो तुझे दिखाऊँ। यही दो चार तस्वीरें पड़ी हुई हैं जिन्हें बेचकर अपना पेट पालती हूँ।

सुन्दरी—लाओ तो सही। देखें, किसकी तस्वीरें हैं। शायद हमारे भी कोई तस्वीर पसन्द आजाय और हम भी ख़रीद कर सकें।

बुढ़िया—बेटी! खुश रहो। तुम्हारा ही तो

भरोसा है। तुम्हीं लोगोंसे मेरा गुज़र होता है। मेरे पास कुछ अगले बादशाहों की तस्वीरें हैं।

सुन्दरी—ए भलीमानस! बातें ही बनायेगी या कुछ दिखलायेगी भी?

बुढ़ियाने सुन्दरीकी बलायें लेकर, एक हाथीदाँतकी तख़्तीपर खिंची हुई तस्वीर निकालकर उसे दिखाई और कहा, बताओ यह तस्वीर किस की है। ये तस्वीरें ऐसे ऐसे नामी चित्रकारोंकी बनाई हुई हैं जिनके हाथ की सफ़ाई देखकर चीनके चितकार तक दाँतों तले अँगुली दबाने लगते हैं।

सुन्दरी—क्या हमने ज्योतिष और रमल पढ़ा है? बिना देखे सुने किसीका हाल क्या मालुम? तू ही बतला यह तस्वीर किसकी है।

बुढ़िया—बेटी! यह शाहजहाँ बादशाह की तस्वीर है।

सुन्दरी—वाह! बड़ी बी वाह!! हमसे उड़ती हो। अब क्या हमारे ऐसी भी आँखें नहीं हैं। यह तस्वीर तो ठीक हमारे बाबाकी है। इसे हमको देदो।

सुन्दरीकी यह बात सुनते ही सबकी सब खिलखिला कर हँस पड़ीं।

दूसरी सुन्दरी—(हँसकर) वाह बहिन! तुम भी खूब हो। भला हमारे सामने कहीं झूठ चल सकती है।

दाईसे पेट नहीं छिपता। यह तस्वीर तुम्हारे बाबाकी है या तुम्हारे शौहरकी? (दूसरी सहेलियोंकी तरफ़ मुँह करके) एक दिन इनकी दाढ़ीमें बिच्छू घुस गया था। वह तो ख़ैर हुई बिचारी दासीनेझाड़ूसे गिरा दिया; नहीं तो अब तक कबके राम-नगर पहुँच गये होते।

दूसरी सुन्दरीकी बातें सुनकर सारी सहेलियाँ हँसते हँसते लोट गईं।

बुढ़ियाने फिर एक और तस्वीर निकाली और बोली देखो, यह जहाँगीर बादशाहकी तस्वीर है। इतने में एक चुलबुली और अल्हड़ सुन्दरीने वह तस्वीर बुढ़ियाके हाथसे लेली और उसकी क़ीमत पूछी। बुढ़ियाने उस तस्वीरके बहुत कुछ दाम बतलाये। इस पर उस सुन्दरीने कहा, यह क़ीमत तो इस तस्वीर की हुई। जिसकी यह तस्वीर है उसे नूरजहाँने कितने को मोल लिया था?

बुढ़िया—(हँसकर) मुफ़्त में।

वही सुन्दरी—बस, फिर असल की क़ीमत तो यह हुई तब नक़ल के क्या दाम हुए? हिसाबसे तो अपने पाससे हमें कुछ और फेरो तब तो हम ख़रीदार बनेंगी।

यह बात सुनते ही सबकी सब ठहाका मारकर हँस पड़ीं।

बुढ़िया—(तस्वीर हाथसे छीनकर और मिज़ाज बिगाड़ कर) बस, अब मैं तुम्हें कोई तस्वीर न दिखाऊँगी। वृथा हैरान करती हो। लेती देती कुछ नहीं। ख़ाली हँसी दिल्लगी सूझी है। हँसना और बात है, सौदा ख़रीदना और बात है। अब तो राजकुमारी जी आवेंगी तभी तस्वीरें दिखाऊँगी और जभी कुछ सौदा होगा।

बुढ़ियाकी बात सुनते ही छः सात औरतें एक साथ बोल उठीं,—वाहरे बुढ़िया वाह! हम हीं तो राजकुमारी हैं। क्या हमारे सिवा भी कोई राजकुमारी और पैदा हुई है?

बुढ़िया इनकी बातें सुनकर सन्नाटेमें आगयी और आँखें फाड़ फाड़ कर चारों ओर देखने लगी। उधर सब सहेलियाँ हँसते हँसते लोट पोट होने लगीं। किसीके मुँहसे साबत बात न निकली। बुढ़िया बेचारी और भी खिसियानी हो गयी। जब किसी क़दर हँसी मज़ाक़का दौर-दौरा कम हुआ; तब बुढ़िया ने पीछे फिर कर देखा तो उसे एक मृगनयनी चम्पक वर्णी बैठी हुई दिखाई दी। यह सुन्दरी अपनी सुन्दरतासे इन्द्रकी अप्सराओंको लज्जित करती थी। विधाताने इसके गढ़नेमें ख़ूबही कारीगरी ख़र्च की थी और नखसिखसे सँवारनेमें कोई बात उठा न रक्खी

थी। इसकी अवस्था कोई सोलह वर्षकी होगी। चेहरा देखकर रतिका भी मान खण्डन होता था। इसका चेहरा गोल गोल और गाल गुलाबी थे। दाँतों की पंक्ति मोतियोंकी लड़ी नाईं चमकती थी। नयनोंके आगे मृगके नयन भी झख मारते थे। कानोंमें कर्नफूल और बालियाँ पड़ी हुई थीं और जुल्फोंके बाल गालोंपर लह-रा रहे थे। जोबनोंका उभार था। होठोंसे मुस्कराहटकी झलक निकलती थी। सूरत ऐसी भोली भाली थी कि देखनेवालेका दिल हाथसे निकल जाता था। देखने-वालेको वह मानवी न मालुम होती थी किन्तु स्वर्गीय अप्सराओंकी सरताज मालुम होती थी। बुढ़ियाने मनमें समझा, कि चतुर शिल्पियोंने बन-देवीकी मधुमय मूर्त्ति बनाकर यहाँ रख दी है। वह टकटकी बाँधकर देखने लगी और बिल्कुल न समझी की यह मूर्त्ति नहीं है; बल्कि रक्त माँसकी बनी हुई अनङ्ग-पत्नीका गर्व खर्व करनेवाली सचमुचकी अनुपम रमणी मूर्त्ति है। आखिर उससे न रहा गया। अधीर होकर पूछने लगी।

बुढ़िया—बेटी! यह तस्वीर मैदानमें क्यों लगीहुई है?

बुढ़ियाकी बात सुनकर सब की सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं और इतनी हँसीं कि पेटमें बल पड़ गये। उन सबके हँसनेसे बुढ़िया और भी लजा गयी। उसकी आँखोंसे आँसूओंकी बूँदें टपकने लगीं।

बुढ़ियाकी यह हालत देखकर उस मृगनयनी (जिसे बुढ़िया अबतक निर्जीव मूर्त्ति समझे हुए थी) ने वीणा विनिन्दित स्वरसे पूछा,—"बुढ़िया ! रोती क्यों है ?"

अब आवाज़ सुनकर बुढ़ियाको विश्वास हो गया कि यह निर्जीव मूर्त्ति नहीं है। या तो यह राजकुमारी है या इस महलकी रानी है। मालुम होता है कि ये सब इसकी सहेलियाँ हैं। यह बात ख़यालमें आते ही बुढ़िया ने सिर झुका लिया।

पाठक ! आप लोग जानते होंगे कि बुढ़ियाने राजकुमारीको महाराज विक्रमसिंह की कन्या समझकर प्रणाम किया। बुढ़ियाने राजकुमारी होनेके कारण सिर नहीं नवाया था ; किन्तु अपूर्व्व स्वर्गीय सौन्दर्य्यके सामने सिर झुकाया था। खूबसूरती भी अजब चीज़ है। इसपर अच्छे अच्छे योगी यतियों और विरागियोंकी नियत डिग जाती है। फिर भला वह बेचारी बुढ़िया उस अतुलनीय सौदर्य्यके सामने क्यों सिर न झुकाती ?

दूसरा परिच्छेद ।

रङ्गमें भङ्ग ।

पाठक ! आप जान हो गये होंगे कि वह सौन्दर्य्यकी साक्षात मूर्त्ति, कामदेवकी स्त्री रतिका मान मर्दन करनेवाली मृगनयनी कौन थी जिसे बुढ़ियाने निर्जीव तस्वीर समझा था। यह सुन्दरी महाराज विक्रमसिंहकी इकलौती बेटी थी जो चञ्चलकुमारीके नामसे मशहूर थी। उसके बार बार मुस्कुरानेसे मालुम होता था कि वह अपनी सहेलियोंकी ऐसी हँसी मज़ाक की बातोंकी आदी हो गयी थी। किन्तु असल में मुसकराना उसके स्वभावसे सम्बन्ध रखता था। जब सब सहेलियोंकी हँसी कुछ कम हुई तब वह स्वर्गीय अप्सरा उर्व्वशीका भी सिर नीचा करने वाली अनुपम सुन्दरी, बाँकी अदासे त्योरियोंपर बल डालकर, अपनी सहेलियोंसे कहने लगी:—

चञ्चलकुमारी—इन बातोंमें हँसी की क्या ज़रूरत है? तुम सबने बुढ़िया को अनजान समझकर बना लिया।

चञ्चलकुमारीकी यह बातें सुनतेही सहेलियोंका मुँह फूल गया। उनके चेहरों मुहरों से नाराज़ीके आसार नज़र आने लगे। आख़िर एक सहेलीसे न रहा गया। वह ज़रा नख़रेके साथ बात बनाकर बोली—

सहेली—बुढ़ियाने तो आते आते हम लोगोंके कान कतर डाले। यह पुराने बादशाहों की तस्वीरें दिखाने लगी। भला हम उन तस्वीरों को लेकर क्या करतीं? यह समझती है कि ऐसी तस्वीरें किसी को मयस्सर नहीं। इसके ख़याल में ऐसी तस्वीरें हमारे पास हैं हीं नहीं।

बुढ़िया—(बात काटकर) यह कौन कहता है कि ऐसी तस्वीरें तुम्हारे पास नहीं हैं। क्या एक एक क़िस्म को दस दस बीस बीस तस्वीरों का अमीरों के पास होना अनुचित है? अगर ऐसा हो तो हम ग़रीब फ़ाक़ेमस्तों का पेट कैसे भरे?

राजकन्या—अच्छा, तुम अपनी तस्वीरें हमें दिखाओ।

बुढ़ियाने खड़े होकर बलाएँ लीं और गठरी से कुछ तस्वीरें निकालीं। यह अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, नूरजहाँ और नूरमहल के मुँह से बोलते हुए चित्र थे। मगर हमारी चञ्चलकुमारीको इनमें से कोई तस्वीर पसन्द न आयी। लाचार होकर सब तस्वीरें बुढ़िया को फेर दीं और उससे कहा—

चञ्चलकुमारी—ऐसी तस्वीरें तो हमारे यहाँ ही बहुत सी हैं। हमको हिन्दू राजाओं की तस्वीरें दरकार हैं। अगर हों तो दिखाओ।

बुढ़िया ने मानसिंह, बीरबल, जयसिंह वगैर: की तस्वीरें निकालीं। राजकन्या ने ये भी वापिस कर दीं और कहा कि ये भी हमारे कामकी नहीं हैं। ये सब तो मुसल्मानों के गुलाम हैं।

बुढ़िया—बेटी! मैं क्या जानूँ ये कौन हैं। मैं तो तस्वीरें बेचने लाई हूँ। किसी के हाल से मुझे क्या मतलब? जो मेरे पास हैं उनके दिखलाने में मुझे क्या उज्र है?

यह कहकर बुढ़िया ने तस्वीरें दिखानी शुरू कीं। इनमें से कुछ तस्वीरें राना परताप सिंह, राना अमर सिंह, राना कर्ण और राना जसवन्त सिंह की पसन्द की गईं। एक तस्वीर बुढ़ियाने जानबूझकर छिपा रक्खी। राजकुमारी ने हठ करके पूछा कि यह तस्वीर किसकी है; लेकिन बुढ़ियाने कुछ भी जवाब न दिया। राजकुमारी उस तस्वीर के देखने के लिये सिर होगयी। अन्त में बुढ़िया लाचार होकर काँपती काँपती बोली— "यह तस्वीर तुम्हारे दुश्मन की है। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। तस्वीरों में तस्वीर चली आई। क़सम खुदा की, मैं इसे जानबूझ कर नहीं लाई।"

चञ्चलकुमारी—इतनी क्यों डरती है? बताती क्यों नहीं यह तस्वीर किसकी है?

बुढ़िया—वही महाराज राजसिंह की जो उदयपुर की गद्दी पर हैं।

चञ्चल—(मुस्कराकर) अहा! यह तस्वीर उनकी है! अच्छा लाओ, यह तस्वीर हमें दे दो। इसे हम ज़रूर ख़रीदेंगी।

बुढ़िया ने तस्वीर राजकन्या को दी और कनखियों से चितवन ताड़ने लगी। मगर राजकुमारी तस्वीर लेकर बेहोश होगयी। उसे तन बदन की कुछ भी सुध न रही। ईश्वर जाने तस्वीर ने राजकुमारी पर क्या मन्त्र फूँक दिया कि जब उसे होश हुआ तब वह बारम्बार उसी तस्वीरको घूर घूरकर देखने लगी। जितना ही वह देखती थी उसकी हविस उतनी ही बढ़ती थी। तस्वीर में राना राजसिंह एक बढ़िया घोड़े पर सवार थे। घोड़ा सोने और जवाहिरात के साज सामान से लक़ दक़ हो रहा था। राना जी का वीर वेष और उनके सिर पर शिकारी टोपी देखने से मन हाथ से निकल जाता था। रूप तो भगवान ने उन्हें स्वामि कार्तिक और अश्विनीकुमारों से कम न दिया था। स्त्रियाँ तो सदा रूप और शौर्य्य वीर्य्य पर मर ही मिटती हैं। तस्वीर के देखते ही राजकन्या के दिल में एक

प्रकार की चोंप सी पैदा होगयी। रह रह कर उसका दिल मचलने लगा। वह लाख लाख चाहती थी कि यह भेद न खुले; मेरी सहेलियों के दिल में वहम न हो; मगर ताड़नेवाले तो ताड़ ही जाते हैं। एक बराबर की सहेलीने उसके हाथ से तस्वीर ले ली। राजकन्या टालने के लिये बात बनाकर बोली—"देखो बहिन! चित्रकार ने इस तस्वीर के बनाने में अपनी कारीगरी का कैसा ज़ोर दिखाया है। मुँह से बोला ही चाहती है। इस सजधज और आनबान का जवान आज तक तो देखने में नहीं आया। चेहरे से नूर टपक रहा है और बहादुरी बरस रही है"।

इतना ज़बान से निकलते ही वह तस्वीर बड़ी उत्कण्ठा से हाथों हाथ फिरने लगी। राजकुमारी ने तस्वीर के दाम पूछे। बुढ़िया ने मन मानी क़ीमत माँगी। साथ ही यह भी कहा—"कुमारी जी! यह तस्वीर आपको भली मालुम हुई; मगर दुनियामें एक से एक बढ़ कर हैं। लीजिये, मैं एक और तस्वीर दिखाती हूँ। यह कहकर गठरी से एक और तस्वीर निकाली और उसे राजकन्या के हाथ में देकर कहा—"इससे बढ़कर दुनिया में आज कौन बहादुर है?"

चञ्चल—किसकी तस्वीर है?

बुढ़िया—आलमगीर बादशाह की।

चञ्चल—अच्छा, यह भी लीजायगी। (एक दासी को बुलाकर) इसे इसकी क़ीमत देकर बिदा करो।

उधर दासी तो रुपये लेने गयी; इधर राजकन्या ने अपनी चन्द्रवदनी मृगनयनी हमझोलियों से कहा—"आओ बहिन! हम तुम रङ्गरलियाँ मनावें। वह खेल खेलें जिससे दिल बहले।" सबने पूछा—कुमारी जी! कौन खेल खेलियेगा।

राजकुमारी—यह तस्वीर हम ज़मीन पर रखती हैं। देखें किस को लात से इसकी नाक टूटे।

यह बात ज़बान से निकलते ही सहेलियोंका दिल काँपने लगा। भय के मारे चेहरों का रङ्ग फ़क़ हो गया। पैर काँपने लगे। मुँह सूख गया। काटो तो खून नहीं। किसी के मुँहसे बात भी न निकली। सब चित्र लिखी सी जहाँ की तहाँ खड़ी रह गईं। आख़िर एक सुन्दरी से बोले बिन न रहा गया। वह बोली—"कुमारीजी! ऐसी बात कोई मुँहसे निकालता है! परमेश्वर न करे, कहीं यह बात उड़ते उड़ते बादशाह के कानों तक पहुँच जावे और वह क्रोधमें भरकर रूपनगर को बेरूप कर दे। रूपनगर का नाम निशान ही मिटा दे। नाम निशान तो क्या ईंट से ईंट बजा दे।" मगर राजकन्या इन बातों को कब सुनती थी। झटपट तस्वीर ज़मीन पर पटक दी और सहेलियों से कहने लगी—

राजकुमारी—हाँ देखें तो सही, पहिली लात किस की पड़ती है।

वहाँ किस की हिम्मत थी, किसका कलेजा था जो इस काम को करे। किसी को साहस न हुआ कि आलमगीरी रोब-दोब पर ख़ाक डालकर बात तो मुँह से निकाले। मगर निर्मल कुमारीने जो राजकन्या के बहुत ही मुंह लगी हुई थी पीछे से आकर राजकुमारी के मुँह पर हाथ रख दिया और कहा ख़बरदार! कोई ऐसी बात मुँह से निकालता है! परन्तु राजकन्या ने अपने नाज़ुक पाँव तस्वीर पर रख ही दिये जिससे तस्वीर की क़िस्मत जाग उठी। राजकुमारी के नाज़ुक पाँवों से औरङ्गज़ेब की तस्वीर पर दो चार वल ऐसे पड़ गये जिससे तस्वीर की नाक जाती रही। यह दृश्य भी अपूर्व्व ही था। सहेलियों में एक प्रकार का भय और घबराहट फैल गयी। सब एक दूसरी का मुँह ताकने लगीं। कोई कनखियों से देखने लगी। कोई भौं हिलाकर रह गयी। कोई हाथ से इशारा करके रह गयी। इसी तरह आपस में सवाल और जवाब होने लगे। भगवान जाने, यह आफत जो रूपनगर के सिर आनेवाली है किसी तरह टलेगी या नहीं। बादशाह सलामत जो यह बात सुन पायें तो जो आफ़त न ढहायें थोड़ी है।

राजकन्या सब सहेलियोंको यह हालत देखकर, निर्मलकुमारीसे लड़कपनकी भोली भाली अदासे बोली, "मेरी प्यारी और सच्ची हित चाहने वाली बहिन! बचपनमें नन्हें नन्हें बच्चे मिट्टीके खिलौनोंके साथ खेलकर अपना जी खुश किया करते हैं। बस मैंने भी इस मुग़ल बादशाहके मुँहपर लात मारकर अपनी साध मिटा ली। देखो निर्मल! यह भी बहुतही सच्चा मसला है। बच्चे जिस क़िस्मके खेल खेलकर अपना जी बहलाते हैं शायद उन्हें जवानीमें भी वह बुरी बातें याद आ जाया करती हैं। फिर क्या ईश्वर मेरी इच्छा पूरी न करेगा! क्या हम भी औरङ्गज़ेबके मुँह पर.........

निर्मलने झपटकर राजकन्याके मुँह पर हाथ रख दिया; किन्तु भेद तो खुल गया। बात तो फूट ही गयी। बुढ़ियाका कलेजा दहलने लगा। होश हवास जाते रहे, चेहरा पीला पड़ गया। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। हाथ पाँव काँपने लगे। ज़बान सूख गयी। बुढ़िया अपने दिलमें कहने लगी। बस,अब यहाँ ठहरना उचित नहीं। गठरी बग़लमें दबाकर खिसकनेका इरादा किया निर्मलने दौड़कर आँचल पकड़ लिया और उसे एकान्त स्थानमें ले जाकर उसके हाथमें एक अशरफ़ी रख दी और उससे नम्रता पूर्व्वक कहने लगी—

निर्मल कुमारी—लो बड़ीबी! यह अशरफ़ी तुम्हारे

राह खर्चके काम आवेगी। किन्तु इन बातोंका ज़िक्र किसीसे न करना। राजकुमारी कम-समझ और बच्चा है। उसे ऊँच नीच और बुरे भलेका ज्ञान नहीं। वह बादशाहोंका रुतबा क्या जाने? बिना समझे बूझे ऐसी बातें मुँहसे निकाल बैठी। वह यह न समझी कि कौन बात कहने योग्य है और कौन नहीं।

बुढ़िया—(अशरफ़ीके देखतेही मुँहमें पानी भर आया) मुझ पर क्या सिड़ सवार है? क्या मैं एक दम पगली हूँ। भला ऐसी बातें ज़बानसे निकाली जाती हैं। मेरी ज़िन्दगीका दार मदार तुम ऐसोंके हाथ है जहाँसे पलती हूँ? मुझसे ऐसी आशा कभी न रक्खो। अपने अपने घर न जाने क्या क्या बातें हुआ करती हैं फिर भला कोई किसीसे कह देता है।

निर्मलकुमारीको बुढ़ियाकी बातों पर विश्वास हो गया और वह वहांसे लौट आयी।

तीसरा परिच्छेद।

दूसरा गुल खिला।

वह तस्वीर बेचनेवाली बुढ़िया सफ़रकी तकलीफें उठाकर उस सड़क पर जा रही है जो इलाक़े बूँदीके किसी दिहातकी सरहद के नामसे पुकारी जाती है। रात किसी क़दर बीत चुकी है। यह अपने दिलसे बातें करती हुई और अपने ख़यालके उलझेड़ोंमें डूबी हुई एक मकान पर पहुँची और दरवाज़े पर धक्का मारा। एक पुरुष अन्दरसे आता हुआ बोला—"कौन है?" अब तो बुढ़िया चौकन्नी हुई कि हे इलाही! यह क्या आफ़त आई! मेरे मकानमें किसका दख़ल हो गया? अन्तमें जवाब दिया कि दरवाज़ा खोलो और ख़ुदही पहचान लो कि मैं कौन हूँ।

उस मर्दने दरवाज़ा खोल दिया और अपनी माँको, जो एक लम्बी सफ़रसे थकी हुई दरवाज़े पर हाँफ रही थी, बैठी पाया। पाठक समझ गये होंगे कि यह बुढ़िया तस्वीर बेचनेवाली उस अनजान पुरुषकी माँ थी। बुढ़ियाने पहिले तो उसे न पहचाना; मगर ध्यान देकर देखा तो अपनेही कलेजेका टुकड़ा और आँखोंका तारा

सामने नज़र आया। बुढ़िया अत्यन्त प्रसन्न होकर और "प्यारे बेटा" कहकर उसके गलेसे लिपट गई और बोली—

बुढ़िया—बेटा! बाक़रअली! चैनसे तो रहे? देहली से कुछ कमा लाये? अब तो कुछ दिन चैनसे कटेंगे?

बाक़रअली—अम्माँ जान! जो कुछ खुदाने दिया हाज़िर है।

बुढ़िया—अच्छा, मैं तो इस समय राहकी थकी माँदी हूँ। कुछ रोटी ओटीका बन्दोवस्त करूँगी। दूकानें बन्द हो गई होंगी।

बाक़रअली—अम्माँ जान! सब कुछ यहीं मौजूद है। खाना पका पकाया तय्यार है। खा लो।

बुढ़िया खाने दानेसे निपटकर एक टूटी फूटी चारपाई पर लम्बी हो गई। मगर इस समय भी वह रूपनगरके ख़यालोंमें उलझ रही थी जिसका हाल प्यारे पाठकोंको मालुम है। यद्यपि निर्मलने कुछ ले देकर उसे समझा दिया था; मगर आप जानते हैं उसके पेटमें बात पचना कठिन था। बुढ़ियाके लिये खाना पीना हराम हो गया। कभी कभी अपनेही दिलसे बातें करती—"मुझे क्या सरोकार क्या मतलब जो अपने प्यारे लड़केसे भी इस कहानीको छेड़ूँ?" लाख लाख रोकतीथी, मगर वह बातें होठों तक आकर रह जाती थीं। उसके

दो सबब थे—अव्वल तो निर्मल कुमारीसे प्रतिज्ञा कर चुकी थी; दूसरे हाथ फैलाकर अशरफी भी तो डिब्बेमें रख चुकी थी। नमक खाया है, यह भी ख्याल था। मनमें कहती थी कि अगर यह बात फैली तो जहाँ-पनाहके हाथोंसे बेचारी चञ्चलकुमारीका जो हाल न हो जावे थोड़ा है।

इन ख्यालोंके उलझेड़ोंमें वह रात तो ज्यों त्यों कटी। दूसरे दिन उस ख्याली पुलावने फिर खाना पीना हराम कर दिया। क़सम खा बैठी अगर किसीके सामने यह बातें ज़बान पर लाऊँ तो ज़बान कटकर गिर जावे। क़सम खाते देर न हुई थी कि उसके जवान लड़केने खाना खानेके लिये अपनी माँको आवाज़ दी। यह उठी और लड़केके साथ खाना ज़हरमार करने लगी। खाते खाते सारी राम कहानी लड़केसे कह सुनाई। साथही यह भी कह दिया—"बेटा! ख़बरदार, किसीसे इसका ज़िक्र न करना अपनेही तक रखना"।

इस समय तो वह बात दब गयी। कुछ दिन बाद बाक़र अली दिल्ली गया तो उसने अपनी आशनासे कुल कच्चा चिट्ठा जो उसने अपनी माँसे सुना था कह सुनाया।

पाठक! ज़रा ईश्वरकी मायाका अद्‌भुत तमाशा देखिये। दोही चार दिनमें बाक़रअलीकी आशनाकी बहिन बादशाही महलकी लौंडियोंमें नौकर हो गई।

उसने बातोंही बातोंमें वह सारी कहानी दूसरी लौंडियोंको कह सुनाई। धीरे धीरे वह बात बेगम साहिबाके कानों तक पहुँची। जोधपुर वाली बेगमकी ज़बानी वह ख़बर बादशाह सलामतको भी मिल गई।

औरङ्ग़ज़ेब जो इतना बड़ा बादशाह था और जिसकी हुकूमतका डङ्का तमाम हिन्दुस्तानमें बजता था भला इस बात पर गुस्सा करता। उसकी तो पालिसीही निराली थी। उसने बात तो दिलमें रख ली। सिर्फ़ बेगमसे इतना कहा—"इस बदतमीज़ लड़कीको सख़्त सज़ा दी जायगी। रूपनगरके राजाकी लड़की तुम्हारी लौंडियोंकी लौंडी न बना दीजाय तो मेरा नाम आलमगीर नहीं।"

बेगम—(शाही रोब दीबसे काँपकर) जहाँपनाह! जिनके हुक्मसे बड़े बड़े राजाओंकी रियासतें हर रोज़ ग़ारत होती हैं उन्हें एक कम-उम्र लड़कीकी बातों पर गु़स्सा करना अच्छा नहीं मालूम होता। बादशाह यह बात सुनकर चुप हो रहा; किन्तु उसी दिनसे रूपनगरकी बरबादीका ध्यान उसके दिलमें रहने लगा। कुछ दिन बाद रूपनगरके राजाके नाम एक फ़रमान लिखा गया जिसका असल मतलब यह था—

शाही फरमान।

"तुम्हारी दुख़्तर नेक अख़्तरके हुस्न व जमालकी

तारीफ़ सुनकर जहाँपनाहका दिल हाथसे जाता रहा और तुम्हारी नेकशाअरी और वफ़ादारीसे भी हज़रत ज़िल सुभानी बहुत खुश हैं। लिहाज़ा चाहते हैं कि इस मज़कूरको हरममें दाखिल करके खैरख्वाहीका सिलह बख़्शें। पस तुम्हें लाज़िम है कि रुख़सतका इन्तज़ाम कर रक्खो। शाही फ़ौज बहुत जल्द भेजी जावेगी।" *

रूप नगर में बादशाही फ़रमान का पहुँचना था कि राज-महल में खुशीके नक्कारे बजने लगे। बड़े बड़े राजा महाराजा विशेषकर जयपुर जोधपुरके राजा अपनी लड़कियों को बादशाही महल में देना अपना सौभाग्य समझते थे और इस बात की इच्छा रखते थे कि बादशाह सलामत हमारी लड़की को अपने लिये स्वीकार करें। उन राजाओं का ख्याल था कि जबतक हमारी कन्याएँ शाही महलों में न जायँगी तब तक हमारा दर्जा हरगिज़ न बढ़ेगा। जब बड़े बड़े राजाओं का

---

* शाही फ़रमान या बादशाही आज्ञापत्र का सीधी सादी हिन्दीमें यह भावार्थ है—तुम्हारी सच्चरित्रा कन्याके रूप लावण्य की प्रशंसा सुनकर बादशाह उस पर मोहित हो गये हैं। आपकी राज-भक्तिसे भी जहाँपनाह बहुत प्रसन्न हैं। इसवास्ते बादशाह सलामत चाहते हैं कि आप अपनी भुवन मोहिनी कन्याको महलों में दाखिल करके उनके प्रेम-भाजन बनें। अपनी कन्याकी विदाईका प्रबन्ध कर रक्खें, बादशाही फ़ौज बहुत जल्द लेनेको आती है।

यह हाल था तब रूपनगर एक छोटी सी रियासत क्यों न खुश हो? राजा विक्रमसिंह अपने सौभाग्य पर फूले न समाते थे। वह और ही धुन में मस्त हो रहे थे। उनका ख्याल था कि जब बादशाह से सम्बन्ध हो जायगा तब शाही फ़ौज की मदद से हम आस पास के राजाओं पर आक्रमण करके उनका मुल्क दबालेंगे और अपनी हुकूमत का डङ्का बजायेंगे।

रनवास में अजीब चहल-पहल के सामान नज़र आने लगे। बन्धु बान्धव परिजन पुरजन सभी प्रसन्न हो रहे थे कि चञ्चलकुमारी बेगम के नाम से पुकारी जायँगी। तमाम भारत में अपना डङ्का बजेगा। भाईयों! ईश्वर की कृपा है जो बादशाहों का बादशाह औरङ्ग-ज़ेब राजकन्या के रूप लावण्य की प्रशँसा सुनकर उस पर दिलो जान से आशिक़ होगया और अपनी शादी का पैग़ाम भेजा। सब किसी के भाग्य इस तरह नहीं खुलते।

पाठक! तमाम शहर का यह हाल देखकर आप भी खुश हुए होंगे; मगर नहीं, जहाँ शादी—खुशी—है वहाँ ग़म भी है। आइये, ज़रा राजकन्या की सहे-लियों की ख़बर ले आवें। देखें तो सही, वहाँ क्या ढँग है। कदाचित वहाँ भी ऐसे ही खुशी के सामान नज़र आवें; मगर यहाँ तो सब की सब कुछ उदास

सी हो रही हैं। शायद राजकन्या की जुदाई का रञ्ज सब के दिलों में छा रहा है। नहीं, नहीं, यहाँ तो कुछ और ही बात है। न तो किसी को राजकुमारी की जुदाई का रञ्ज है और न उसके शाही महल में जाने की खुशी है। भाई! दाल में कुछ काला ज़रूर है। भगवान जाने क्या मामिला है। इस समय तो कुछ भेद नहीं मिलता। शायद आगे चल कर कुछ पता लगे।

चौथा परिच्छेद।

बेचैन दिल।

अँधेरी रात है और हवा सन्नाटे से चल रही है। जगत् के सभी प्राणी निद्रा देवी की गोद में सिर रखकर बेखटके खुर्राटे भर रहे हैं। लेकिन जो प्रेम-पाश में फँस रहे हैं—जो किसी को अपना दिल दे चुके हैं—उनके लिये नर्म नर्म मखमली पलँग पर भी नींद नहीं आती। उनके लिये अमावस्या की काली रात काली बला से कम नहीं है। यद्यपि मनुष्य को शूली पर भी नींद आये बिन नहीं रहती; किन्तु उनको तो पलकसे पलक मिलाने की भी क़सम है। किसी की याद उनके नाज़ुक दिल में बैठी

हुई कलेजे को मसल रही है। नींद के लिये बहुत कुछ कोशिश की जाती है मगर नींद आती नहीं। नीरव निस्तब्ध रजनी उनके लिये बहुत ही भयानक और दुःखदायी मालुम हो रही है। बार बार घड़ी की ओर देखते हैं मगर यह रात उनके लिये ब्रह्मा की रात हो गयी है, काटे नहीं कटती।

एक सजे सजाये कमरे में जड़ाऊ पलँग पर एक अल्प-वयस्का सुन्दरी दुलाई से मुँह लपेटे, न जाने किस की यादमें, करवटें बदल रही है। ठण्डी ठण्डी साँस और बार बार की उफ़ उफ़ बता रही है कि कोई न कोई ज़रूर उसके दिल में बैठा हुआ उसके कलेजे को मल रहा है। मगर बे-चैन दिल को यह भी मञ्जूर नहीं कि वह चुपचाप पड़ी तो रहे। थोड़ी देर तक पड़े रहने के बाद मुँह पर से दुलाई हटाकर उठ बैठी और एक तस्वीर को जिसे यह बड़ी देर से कलेजे से लगाये हुए थी चिराग़ की रोशनी में टकटकी बाँध कर देखने लगी। देखते ही देखते, ईश्वर जाने उसके दिल में क्या आया कि यकायक एक आह निकली और इसी बेहोशी में उसकी ज़बान से यह बात निकलती सुनायी दी—

"हाय! मेरी सारी ज़िन्दगी ख़राब हुई जाती है! सारी आशाओं पर पानी फिरा जाता है! आस्मान मेरी बरबादी पर तुला हुआ है!"

यह इसी तरह की उधेड़-बुन में लग रही थी। एक ख़याल आता था और दूसरा जाता था। दिल में किसी तरह चैन न आता था। एक एक पल बरसों के समान गुज़रता था। यह अपनी धुन में लगी हुई थी कि किसी के पाँवों की आहट सुनायी दी। यह चोकन्नी सी होकर सँभल बैठी, मानों किसी ज़रूरी कामके लिये उठी है। आँसुओं की बूँदें जो इसके गुलाबी गालों पर वह बह कर आरही थीं इसने शीघ्र ही दुपट्टे से पोंछ डालीं और अचानक इसकी ज़बान से यह शब्द निकले—"हैं बहिन! तुम इस समय कहाँ?"

पाठक! यह वही निर्मलकुमारी है जिसके दिल पर बादशाही फ़रमान आने से अजब तरह की चोट लगी थी।

निर्मल—तुम्हारे पास आयी हूँ। अब क्या करना होगा?

राजकन्या—करना क्या होगा, कुछ नहीं। चाहे जो हो जावे मगर मैं मुग़ल बादशाह की लौंडी होना नहीं चाहती।

निर्मल—यह तो मैं भी समझती हूँ। लेकिन चारा ही क्या? महाराज में इतना दम कहाँ जो बादशाही हुक्म टाल सकें। प्यारी राज-दुलारी! अब यही उचित है कि तुम बादशाही हरममें दाख़िल होना अपना सौभाग्य

समझो। देखो, आमेर, जोधपुर, अजमेर के राजा महाराजा नव्वाब सूबेदार सब की यही इच्छा रहती है कि हमारी प्यारी कन्या दिल्लीके तख्त पर बैठे और सिक्के तथा खुतबे में उसका नाम लिखा जावे। क्या हिन्दुस्तान की महारानी—मलिका—बनना मञ्जूर नहीं? क्या दीन दुनिया की मालिक होना पसन्द नहीं?

राजकन्या—(गुस्सेसे झिड़ककर) बस, बस, यहाँ से चली जा। आँखों से ओट हो जा।

निर्मल—तुम यही समझ लो—मैं चली गयी। मगर मैंने जिसका साथ दिया, दिया। तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ? यह तो जानती हूँ कि तुम दिल्ली न जाओगी किन्तु पिता जी की क्या गति होगी?

चञ्चल—जानती क्यों नहीं? अगर मेरा दिल्ली जाना न हुआ तो शाही फ़ौज आकर रूपनगर को पामाल कर देगी। पिताजी की जान पर बन आयेगी। रूपनगर में एक ईंट भी बाक़ी न रहेगी। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता कि मेरी वजह से पिता जी पर आफ़त आवे। यहाँ से दिल्ली तो ज़रूर जाऊँगी मगर * * * *

निर्मल—(बात काट कर) हाँ हाँ, मैं भी यही चाहती हूँ। बस, यही इरादा पक्का कर लो।

चञ्चल—(गुस्से से त्यौरी बदलकर) तेरी इच्छा

है कि राजकन्या उस मुग़ल की सेज पर सोवे जो उसकी इज़्ज़त और हुरमत बिगाड़ने पर आमादा है। हंस को कव्वे की चाल चलाती है?

निर्मल—(राजकन्या के इरादे से अनजान सी बन कर) फिर क्या करोगी?

चञ्चल—(उँगली की अँगूठी दिखाकर) बस, मेरी ज़िन्दगी का दारोमदार इसी पर है। रास्ते में यही मेरा साथ देगी। इसी का हीरा मेरी इज़्ज़त आबरू बचावेगा। इसे खाकर जगत् में नाम पैदा करूँगी।

निर्मल इन बातों के सुनने की ताब न ला सकी। आँखों से टपाटप चौधारे आँसू गिरने लगे। रोते रोते आँखें लाल हो गयीं। आँसूओं से आँचल तर होगया। गला रुक गया। आख़िर लाचार होकर हिचकियाँ लेती हुई बोली—

निर्मल—हाय! क्या इसके सिवाय और कोई तदबीर नहीं है जिससे जान भी बचे और सतीत्व-रक्षा भी हो?

चञ्चल—इससे बढ़कर और क्या तदबीर हो सकती है कि दुनिया में जाति पर मर मिटनेवाला बहादुर, जो कोई हो, मेरे लिये बादशाह से दुश्मनी करके मेरी इज़्ज़त बचाने पर कटिबद्ध हो। राजपूतों में तो कोई अब ऐसा दिखायी नहीं देता; क्योंकि वह सब तो मुग़ल

बादशाहोंके गुलामों से भी गये बीते हो रहे हैं। फिर क्या हमारे लिये स्वर्ग से संग्रामसिंह और प्रतापसिंह उतरेंगे?

निर्मल—यह क्या कहती हो? मान लो, अगर वह जीते भी होते तो क्या वह तुम्हारे लिये बादशाह से लड़ाई मोल लेते? प्रतापसिंह और संग्रामसिंह नहीं हैं तो क्या हुआ? राजसिंह तो हैं। कुछ तुम उनके खानदानकी भी नहीं, जो तुम्हारे लिये बादशाहसे लड़ाई मोल लें।

चञ्चल—यह तो सच है; तथापि अपने शरणागतों की रक्षा न करना क्षत्रिय-धर्मके विरुद्ध है।

यह कहते कहते राजकन्याने वही तस्वीर, जिसे वह अपनी छातीमें छिपाये रखती थी, निकाली और निर्मलकुमारीको देकर कहा—

चञ्चल—इनका एक दम भरोसा कर लेना तो उचित नहीं; तथापि, यदि इनसे प्रार्थना की जाय तो आश्चर्य्य नहीं जो यह मेरी सहायता करें।

निर्मलकुमारी एक योग्य और चतुर स्त्री थी। वह राजकुमारीको जी जानसे भी अधिक चाहती थी। चञ्चलकुमारीके मनको जानकर बोली—

निर्मल—निस्सन्देह, यह तुम्हारी सहायता करेंगे; किन्तु तुम इनका बदला कैसे चुकाओगी?

चञ्चल—(निर्मलके दिलकी बात ताड़कर और लज्जासे आँखें नीची करके) दूँगी क्या बहिन! मेरे पास क्या रक्खा है जो इनके हवाले करूँ?

निर्मल—(हँसकर) यह तो सब सच है; किन्तु तुम आप क्या कम हो?

चञ्चल—(झेँप मिटानेके लिये) चल दूर हो। सिड़न कहीं की। हर समय हँसी दिल्लगी ही सूझा करती है।

निर्मल—हँसी दिल्लगीकी कौन बात है? राजाओंके लिये यह कोई नयी बात नहीं है। अगर तुम रुक्मिणी बनना स्वीकार करो तो श्रीकृष्णजी तुम्हारे लिये द्वारकासे आयेंगे कि नहीं।

चञ्चल—ऐसी क़िस्मत कहाँ? मैं तो सब कुछ चाहूँ, लेकिन वह भी तो मुझे अपनी सेवामें लेना पसन्द करें।

निर्मल—यह तो वही जानें। कोई आश्चर्य नहीं, अगर सुन पायें तो तुम्हारे लिये राज-स्थानसे दौड़े आयें और जिस तरह बने यहाँसे ले जायें। बातके धनी बहादुर राजपूतोंमें अब वही तो हैं। इस ज़मानेमें सिवा उनके और कौन है? मेरी रायमें तो एक चिट्ठी लिखकर और अपनी मुहर लगाकर उनके पास भेज दो। कदाचित तुम्हारे प्रेमकी आग उनके दिलमें भी

भड़क उठे। किन्तु यह काम खूब समझ बूझकर चुपचाप होना चाहिये जिससे किसी पर भेद न खुले।

चञ्चल—(कुछ सोचकर) मेरी समझमें तो गुरुजी के सिवा और कोई नज़र नहीं आता। अच्छा तो फिर उन्हींको बुला लो और तुमही उनसे सब हाल कह देना। मुझे वाहते हुए लाज आवेगी।

निर्मल—अच्छा तो मैं जाती हूँ।

यह कहकर निर्मलकुमारी उठ खड़ी हुई। मगर दिलमें कुछ भरोसा और ढाढ़स न हुआ। चञ्चलकी बातोंसे दिल भर आया। रोते रोते गुरुजीको ढूँढ़ने चल खड़ी हुई।

पाँचवाँ परिच्छेद।

मिश्रजी।

अनन्तमिश्र चञ्चलकुमारीके पितृकुलके प्रोहित थे। उन्होंने चञ्चलकुमारीको गोदमें खिलाया था। वे उसे बचपनसेही बहुत प्यार करते थे। अब भी उन्हें उसके देखे बिना चैन न पड़ता था। वे महामहोपाध्याय पण्डित थे।

सभी उनमें श्रद्धा भक्ति रखते थे। निर्मलने उनसे जा कर कहा कि राजकन्याने आपको किसी ज़रूरी काम के लिये याद किया है। सुनतेही मिश्रजी चल पड़े। रास्ते में निर्मलकुमारीने उन्हें सारा हाल कह सुनाया। सुनतेही दिल हाथसे जाता रहा। आँखोंमें आँसू डब-डबा आये। रुद्राक्षकी माला हाथसे खिसक पड़ी। बेत-हाशा दौड़े चले आये। रास्ते भर अजब हाल रहा। रनवासमें जानेकी रोक टोक तो थी ही नहीं। निर्मल के साथ साथ राजकुमारीके पास आये। चञ्चलकुमारी उस समय भी अपने ख्यालोंमें ग़र्क थी। सामनेही विभूति चन्दन विभूषित, प्रशस्त ललाट, दीर्घकाय, रुद्राक्ष शोभित ब्राह्मणको देखकर सिर उठाया। देख-तेही चरणोंमें गिर गयी और आँखोंके आँसू आँखों-मेंही पी गई।

अनन्तमिश्र—क्यों बेटी! मुझे क्यों याद किया?

चञ्चल—महाराज! अजब मुसीबतका सामना है। इस दुखसे छुड़ानेवाला सिवा आपके कोई नज़र नहीं आता। आपही पर मेरा आशा-भरोसा है। इस समय आपही मेरी डूबती नावको किनारे लगाने वाले हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये।

अनन्तमिश्र—मुझे सब मालुम है। रुक्मिणीके व्याहके लिये द्वारका जाना होगा। देखो बेटी! लक्ष्मीके भाण्डा-

रमें कुछ है कि नहीं—रास्तेका खर्च मिलतेही मैं उदयपुरको चल दूँगा।

यह सुनतेही राजकुमारी पानी पानी होगई। लज्जाके मारे उसके सुर्ख होंट और गुलाबी गाल फीके पड़ गये। एक रङ्ग आता था और एक जाता था किन्तु वह फिर भी सँभल बैठी। दिलको थामकर, एक ज़रीकी थैली बाहर निकाली। उसमें अशरफ़ियाँ भरी हुई थीं। मिश्रजीने पाँच अशरफ़ियाँ लेकर बाक़ी अशरफ़ियाँ फेर दीं और कहने लगे—

अनन्तमिश्र—बस, यही काफ़ी हैं। रास्तेमें अन्नही तो खाना होगा। अशरफ़ियाँ तो खा न सकूँगा। अच्छा, अब एक बात कहना चाहता हूँ; अगर इजाज़त हो तो अर्ज़ करूँ।

चञ्चल—(शर्मसे आँखें नीची किये हुए दबी ज़बान से) इस विपदसे उद्धार पानेके लिये यदि अग्निमें कूदनेको कहिये तौभी तय्यार हूँ। आपकी आज्ञा मेरे सिर आँखों पर है। बोलिये, क्या आज्ञा है?

अनन्तमिश्र—राणा राजसिंहके नाम एक पत्र लिख कर दे सकोगी?

चञ्चल—(कुछ सोचकर) इसमें दो तीन बातोंका ख्याल है। एक तो मैं बालिका—दूसरे अपरिचिता—चिट्ठी किस तरह लिखूँ? लेकिन मैं उनसे भिक्षा माँगती

हूँ तब चिट्ठी लिखनेमें शर्म क्या? अच्छा तो पत्र-लिखनाही पड़ेगा।

अनन्तमिश्र—मैं लिखा दूँ या तुम खुद लिखोगी?

चञ्चल—अच्छा, आप बोलते जायँ मैं लिख दूँ।

निर्मलकुमारी वहाँ बहुत देरसे चुपचाप खड़ी थी। ये बातें सुनकर बोली,—"यह ब्राह्मण-बुद्धिका काम नहीं है। यह हम लोगोंका काम है। हम चिट्ठी लिखकर तय्यार करती हैं। आप अपनी ज़रूरियातसे फारिग़ होकर आ जाइये।"

मिश्रजी चले तो गये, किन्तु अपने घर न गये। पहिले राजा विक्रमसिंहको आशीर्व्वाद देने गये।

राजा—क्यों? आज बेवक्त कैसे भूल पड़े?

मिश्रजी—आज देशाटनके लिये बाहर जाऊँगा। इससे आपको आशीर्व्वाद देने आया हूँ।

राजा—कहाँ जानेका इरादा है? क्या कोई ज़रूरी काम है?

मिश्रजी—महाराज! उदयपुर तक जानेका विचार है। अगर महाराज एक पत्र राणाजीके नाम लिख दें तो बड़ी कृपा हो। इससे मैं उन तक आसानीसे पहुँच सकूँगा। मुलाक़ातमें दिक़्क़त न होगी।

राजा विक्रमसिंहने एक चिट्ठी राणाजीके नाम लिख दी। मिश्रजी वह चिट्ठी लेकर चञ्चलकुमारीके पास

गये। उस समय चञ्चल और निर्मलने भी मिलकर चिट्ठी लिख रक्खी थी। मिश्रजीको देखतेही चञ्चलने सन्दूक़से एक अपूर्व्व शोभा विशिष्ट गजरा निकालकर उनके हाथमें धर दिया और आँखें नीची करके कहने लगी—

चञ्चल—महाराज! राणाजीके पत्र पढ़ लेनेपर, यह राखि मेरी ओरसे उनके हाथमें बाँध देना। वह राजपूत-कुल-तिलक हैं, राजपूत-कन्याकी राखिको अग्राह्य न करेंगे।

मिश्रजी ने राजकुमारीकी बात स्वीकार कर ली। राजकुमारीने उन्हें प्रणाम करके बिदा किया।

छठा परिच्छेद।

चोर लुटेरोंसे मुठभेड़।

अनन्त मिश्र घर आते ही कपड़े, छाता, लाठी, लोटा, हुरसा, चन्दन प्रभृति नितान्त प्रयोजनीय चीज़ें लेकर मिश्रानीके पास बिदा माँगने गये। मिश्रानीजी दुःखित होकर बोलीं,—"क्यों जाते हैं? कहाँ जाते हैं।" मिश्रजी बोले, "राणाजी से कुछ वृत्ति लेनी है अतः उदयपुर जाता

हूँ।" वृत्तिका नाम सुनते ही मिश्रानी जी शान्त हो गईं। मुँहमें पानी भर आया। विरह-यन्त्रणा उनको और न सता सकी। मिश्रजीकी जुदाई का कुछ भी ख्याल न किया। मिश्रजीने भी उदयपुरका रस्ता लिया।

रास्ता बड़ा बीहड़ था। चारों तरफ़ पहाड़ ही पहाड़ थे। रास्तेमें मुसाफ़िरों के ठहरनेकी जगह भी न मिलती थी। ब्राह्मण देवता जिस दिन जहाँ आश्रय पाते वहीं ठहर जाते। वह दिनको रास्ता चलते थे, क्योंकि वहाँ चोर डाकुओंका बड़ा भय था। मिश्रजीने पहिले दिन एक पहाड़ी पर डेरा किया। दिन भर की थकावट और सन्ध्याकाल हो जानेके कारण वहाँ कुछ खाने दानेका बन्दोबस्त किया और झरनेका ठण्डा ठण्डा पानी पिया। दूसरे दिन फिर चलने की ठानी। उनके पास रत्न जटित बहुमूल्य चीज़ें थीं इस-लिये उन्हें हर समय डाकुओंका भय लगा रहता था। जहाँ तक सम्भव होता विना सङ्गी साथी आगे क़दम न बढ़ाते थे। एक दिन रातको वह एक देवा-लय में ठहरे। सवेरे चलने के समय उन्हें साथी तलाश करनेकी ज़रूरत न पड़ी। रातको उसी देवा-लय की अतिथि-शाला में चार बनिये ठहरे थे। उन्हें भी पहाड़ी पार करनी थी। उन्होंने ब्राह्मणको देखकर पूछा,—"आप कहाँ जायँगे?" ब्राह्मण बोला—"मैं

उदयपुर जाऊँगा।" बनिये बोले,—"हम लोग भी उदयपुर जायँगे। अच्छा हुआ, सब एक साथ ही चलेंगे।" ब्राह्मण देवता प्रसन्न होकर उनके साथ हो लिये। रास्ते में पूछा,—"उदयपुर और कितनी दूर है?" बनिये बोले,—"पास ही है। ईश्वर चाहे तो आज सन्ध्याको उदयपुर पहुँच जायँगे। यह ज़मीन भी तो राणाजीकी ही अमलदारी में है।"

इस भाँति बात-चीत करते हुए ये पाँचों मुसाफ़िर चले जाते थे। पार्व्वत्य पथ अतिशय दुरारोह और कण्टकाकीर्ण था। रास्ते में बस्तीका कहीं नाम निशान भी न था। ये पाँचों एक पगडण्डीपर चल रहे थे जिसके दोनों ओर दो पहाड़ थे। उस पगडण्डी पर दो आदमी कठिनता से चल सकते थे। ये पाँचों एकके पीछे एक चले जाते थे। इसमें शक नहीं, कि वहाँ की सीनेरी बहुत ही दिलचस्प थी। पहाड़ों की ऊँचाई पर दृष्टि पड़तेही एक अपूर्व्व दृश्य दिखायी देता था। पहाड़ोंके ऊपर हरे हरे वृक्ष खड़े हुए आकाश की ओर झाँक रहे थे। दोनों पहाड़ोंके बीच कल कल नादिनी, क्षुद्रा प्रवाहिनी बनास नदी बह रही थी। नदीका जल स्फटिक मणिके समान साफ़ था। नदीके किनारे किनारे पगडण्डी गयी थी। जगह जगह पहाड़ी झरनों का जल झर झर करता हुआ बह रहा

था। चश्मोंके चारों ओर बगुले और सारस कलोल कर रहे थे। इस दृश्यको देखनेसे राहके थके माँदे पथिकका दिल हरा हो जाता था। थकान मालुम न होती थी।

इस पथरीली पगडण्डी पर चलनेवालोंको कोई उस वक्त तक न देख सकता था जब तक कि वह पहाड़ीकी चोटीपर चढ़कर नीचेकी ओर निगाह न दौड़ावे। उस समय उस पगडण्डी पर चलनेवालोंमें सिवाय इन पाँच आदमियोंके छठा कोई न था। वह सुनसान और बीहड़ रास्ता मिश्रजीका दिल दहलाये देता था। यद्यपि उन चारों बटोहियोंसे मिश्रजीका मेल जोल हो गया था, तथापि वह गैरके गैर ही थे।

एक बनिया—मिश्रजी! आपके पास कितना माल है?

इस बात के सुनते ही मिश्रजीके होश जाते रहे। हाथ पैर कांपने लगे। चेहरे का रङ्ग फ़क़ होगया। दिल धड़कने और कलेजा मुँहको आने लगा। लेकिन साथ ही इस ख्याल से दिलमें तसल्ली हुई—"शायद यहां लुटेरे और डाकुओंका भय है; इसी कारण से ये हमसे पूछते हैं कि जिससे माल की अच्छी तरहसे रक्षा की जाय"—किन्तु फिर भी जहाँ तक हो सका टाला।

अनन्तमिश्र—मैं भिखारी ब्राह्मण हूँ। खानेको जुड़ता नहीं। माल कहाँ से आया?

दू० बनिया—मिश्रजी! आपके पास जो कुछ हो हमें दे दीजिये ; नहीं तो इस जगह तुम्हारे पास कुछ रह न सकेगा।

अब तो ब्राह्मण देवता सिटपिटा गये। लगे इधर उधरको लेने। कभी सोचते थे वह मोतियोंका गजरा इन्हें देदें। इनके पास वह हिफ़ाज़त से रहेगा। कभी कहते कि इन्हें तो हम जानते ही नहीं, फिर इनका विश्वास किस तरह किया जाय? इस तरह सोच विचार और कुछ इधर उधर करके ब्राह्मण देवता पहिले की तरह बोले,—"मैं भिखारी हूँ, मेरे पास क्या है" ?

विपत्तिकाल में जो इधर उधर करता है, वही मारा जाता है। ब्राह्मणको सिटपिटाते देखकर, वह छद्मवेशी बनिये समझ गये कि ब्राह्मणके पास अवश्य कुछ क़ीमती माल है। चारों छद्मवेशी आपसमें अपनी गढ़ी हुई बोलियाँ बोलने लगे। थोड़ी ही देर बाद, उनमेंसे एक ने मिश्रजी को धर पटका और छाती पर चढ़कर हाथसे मुँह दबा दिया जिससे चिल्ला न सकें। ब्राह्मण मुँह बन्द होनेसे चिल्ला तो न सके पर गूँ गूँ करने लगे। दूसरे ने उनकी गठरी खोली तो उसमें एक बहुमूल्य मोतियोंका गजरा, कुछ अशरफ़ियाँ और दो चिट्ठियाँ मिलीं। उनको हथियाकर उसने अपने

साथीसे कहा,—"जो कुछ माल था वह तो हाथ आ गया। इस बेचारे की जान लेनेसे क्या फ़ायदा? अब इसे जाने दो।"

तीसरा—वाह! यह खूब कही! कहीं ऐसा न करना। छोड़ते ही गुल-गपाड़ा मचावेगा। सारी हेकड़ी धरी रह जायगी। आजकल महाराज राजसिंहका दौर-दौरा है। मारे भयके पेटका पानी भी नहीं पचता। हमारे नज़दीक इसे वृक्षसे बाँधकर यहाँ से नौ दो ही जाना ही ठीक है। ठहरना ठीक नहीं।

यह बात सबके पसन्द आगयी। उन्होंने मिश्रजीके हाथ पाँव बाँधकर उन्हें एक पेड़से बाँध दिया और आप पासवाली पगडण्डीसे पहाड़ों ही पहाड़ों अदृश्य हो गये। उस समय एक सवार पहाड़के ऊपर खड़ा था। उसने उनको देख लिया। किन्तु उन्होंने सवार को न देखा; क्योंकि वह तो अपने भागने की धुनमें मस्त थे। वे लोग ख्याली पुलाव पकाते पकाते एक ऐसे रास्ते पर हो लिये जहाँ झाड़ियों और दरख़्तोंके मारे दिनमें भी हाथको हाथ न सूझता था। वह मार्ग अति दुर्गम और मनुष्य-समागम शून्य था। चलते चलते वे एक गुफ़ा में घुस गये। वह गुफ़ा ही शायद उनके रहनेकी जगह थी; क्योंकि उसके द्वारपर एक घड़ा पानी से भरा हुआ रक्खा था।

इन चारोंमें कुछ देर तो मामूली बात-चीत होती रही। पीछे एक उठकर भोजन बनानेकी फ़िक्र में लगा। दूसरेने चिलम भर कर अपने साथियों को पिलाई। तीसरे ने उस शख़्स से जो रसोईकी तय्यारी करनेकी फ़िक्र में था कहा, भाई! माणिकलाल! खाना दाना तो रोज़ ही का है, पहिले इस मालका कुछ बन्दोबस्त कर डालें।

माणिकलाल—सच कहते हो। पहिले यही होना चाहिये।

अशर्फ़ियाँ बँट गईं। जड़ाऊ गजरेके लिये यह बात तय हुई कि इसे बेचकर रुपया नक़द कर लिया जाय। अब रहीं चिट्ठियाँ, इनका क्या किया जाय?

दलीप—काग़ज़का क्या होगा? जलाकर फेंक दो। ये हमारे किस काम की?

माणिकलाल उन लोगोंमें कुछ पढ़ा लिखा था। उसने वे दोनों चिट्ठियाँ खोलकर पढ़ डालीं। पीछे अपने साथियों से बोला,—"ये चिट्ठियाँ जलानेके लायक़ नहीं हैं। बड़े काम की हैं।"

दलीप—भाई! ज़रा पढ़ो तो सही, हम भी तो सुनें।

माणिकलालने उन्हें चञ्चलकुमारी का सारा हाल कह सुनाया। सुनते ही वे तीनों भी खुश होगये।

माणिकलाल—अगर ये दोनों चिट्ठियाँ राणाजीके पास पहुँचाई जायँ तो इनाम मिल सकता है।

दलीप—पागल हुए हो। ऐसा कहीं करना भी नहीं। अगर राणाजी पूछ बैठें कि तुमने ये चिट्ठियाँ कहाँ पाईं तो क्या जवाब दोगे? क्या उनसे कहोगे कि रहज़नी—डकैती—की है? मान लो, यह कहा भी तो सज़ा ज़रूर मिलेगी।

इस तरह बात-चीत हो रही थी कि दलीपका सिर, यकायक, धड़से अलग होकर ज़मीन पर नाचने लगा और खूनका फव्वारा चलने लगा।

सातवाँ परिच्छेद।

माणिकलाल।

सवारने पहाड़ी परसे देखा था कि चार आदमी एकको बाँधकर चले गये। इसके आगे क्या हुआ, सो वह न देख सका। सवार देखता रहा कि वे लोग किस मार्गसे जाते हैं। जिस समय वे नदीके किनारे

किनारे चक्कर खाते हुए पर्वतोंके बीचमें ग़ायब हो गये उस समय वह अपने घोड़ेसे नीचे उतरा। घोड़ेके शरीर पर हाथ फेरकर बोला,—"विजय! यहाँ खड़े रहो—मैं आता हूँ—किसी तरहका शब्द न करना।" घोड़ा चुपचाप खड़ा रहा; सवार तेज़ क़दम चलकर पहाड़के नीचे उतरा। पहिलेही लिख आये हैं कि पहाड़ बहुत ऊँचा नहीं था।

सवार तेज़ीसे चलकर अनन्तमिश्रके पास पहुँच गया और उनको वृक्षसे खोलकर पूछा, "आख़िर बताओ तो यह क्या हुआ?"

अनन्तमिश्र—(दर्दसे कराहते हुए) मैं चार आदमियोंके साथ आ रहा था। वह लोग अपने तईं बनिये बताते थे। यद्यपि उनका पेशा डकैती था किन्तु मेरा उन पर पूरा पूरा विश्वास हो गया था। (दम लेकर) हाय! मैं क्या ज़ानता था कि वे मेरे साथ दग़ा करेंगे! लात और घूसोंके मारे मेरा कचमूर निकाल डाला। (रो कर) हाय! मुझे किसी तरफ़ का न रक्खा। जो कुछ पास था, सब छीन लेगये।

सवार—तुम्हारे पास क्या क्या था?

अनन्तमिश्र—एक मोतियोंका गजरा, कुछ अशर्फ़ियाँ और दो चिठ्ठियाँ थीं जिन्हें मैं बहुतही होशियारी से रखता था।

सवार—अच्छा, तुम ठहरो ; हम पता लगाने जाते हैं।

अनन्त—आप किस तरह जाते हैं? वह चार हैं, और आप एक। अकेला चना कहीं भाड़को फोड़ सकता है.?

सवार—देखते नहीं, मैं राजपूत सैनिक हूँ। क्षत्रिय लोग मरनेसे नहीं डरते। तलवारके मुँह मरना हम लोग अपना सौभाग्य समझते हैं।

अब अनन्तमिश्रको पूरा भरोसा हो गया। उसका वीरवेश, कमरमें लटकती तलवार और हाथका बर्छा कहे देते थे कि यह निस्सन्देह बातका धनी, दृढ़-प्रतिज्ञ और वीर पुरुष है। राजपूत उन डाकुओंको तलाशमें, जिधर उन्हें जाते देखा था, चल पड़ा। यद्यपि उसका वीर हृदय भयका नाम भी न जानता था; तथापि पत्तोंके खड़खड़ानेसे भी उसके कान खड़े हो जाते थे। ज़रा सी आहटसे वह चौकन्ना होकर चारों तरफ़ देखने लगता था। ज्यों ज्यों इसे रास्तेके चढ़ाव उतार, वृक्षों की सघन-कुञ्ज और पथरीली धरतीसे कष्ट होता था; त्यों त्यों इसकी निराशता बढ़ती जाती थी और वह रह रहकर समझाती थी कि ज़रा ठहर जा, थोड़ी देर दम ले ले, तेरी जल्दबाज़ीने तेरी आजकी मिहनत पर पानी फेर दिया। इस समय किसी तरहका पता

काम आवेगी ? अपना हौंसला मिटा लो। किन्तु तुम तो डरपोक हो, तुमसे यह काम भी न होगा।

इतना कहकर हमारे वीर राजपूतने पिस्तौलकी एक ख़ाली फैर की। जिसकी आवाज़से ही माणिकलाल मूर्च्छित हो गया। बर्छा हाथसे गिर पड़ा। वीर राजपूतने हँसकर बर्छा ज़मीनसे उठा लिया और लपक कर माणिकलालकी चोटी पकड़ ली और चाहताही था कि तलवारके घाट उतारे।

माणिकलाल—(हाथ जोड़कर नम्रतासे) महाराज! मुझ पर दया कीजिये। मेरी जीवन-रक्षा आपही के हाथ है। आपकी वीरता और आपके सैनिक बर्तावसे आशा है कि आप मेरी प्राण-रक्षा करेंगे।

वीर राजपूत—मरनेसे इतना क्यों डरता है ?

माणिकलाल—नहीं नहीं, मृत्यु से डरनेका कोई कारण नहीं ; किन्तु इतना ख़याल ज़रूर है कि उस मातहीना कन्याका हाल पूछनेवाला कोई न रहेगा जिसकी जीवन-रक्षा मुझी पर निर्भर है। उसकी उम्र भी अभी सात ही वर्षकी है। मेरे पीछे न जाने उसका क्या हाल होगा ? आज तक तो मैंने उसका पालन पोषण किया, आगे उसका भाग्य। अब उसकी परवरिश आपहीके हाथ है। सुबह चलते चलते खाना खिला आया था और कह आया था, प्यारी चम्पा! घबराना मत, सन्ध्या

समय तक आजाऊँगा। महाराज! आप पहिले उसका सिर तनसे जुदा कर दीजिये, पीछे खुशीसे मेरे प्राण वध कीजिये। यह कहते कहते उसकी आँखोंमें आँसू डबडबा आये, हिचकियाँ बँध गईं, गिड़गिड़ा कर चरणोंमें गिर पड़ा।

राजपूत—हैं-हैं-यह क्या करते हो? उठो और अपना हाल बयान करो।

माणिकलाल—(हाथ जोड़कर) पृथ्वीनाथ! आपके चरणोंकी क़सम, आजसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस डकैतीसे हाथ खींचा, अब कभी ऐसा न करूँगा। सदा आपका दास बना रहूँगा और अगर ज़िन्दगी है तो इस क्षुद्र दाससे एक न एक दिन आपकी भलाई होगी। मेरी जान बचानेका बदला आपको उस दिन मिलेगा जब, भगवान न करें, आप पर कोई भारीसे भारी सङ्कट आवेगा।

राजपूत—तुम हमें क्या जानो?

माणिकलाल—भला, महाराज राजसिंहको कौन नहीं जानता?

राजसिंह—मैंने तुम्हें जीवन दान दिया; लेकिन तुमने ब्राह्मणका धन हरण किया है; यदि मैं तुमको किसी प्रकारका दण्ड न दूँगा तो मुझे राज-धर्मसे पतित होना पड़ेगा; अतः तुम्हें कुछ दण्ड अवश्य होना चाहिये।

माणिकलाल—यह पाप-कर्म मैंने पहिलेही पहल किया है। इसलिये इस अपराधका दण्ड ऐसा न दीजिये कि मेरी और उस मातृहीना बच्चीकी जानपर बन जावे।

यह कहकर उसने कमरसे एक छोटी सी छुरी निकाली और खेलकी तरह अपनी तर्ज्जनी अँगुली काटनेको तय्यार हुआ। छुरीसे माँस कट गया, किन्तु हड्डी न कटी। तब उसने एक पत्थर पर अँगुली रखकर उस पर छुरी जमाई, दूसरे हाथसे एक पत्थरका टुकड़ा उठाकर मार लिया। अँगुली कटकर अलग गिर पड़ी।

माणिकलाल—"महाराज! इस दण्डको मञ्जूर कीजिये।" राणाजीने कहा,—"खैर, यही दण्ड काफ़ी है।"

माणिकलाल—(चरणोंमें सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर) आप ज़रा यहीं ठहरें। मैं अभी आता हूँ।

यह कहकर वह उसी गुफ़ा में गया जहाँ लुटेरोंने आपसमें माल बाँटा था। जाते ही दोनों चिट्ठियाँ, मोतियोंका गजरा और वह अशर्फ़ियाँ उठा लीं और लाकर महाराणाके चरणोंमें रखदीं।

माणिकलाल—महाराज! यह चिट्ठियाँ तो आपही के नाम की हैं। इन्हें मैं पढ़ चुका हूँ; इसलिये अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करता हूँ। ये गजरा

और अशरफ़ियाँ आपकी नज़र हैं। यही हम लोगोंकी आजकी कमाई थी।

महाराणाने चिट्ठियाँ हाथमें लेकर देखीं। उन पर उनके ही नाम का शिरोनामा था। बोले, "माणिक-लाल! चिट्ठी पढ़ने की यह जगह नहीं है। हमारे साथ आ, रास्ता दिखा, क्योंकि रास्ता तेरा जाना हुआ है।"

माणिकलाल रास्ता दिखाता चलता था। राणाजीने देखा कि दस्यु (लुटेरा) न तो ज़खमी हाथकी तरफ़ देखता है न उसके सम्बन्धकी कोई बात ही कहता है और न अपना मुँह ही बिगाड़ता है। राणाजी शीघ्र ही घने बनको पार करके, छोटी सी पहाड़ी नदीके किनारे किनारे चलते हुए एक सुरम्यस्थानमें आ पहुँचे।

आठवाँ परिच्छेद ।

चञ्चलकुमारीकी चिट्ठी ।

चञ्चलकुमारीकी

पहाड़ी स्थान था। एक पहाड़ी नदी कल कल नाद करती हुई बह रही थी। सुन्दर मधुर वायु चल रही थी। कोसों तक हरियाली ही हरियाली नज़र आती थी। वृक्षोंकी फली फूली डालियोंपर जङ्गल और पहाड़ोंकी आब हवा पसन्द करनेवाले पक्षी, अपनी अपनी टोलियाँ बाँधे, आज़ादीके साथ नाना प्रकारकी मन लुभानेवाली बोलियाँ बोल रहे थे। जङ्गली फूलोंने खिल खिल कर पहाड़ी दरख़्तोंकी खूबसूरती और भी बढ़ा दी थी। उस दृश्यको देखकर मन हाथ से निकल जाता था और प्रकृतिके वशीभूत हो जाता था। वहीं एक पत्थरकी शिला पड़ी थी। महाराणा राजसिंह उसी शिलाखण्ड पर बैठकर दोनों चिट्ठियाँ पढ़ने लगे।

पहिले उन्होंने राजा विक्रमसिंहकी चिट्ठी पढ़ी और फेंक दी। पीछे चञ्चलकुमारीकी चिट्ठी पढ़ने लगे, जिसका एक एक वाक्य एक एक शब्द और एक एक अक्षर नश्तरका काम करता था।

प्यारे पाठक! आप भी ज़रा इस चिट्ठीको देख जावें :—

"हे राजन! आप क्षत्रिय-कुलके सूर्य्य—राजपूतोंके सिरताज और हिन्दुओंके शिरोभूषण हैं! न आप मुझे जानते हैं और न मैं आपको जानती हूँ। इसके सिवा, मैं एक ना-समझ बालिका हूँ। यदि आज मुझपर भारी सङ्कट न पड़ता तो, कुलकी कान गँवाकर, हरगिज़ आपको पत्र लिखनेका साहस न करती। मैं आज एक ऐसी आफ़तमें फँसी हूँ जिससे रक्षा करने वाला सिवा आपके और कोई नज़र नहीं आता। आज मुझ पर सख़्त मुसीबत है। मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। यदि ऐसे समय में मेरी क़लम से कोई अनुचित शब्द निकल-जाय तो मुझे क्षमा कीजिये।

"जो आपके पास चिट्ठी लेकर आते हैं वह मेरे गुरु-देव हैं। उनकी ज़बानी आपको मालुम होगा कि यह आपकी दासी राजपूत-कन्या है। रूपनगर अति क्षुद्र नगर, अतिक्षुद्र राज्य है—तथापि विक्रमसिंह सोलङ्की राजपूत हैं। महाराज! राजपूत-कन्यासे मेरा यह मतलब नहीं है, कि आप मुझे इज्ज़तकी निगाह से देखें; बल्कि राजकन्या होने की वजह से मेरे हृदयमें एक प्रकारकी आशा होती है कि आप मुझ अपरचिता को आनेवाली विपत्तिसे रक्षा करेंगे। मैं कोई नीच

जाति नहीं और आप सूर्य्यवंशके सूर्य्य हैं। आपके पुरुषे सदा शरणागतों की रक्षा करते आये हैं। अब आप भी, कृपा करके, मेरी सहायता कीजिये। मैं इस वक्त सख्त मुसीबत में फँसी हुई हूँ।

"यह तो प्रगट ही है कि मैं बड़ी अभागी हूँ। मेरे अभाग्य से ही दिल्लीके बादशाह ने मेरे साथ शादी करनेका पैग़ाम भेजा है। मेरे लेनेके लिये शाही फ़ौज आने ही वाला है।

"महाराजाधिराज! मैं राजकन्या हूँ। क्षत्रिय-कुलमें जन्म लिया है। फिर भला यह क्योंकर हो सकता है कि क्षत्रियोंकी लड़की मुग़ल बादशाह ले जावे? पृथ्वीनाथ! यह तो मुझसे नहीं हो सकता कि मैं जीते जी मुग़ल बादशाह की दासी कहलाऊँ। जी में ठान ली है कि शादी से पहिले ज़हर खाकर अपनी इज़्ज़त बचाऊँ।

"महाराज! यह न समझिये कि मैं बड़ा बोल बोलती हूँ। नहीं, मैं यह खूब जानती हूँ कि मेरे पिता में इतना बल और इतना पराक्रम कहाँ जो बादशाहोंके बादशाह आलमगीर से मुक़ाबला करके मेरे सतीत्वकी रक्षा करें। जबकि जोधपुर, अम्बर प्रभृति के दीर्घ प्रतापशाली राजा लोग दिल्लीके बादशाह को अपनी कन्या देनेमें कलङ्क नहीं समझते—कलङ्क समझना तो

दूर है,उलटा गौरव समझते हैं; तब मैं एक क्षुद्र ज़मीं-दारकी लड़की उनके सामने किस खेतकी मूली हूँ? जोधपुर और अम्बरके मुक़ाबले में रूपनगरकी हैसियत ही क्या है? सूर्य्यकी चमक दमक के सामने सितारोंकी क्या गिन्ती है? किन्तु महाराज! सूर्य्यदेवके अस्त होनेपर क्या जुगनू नहीं चमकता? शिशिरके कारण नलिनीके मुदित होने पर क्या क्षुद्र कुन्द कुसुम नहीं खिलता? जोधपुर अम्बर के कुलध्वंस करने पर क्या रूपनगर को भी अपने कुल को रक्षा न करनी चाहिये? महाराज! भाटोंके मुँह से सुना है, कि एक दफ़ा, बनवासी राणा प्रतापके साथ महाराज मानसिंहने भोजन करना चाहा; किन्तु क्षत्रिय-कुल-भूषण महाराणा प्रतापसिंहने साफ़ कह दिया—"जिन्होंने मुसल्मानोंको अपनी बहिन बेटियाँ दे दीं उनके साथ हम हरगिज़ भोजन नहीं कर सकते।"

"उस समय महाराज मानसिंह से सिवाय आँखें नीची करनेके और कुछ न बन पड़ा। इस बातसे मानसिंह बहुत कुछ जले भुने तो सही, किन्तु हो क्या सकता था। अपना सा मुँह लेकर वहाँसे वापिस चले आये। दिल्ली आकर बहुत कुछ ज़ोर मारा; किन्तु आज तक मुसल्मान आपके यहाँ की लड़की न ले सके। आपने भी उन्हीं महावीरके वंशमें जन्म लिया है। क्या

आपको समझाना होगा कि राजपूत-कुल-कामिनीके लिये ऐसा सम्बन्ध इस लोक और परलोकमें घृणास्पद है? आज तक भी मुसल्मान आप के वंश में विवाह क्यों न कर सके? इसका कारण यह नहीं है, कि आपका राज्य बादशाह आलमगीर के समान है अथवा आपका वंश वीर्यवान और महाबल पराक्रान्त है। रूम और फ़ारसके बादशाह महाबल पराक्रान्त हैं; किन्तु वे दिल्ली के बादशाह को अपनी कन्या देने में अपना गौरव समझते हैं। तब केवल उदयपुराधीश दिल्लीके बादशाहको अपनी कन्या क्यों नहीं देते? सिर्फ़ इसीलिये, कि उदयपुरवाले क्षत्रिय हैं। मैंने भी उसी क्षत्रिय वंशमें जन्म लिया है। क्षत्रियोंका धर्म्म है कि, अपनी इज्ज़त हुरमतके मुक़ाबलेमें अपनी जानको कुछ न समझें। महाराज! मैंने भी प्राण त्याग करके कुल-रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है। पृथ्वीनाथ! सूर्य्यदेव पूरब छोड़कर पच्छिम में उदय हो सकते हैं, महासागर मर्य्यादा त्यागकर पृथ्वीको डुबा सकता है, पर्व्वत-राज अचल अटल हिमालय अपने स्थान से चलायमान हो सकते हैं, परन्तु इस राजपूतकुल-कामिनीकी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं हो सकती। यदि मेरी सहायता पर कोई खड़ा न होगा, यदि कोई क्षत्रिय वीर मेरी इज्ज़त न बचायेगा, तो मैं निश्चयही बिना कुछ इधर उधर किये अपनी नक़द जान

गँवा दूँगी। परन्तु इस क्षणभङ्गर जीवनके लिये धर्म खोकर इस लोक और परलोकमें कलङ्कका टीका न लगवाऊँगी।

"महाराज! मौक़ा पड़नेपर मैंने प्राण विसर्ज्जन करनेकी प्रतिज्ञा की है। ऊपर लिख ही चुकी हूँ कि हिमाचल चलायमान हों तो हो सकते हैं किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा से ज़रा भी नहीं हट सकती। किन्तु महाराज! अभी मेरी चढ़ती जवानी है। अभी मुझे अठारहवाँ वर्ष लगा है। मैंने जगत्में आकर अभी कुछ नहीं देखा है। अभीतक मेरी संसारी वासनएँ पूरी नहीं हुई हैं। इसीसे इस अभिनव जीवनके परित्याग करनेकी इच्छा नहीं होती। किन्तु कौन इस विपद् में मेरी जीवन-रक्षा करेगा? चारों ओर नज़र फैलाकर देखती हूँ; किन्तु इस सङ्कटमें कोई मेरा हाथ बंटानेवाला नज़र नहीं आता। मेरे पितामें तो इतनी शक्ति कहाँ जो आलमगीर बादशाहसे लोहा लें और मुझे जीते जी दिल्ली न जाने दें। भारतमें और भी छोटे बड़े बहुत से राजा हैं; किन्तु वे सब बादशाहके गुलाम हैं—बादशाहके भय से थर थर काँपते हैं—मुग़लोंकी जूतियाँ सीधी करनेमें भी उज्र नहीं करते। क्या मैं उनका भरोसा कर सकती हूँ? केवल आप ही राजपूत-कुल में एक प्रदीप हैं—केवल आप ही स्वाधीन और स्वतन्त्र हैं—केवल उदयपुरे-

ख़ुदही बादशाह के समान हैं। हिन्दुओंमें और ऐसा कोई नहीं है जो विपद में पड़ी हुई बालिका की रक्षा करे—मैंने आपकी शरण ली है। क्या आप मेरी रक्षा न करेंगे? महाराज! जिनके वंशमें आपने जन्म लिया है उन्होंने ज़िन्दगी की बाज़ी लगा कर भी शरणागतों की रक्षा की है। उन्होंने जीवन त्याग दिया—सर्व्वस्व गँवा दिया, किन्तु कायामें प्राण रहते शरणागत को न त्यागा। क्या उन्हीं के वंशधर, आप मुझ शरणागता को मँझधार में डूबने देंगे? क्या आप मेरी धर्म-रक्षा—जीवन-रक्षा—से मुँह मोड़ेंगे? पृथ्वीपति! मैं तो केवल आपहीके मुँहकी ओर निहार रही हूँ। आपको देखकर ही मुझे कुछ धैर्य्य होता है। आपही पर मेरा सारा आशा भरोसा है। आशा नहीं है, कि सूर्य्यवंशोद्भव महाराणा राजसिंह एक शरणागता राजपूत-कुल-कामिनी की रक्षा करनेसे पश्चात्पद होंगे।

"आपसे कितना बड़ा काम करनेके लिये अनुरोध करती हूँ, इस बातको मैं नहीं समझती, ऐसा नहीं है। मैं केवल बालिका-बुद्धिके वशीभूत होकर ऐसी बातें लिखती हूँ, सो नहीं है। मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ, कि मैं आपके लिये एक बहुत ही कठिन काम करनेके लिये छेड़ती हूँ। मैं भली भाँति समझती हूँ कि दिल्लीपतिके साथ एक स्त्री के लिये विवाद करना सहज

काम नहीं है। मुझे अच्छी तरह मालुम है, कि आज इस पृथ्वीपर दिल्लीश्वर के साथ विवाद करके उसके सामने खड़ा रहनेवाला कोई नहीं है। लेकिन तोभी आपको दो एक घटनाओं को याद दिलाती हूँ। महाराणा संग्रामसिंह और बाबर बादशाह में कैसी भयङ्कर लड़ाइयाँ हुईं। क्षत्रियोंने अपने बल पराक्रमसे बाबर शाहको प्रायः राज्यच्युत कर दिया। राजपूतोंने बाबरकी फ़ौजके वह दाँत खट्टे किये कि उसको लाचार होकर राणाजी से सन्धि करके पीछा छुड़ाना पड़ा। महाराणा प्रतापसिंह ने अकबर बादशाह को अपने देशसे किस तरह निकाल कर बाहर किया। यह सब उनकी वीरता और धर्म का नतीजा था। आप उसी सिंहासन पर विराजमान हैं—आप उन्हीं संग्रामसिंह और प्रतापसिंह के वंशधर हैं—आप क्या उनसे हीनबल हैं ? क्या आपने नहीं सुना है कि महाराष्ट्र देशके एक मामूली डाकू शिवाजीने औरङ्गज़ेब के छक्के छुड़ा दिये—उसे पैंड पैंड पर पराभूत किया—जिसके मारे आलमगीर का नाकों दम है, न दिन को चैन पड़ता है न रातको नींद आती है। वही औरङ्गज़ेब राजस्थानके राजेन्द्रके सामने किस गिन्ती में है ?

"आप कह सकते हैं कि हम में निस्सन्देह बहुत सा

बल पराक्रम है, हमारी तलवार पर ज़ङ्ग नहीं है, हम युद्ध-विद्या विशारद हैं, लेकिन ये सब होने पर भी हम तेरे लिये क्यों इतना कष्ट उठावें—एक अपरिचिता मुखरा कामिनीके लिये क्यों प्राणि-हत्या करावें—क्यों लाखों आदमियोंके खूनका अपराध अपनी गर्दन पर लें? महाराज! मैं स्त्री हूँ। स्त्री जातिमें स्वभावसे ही मूर्खता होती है। मैं अपने सतीत्व रत्नकी रक्षाके लिये चारों तरफ़ भटकी; पर मुझे कोई रक्षक न दिखाई दिया तब आपकी शरण ली। अब कहिये, क्या आप मुझ असहायाकी सहायता न करेंगे? सर्व्वस्व-त्यागकर शरणागतकी रक्षा करना क्या राज-धर्म नहीं है? सर्व्वस्वकी बाज़ी लगाकर कुल-कामिनीकी रक्षा करना क्या राज-धर्म नहीं है?"

चिट्ठीमें इतना तो राजकुमारीका लिखा हुआ था। इसके बाद निर्मलकुमारी ने चन्द सतरें लिख दीं थीं। वह हाल राजकुमारी को मालुम हुआ या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते। किन्तु यह लिखा था:—

"महाराज! एक बात लिखते हुए शर्म आती है; किन्तु बिना लिखे भी तो नहीं बनता। इस विपद् में मैंने एक प्रण किया है कि जो वीर मुग़ल बादशाह से मेरी रक्षा करेगा, वह यदि राजपूत होगा और यथाशास्त्र मेरा पाणिग्रहण करेगा तो मैं उसकी दासी

हूँगी। युद्धमें स्त्री लाभ करना वीर पुरुषका धर्म है। सारे क्षत्रियोंके साथ युद्ध करके पाण्डवोंने द्रौपदी को पाया था। भीष्मपितामह अपना बल वीर्य्य प्रकाश करके, सारे राजाओंको नीचा दिखाकर, काशीराजकी अम्बा और अम्बालिका नामक दो कन्या रत्नोंको ले आये थे। हे राजन! रुक्मिणीके विवाह की बात क्या याद नहीं है? महाराज! आज, आप इस पृथ्वीपर अजय और-अद्वितीय वीर हैं—आप क्या वीर-धर्मसे पराङ्मुख होंगे?

"अब जो मैं आपकी महिषी बनना चाहती हूँ, यह मेरी दुराकांक्षा है। यदि मैं आपके ग्रहण करने योग्य न हूँ; तो क्या आपके साथ कोई दूसरा सम्बन्ध स्थापन करनेका भी भरोसा नहीं कर सकती? हे राजन! आपके अनुग्रहसे मैं वञ्चित न रहूँ, मेरे जीवन और धर्मकी आप रक्षा करें, मुझे धर्मच्युत होनेसे बचावें, इसी मतलब से गुरु महाराजके हाथ आपके पास राखि बन्धन भेजा है। वह राखि बाँध देंगे। उसके पीछे आपका राज-धर्म आपके हाथ है। मेरे प्राण मेरे हाथ हैं। यदि दिल्ली जाना होगा तो दिल्ली की राह में विष भोजन करूँगी।"

चिट्ठी पढ़ लेने पर राजसिंहने सिर झुका लिया और कुछ देर तक एक दम चिन्तामग्न हो गये। पीछे सिर

उठाकर माणिकलालसे बोले,—"माणिकलाल! इस पत्रका समाचार तुम्हारे सिवा और कौन जानता है?"

माणिकलाल—महाराज! जो जानते थे उनको आप गुफ़ामें मार आये।

राजसिंह—चलो अच्छा हुआ, अब तुम घर जाओ। मुझसे उदयपुरमें मिलना। ख़बर्दार, इन चिट्ठियोंका हाल किसी से मत कहना।

यह कहकर महाराजने कई अशर्फ़ियाँ जेबसे निकालीं और माणिकलाल के हवाले कीं। माणिक-लाल महाराज को प्रणाम करके अपने घर चलता बना।

नवाँ परिच्छेद।

महाराणाका इरादा।

जसिंह अनन्त मिश्रसे कह गये थे कि तुम यहीं ठहरे रहना, कहीं चल मत देना, मैं तुमसे इसी जगह आकर मिलूँगा। अनन्त मिश्र भी राणाजी की राह देखते रहे—किन्तु उनका चित्त स्थिर न हुआ। पाठक! आप

जानते हैं कि दूधका जला हुआ छाछ फूँक फूँक कर पीता है। भला, अनन्तमिश्र को राणाजी की बातपर कब विश्वास हो सकता था? सवारके सैनिक वेश और रौब-दौबसे मिश्रजी कुछ सहम से गये। राणाजीके जाने बाद, वह इस उधेड़ बुनमें फँसे कि अब उदयपुर जाना तो हो चुका—जो कुछ माया पास थी वह लुटेरोंके नेग लगी—चञ्चलकुमारीका आशा-भरोसा सब जाता रहा—अब रूपनगर भी जाऊँ तो राजकुमारीको क्या कहकर मुँह दिखलाऊँ? मिश्रजी इस तरह ख्यालोंकी गत्तियाँ सुलझा ही रहे थे कि उन्हें सामने की पहाड़ी पर दो तीन आदमी दिखाई दिये। वह लोग इनकी तरफ़ इशारे करके आपसमें कुछ बातें कर रहे थे। नज़र पड़ते ही मिश्रजीके देवता कूँच कर गये। भयके मारे फिर कलेजा काँपने लगा। शरीर सुन्न हो गया। दिलकी धड़कन बढ़ गयी। मिश्रजी मनमें कहने लगे, "क्या लुटेरोंका और नया दल आ पहुँचा? जो कुछ पास था वह छिन गया। उस बार उस पूँजीके बलसे ही जान बची थी। इस बार तो जानकी भी खैर नहीं है; क्योंकि इस समय हमारे पास कुछ भी नहीं है। लुटेरोंको क्या देकर जान बचावेंगे?" मिश्र जी इस तरहके विचारोंमें ग़ोते खा रहे थे कि उनकी निगाह फिर उसी पहाड़ी पर गयी। उन्होंने देखा कि,

पहाड़ी पर खड़े हुए आदमी उनकी ओर उँगली उठा उठाकर बातें कर रहे हैं। देखते ही खून सूख गया। मिश्रजी में जो कुछ साहस था वह भी काफूर होगया। ब्राह्मण देवता भागने की फ़िक्र में उठ खड़े हुए। उसी समय एक आदमी पहाड़ी से उतरने लगा—देखते ही ब्राह्मण देवता के होश हवास जाते रहे। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। सिर पर पाँव रखकर भाग खड़े हुए।

उस समय तीन चार आदमियोंने "धरो धरो, पकड़ो पकड़ो" की आवाज़ लगायी। दो तीन आदमियोंने उनका पीछा भी किया लेकिन ब्राह्मण देवता 'नारायण नारायण' करते तीरकी तरह ऐसे भागे कि एक दम अदृश्य होगये। उन सवारोंने बहुतेरा देखा, मगर मिश्रजीका कहीं पता न चला। ईश्वर जाने, उन्हें ज़मीन खा गयी या आस्मान। सवार बेचारे हैरान होकर लौट आये।

पाठक! शायद आप इन सवारोंको न पहचानते होंगे, किन्तु अब पहचान लें। ये लोग और कोई नहीं थे—महाराणाके नौकर चाकर थे। महाराणाकी तलाश में इधरसे उधर और उधरसे इधर हैरान परेशान होकर मारे मारे फिरते थे। अब हम आपको यह समझायेंगे कि ये लोग महाराणा सहित इस जगह क्यों आये थे।

प्रिय पाठक! राजपूतोंको शिकारका बड़ा शौक़ होता है। उन्हें शिकार खेलने में बड़ा मज़ा आताहै। महाराणा राजसिंहको भी शिकारमें बड़ा प्रेम था। आज महाराणाजी शिकारी पोशाक पहिन, अपने 'विजय' नामक घोड़े पर सवार होकर, सौ सवारों को साथ लेकर, उदयपुरसे चल खड़े हुए। रास्तेमें अपने साथी सवारोंको ठहरनेका हुक्म देकर आप अकेले आगे चल दिये। चलते चलते राहमें एक हिरन नज़र आया। आपने उसके पीछे घोड़ा डाल दिया। अकेले ही उस पहाड़ी पर पहुँचे जहाँसे उन चारों लुटेरोंको जाते देखा था। उन्हीं को तलाश में आपने घोड़ा तो पहाड़ी पर ही छोड़ दिया और आप पैदल चल खड़े हुए। फिर जो कुछ हुआ वह आप को मालुम ही है।

इधर जब महाराणाके आनेमें विलम्ब हुआ, तो साथी सवारोंमेंसे कुछ लोग उनको तलाश में इधर उधर रवान: हो गये। इन लोगोंने पहाड़ी पर राणाजीका घोड़ा तो देखा, किन्तु स्वयं राणाजीको न पाया। बिना सवार घोड़ा देखते ही उन लोगोंके होश उड़ गये। वह लोग आपस में कहने लगे—"लक्षण तो अच्छे मालुम नहीं होते। महाराणाजी न मालुम किस आफ़तमें फँसे हैं। भाइयों! उनका पता लगाना चाहिये।" इस तरह

बात-चीत करते करते उनकी नज़र अनन्त मिश्र पर पड़ी। फिर क्या था एक ने दूसरे से कहा—

एक सवार—क्या आश्चर्य यदि यह मनुष्य कुछ राणाजीके विषयमें जानता हो।

दूसरा सवार—(उँगलीके इशारेसे) वही न जो सामने बैठा हुआ किसी ख्यालमें डूबा हुआ है। अच्छा, तो फिर आओ चलें।

अब एक एक करके उन सबने उतरना शुरू किया। ब्राह्मण देवताकी रूह निकल गयी और इस तरह गायब हुए जैसे गधेके सिरसे सींग। वह सब उनकी तलाशमें दौड़े, किन्तु अनन्त मिश्र उनकी नज़रोंसे गायब होकर जङ्गल में छिप रहे। इधर तो यह हुआ, उधर महाराणा राजसिंह माणिकलालको बिदा करके अनन्त मिश्रके पास आये। वहाँ मिश्रजी तो न मिले, लेकिन उनके साथी खड़े मिले। साथी राणाजी को देखते ही खुशीके मारे फूले जामेमें न समाये। सबके चेहरों पर रौनक़ आगयी। उनकी जय-ध्वनिसे पहाड़ी गूँज उठी। 'विजय' भी उछलता कूदता राणाजीके पास आ खड़ा हुआ। उन्होंने उसकी पीठपर हाथ फेरा।

महाराणाकी पोशाक पर कुछ खूनके दाग़ धब्बे लगे हुए थे। उनको देखकर साथियोंको विश्वास हो गया कि कहीं न कहीं कुछ मारका ज़रूर हुआ है; लेकिन

यह तो चत्रियोंका धर्म ही है। उनमें से किसीको भी हिम्मत न पड़ी जो कुछ पूछे।

महाराणा—यहाँ एक ब्राह्मण बैठा था। क्या तुम लोगोंने उसे देखा?

नौकर—हाँ, महाराज! था तो सही, लेकिन कहीं भाग गया।

नौकर—हम लोग खुद उसकी तलाश में हैरान परेशान हो रहे हैं। बहुत कुछ तलाश की, किन्तु कहीं पता न चला। न जाने उसे ज़मीन खा गयी या आस्मान।

सवारोंमें राणाजीके दो पुत्र, उनके जात-भाई और मन्त्री प्रभृति थे। राणाजी अपने दोनों पुत्रों और मन्त्रियोंको एकान्त स्थानमें ले गये और उनसे कुछ सलाह सूत करके फिर वहीं आकर सब लोगोंसे बोले,— "प्रियजन वर्ग। आज बहुत देर हो गयी है; तुम लोगोंको आज भूख प्यास से बहुत कष्ट हुआ है। इसके लिये मैं आप लोगोंका कृतज्ञ हूँ; किन्तु आज उदयपुर चलकर भूख प्यास निवारण करना हम लोगोंके भाग्यमें नहीं लिखा है। क्योंकि हमें एक छोटीसी लड़ाईमें शामिल होना होगा। जो हमारा साथ देना चाहें हमारे साथ चलें। जिनकी इच्छा उदयपुर जानेकी हो, वे उदयपुर चले जावें। मुझे तो इस पहाड़ पर फिर चढ़ना होगा।

इतना कहकर महाराणाने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया। पीछे पीछे उनके सवार "जय महाराणाकी जय, माता जी की जय" बोलते हुए साथ हो लिये।

सवारोंके "हर! हर!" शब्द और घोड़ोंकी टापोंकी कलेजा दहलानेवाली आवाज़ से पहाड़ी गूँज उठी। पहाड़ीपर पहुँच कर सबने रूपनगरकी राह पर घोड़े डाल दिये।

दसवाँ परिच्छेद।

निराशा।

इस जगत् में आशा के समान दूसरी अच्छी चीज़ नहीं है, आशा ही प्राणियों का प्राण है, आशा ही उनका जीवन है, आशासे ही प्राणियोंकी स्थिति है। परन्तु आशा के सहारे ज़िन्दगी बितानेवालों के लिये निराशा परले सिरेका दुःख देनेवाली चीज़ है। निराश मनुष्य बहुधा जान सी प्यारी चीज़को हथेली पर रख कर सिर्फ़ इस ख्याल से हमेशा के लिये आँखें बन्द कर लेते हैं कि इसकी मनहूस सूरत सामने ही न आवे।

इस समय कोई रातके नौ बजे होंगे। मुग़लों के दो हज़ार सैनिक चञ्चलकुमारी के लिवा जाने के लिये रूपनगर के गढ़ में आ उपस्थित हुए। राजा विक्रमसिंह के हाथों में मुहर लगा हुआ शाही फ़रमान दिया गया। फ़रमान पाते ही राजा विक्रमसिंह के दिल की कली कली खिल गयी। मारे खुशी के जामे में फूले न समाये। बदन के कपड़े चर चर फटने लगे। खुशीके नक्कारे बजने लगे। आस पास के सेठ साहूकार और रईस बधाई देने आये। आज रूप नगर में खूब ही धूम धाम मची।

इधर तो यह लोग खुशियाँ मना रहे थे; उधर हमारी चञ्चलकुमारी शाही फ़ौज का आगमन सुनते ही एक दम घबरा गयी। बेचारी के दिल में जो कुछ आशा थी वह भी न रही। कमरे में चिराग़ जल रहा था। वह उसी की ओर मुँह किये, दोनों हाथों से कलेजा थामे उसकी ओर टकटकी बाँध कर देख रही थी। आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। चिराग़ भी चुपचाप उसकी मुसीबत पर आँसू बहा रहा था। चञ्चलकुमारी का रोना कलपना देख कर पत्थरका हिया भी दहला जाता था। इतने में कमरे का दरवाज़ा खुला। निर्मलकुमारी ने चौखट के भीतर पाँव रक्खा। राजकन्या की यह हालत देखकर उसका व्यथित हृदय

और भी दुःखित हो गया। बोलना चाहती थी किन्तु कण्ठसे शब्द न निकलता था। कुछ देर पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह चुपचाप खड़ी रही। फिर जैसे तैसे धैर्य्य धारण करके बोली—

निर्मल—क्यों बहिन! अब क्या करना होगा? शाही फ़ौज के यकायक आ-धमकने से मेरी अक्ल तो हवा होगयी। मेरी समझ में तो कुछ आता नहीं।

चञ्चल—(कुछ मुस्करा कर) क्यों, क्यों, यह तुमने क्या पूछा?

निर्मल—तुम्हें लिवा ले जानेवाले तो आगये! राजसिंह को कुछ ख़बर भी न मिली! उनका जवाब आते आते यह तुम्हें लिवा ले जायँगे। अनन्त मिश्र तो शायद पहुँचे भी न हों। उनको गये हुए आज दूसरा ही दिन तो है। हाय! अब क्या करना होगा?

चञ्चल—(कुछ दुःख से) उसका और उपाय नहीं—केवल मेरा वही अन्तिम उपाय है। दिल्ली की राह में विष भोजन और प्राणत्याग—उस विषय में मैंने अपना चित्त स्थिर कर लिया है। इसलिये मेरे दिल में कुछ रञ्ज नहीं है। एक बार मैं पिता जी से मुग़ल-सेना को सात रोज़ रोकने का अनुरोध करना चाहती हूँ। यदि मुग़ल-सेनापति पिताजी की बात मान जायँ तो बड़ी बात हो।

निर्मल—"अच्छा तो मैं जाती हूँ। कदाचित उनके कहने सुनने से मुगल-सेनापति मान जायँ।" यह कह कर वह रोती हुई उठ खड़ी हुई और राजा विक्रमसिंह के पास जाकर कहने लगी—

निर्मल—महाराज! राजकुमारीने आपके श्रीचरणों में निवेदन किया है कि रूपनगर मेरी प्यारी जन्मभूमि है। वही प्राणाधिक प्यारी जन्मभूमि आज मुझ से सदा को छुटती है। मेरे जन्मदाता माता पिता मुझ से हमेशा को अलग होते हैं। बचपन की सखी सहेलियों से आज उम्र भर को बिछोह होता है। सम्भव नहीं है, कि अब फिर कभी रूपनगर को देख सकूँ; फिर कभी पूज्य माता पिताके दर्शन नसीब हों, फिर कभी बाल्य सखियों के साथ आमोद प्रमोद कर सकूँ। इसलिये चाहती हूँ कि सात दिन का अवसर मिले। उतने दिन आप मुगल-सेना को यहीं ठहरावें। इतने समय में, मैं सब से मिल भेंट लूँगी और अपने जी का दुःख सुख कह सुन लूँगी।

राजा—(आँखोंमें आँसू भरकर) अच्छा तो हम कहलाये भेजते हैं। मानना न मानना उनकी इच्छा पर निर्भर है।

राजा विक्रमसिंहने अपने किसी अफ़सर को मुग़ल-सेनापतिके पास भेजा और एक सप्ताहका अवसर मांगा।

जिस पर मुग़ल-सेनापतिने ज़बानी कहला भेजा;—"बादशाह सलामतने कोई वक्त तो मुक़र्रर नहीं किया, फिर क्या हर्ज है? इधर नयी बेगम साहिबाकी भी मरज़ी है। ख़ैर, पाँच रोज़की मुहलत दे सकते हैं। आयन्द: हमें कोई अख़्त्यार नहीं।"

सेनापतिके मान जानेसे चञ्चलकुमारी को कुछ ढाढ़स सी हो गयी। अब दूसरा दिन भी ख़तम हो चुका। अभी तक उदयपुर से न तो अनन्तमिश्र लौटे और न कोई दूसरा ही कुछ ख़बर लेकर आया। राजकन्याको ज़रा भी आशा न रही। उसने बिलख बिलख कर आस्मान की तरफ़ देखा और बड़े ही दुःखसे कहने लगी,—"हे दीनबन्धु दयासिंधु! क्या इस आफ़तकी मताई—ग़मकी मारी का जान देना ही अच्छा है। ख़ैर, जो तेरी इच्छा।" तीसरी रातको निर्मलकुमारी राजकन्या के पास दुःख दर्दमें शरीक होनेको आई और सारी रात दोनों खूब गले लगकर रोती रहीं।

निर्मल—मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

चञ्चल—मेरे साथ कहाँ चलोगी? मैं तो स्वयं मौत के मुँह में बैठी हूँ।

निर्मल—तुम मरोगी तो क्या मैं जीती रहूँगी? मुझे तुम्हारे बिना जीकर क्या करना है? मैं भी मरूँगी और मरकर परलोक में तुम्हारा साथ दूँगी।

चञ्चल—राम राम ! कोई ऐसी बात कहता है ? मेरे दुखते हुए दिलको क्यों दुखाती है ?

निर्मल—साथ ले चलो, चाहें न ले चलो ; मैं तो तुम्हारा साथ छोड़नेकी नहीं।

सारांश यह कि इसी तरहकी बात-चीतोंमें वह रात भी कट गयी॥ सवेरा होते ही हुसैन अली मन्सबदार ने राजकुमारीको बिदा कराने का पैग़ाम भेजा।

ग्यारहवां परिच्छेद।

खूब रिश्ता निकाला।

पाठक ! अब ज़रा माणिकलाल की भी ख़बर लेनी चाहिये। माणिकलाल महाराणासे बिदा होकर उसी पहाड़ी-गुफ़ा के पास पहुँचे। इस समय माणिकलाल को इच्छा और लूट मार करने की नहीं थी ; किन्तु अपने साथियों के देखने की इच्छा थी। इसीलिये वह वहाँ यह देखने गये, कि कौन मरा और कौन जीता है। यदि कोई एक दम न मरा होगा

तो उसको सेवा शुश्रुषा करके उसे बचाना होगा। ऐसा सोचते सोचते वह गुफ़ा में घुस गये।

वहाँ जाकर देखा कि दो जनों का तो काम तमाम होगया है, उनको लाशें पड़ी हैं। एक आदमी जो केवल मूर्च्छित हुआ था, होश होने पर, कहीं चला गया। अपने साथियों को लाश देखकर माणिकलाल की छाती भर आयी। आँखों से आँसू गिरने लगे। जब कुछ चित्त शान्त हुआ तब जङ्गल से लकड़ियाँ बटोर लाये और उनको दो चिताएँ बनाईं। चिताओं पर उन लाशों को रख कर, चकमक पत्थर से आग निकाली और उनमें लगादी। अपने संगियों का अन्तिम कार्य्य करके वह वहाँ से चल दिये। फिर मनमें आया कि उस ब्राह्मण को भी देखना चाहिये जिसे हम लोग लूट पोट कर पेड़ से बाँध आये थे। वहाँ ब्राह्मण देवता तो न मिले, किन्तु स्वच्छ पार्व्वत्य नदी का जल गदला हो रहा था और जहाँ तहाँ वृक्षों की डालियाँ, लता पता आदि छिन्न भिन्न अवस्था में पड़ी थीं। इन सब चिन्हों से माणिकलाल ने समझ लिया कि इस जगह अनेक मनुष्य आये थे। आगे चल कर देखा कि पहाड़ी पर घोड़ों के चिन्ह हैं। जगह जगह वृक्षों की डालियाँ टूटी पड़ी हैं। माणिकलाल ने ये सब चिन्ह देखते ही समझ लिया कि यहाँ बहुत से सवार आये हैं।

चतुर माणिकलाल इसके पीछे देखने लगे कि सवार किस ओर से किस तरफ़ गये हैं। देखा कुछ पद-चिन्ह दक्खन को गये हैं और कुछ उत्तर को। पद चिन्ह कुछ दूर ही दक्खन ओर जाकर फिर उत्तर तरफ मुड़े हैं। इससे समझा कि सवार उत्तर से आयें और फिर उत्तर ही को लौट गये हैं।

इस तरह सिद्धान्त करके माणिकलाल अपने घर गये। इस स्थान से माणिकलाल का घर दो तीन कोस था। वहाँ पहुँचकर रसोई बनाई। फिर कन्या को खिला पिला, गोदमें लेकर घर से बाहर निकले और दरवाज़े का ताला लगाकर एक ओर चल दिये।

माणिकलाल के कोई सगा सम्बन्धी न था; लेकिन आपने एक अजीब ही क़िस्म का नाता गढ़ कर निकाल लिया। वाह! क्या खूब रिश्ता है! सुनिये उनकी फूफी की ननद की देवरानी के चाचा की लड़की से आप अपनी सगी फूफी का रिश्ता मानते हैं। खैर, आप गोद में लड़की को लिये हुए उसके द्वार पर आये और बाहर ही से आवाज़ लगाई—

माणिकलाल—कोई है? हम अन्दर आवें?

इस आवाज़ के जवाब में अन्दर से आवाज़ आई—"को आय, माणिकलाल! बच्चा का है? आओ ना।"

माणिकलाल बेधड़क अन्दर घुस गये। देखा तो भूआजी बैठी हुई कुछ सीने पिरोने में लगी हुई हैं।

माणिकलाल—यह छोकरी कुछ दिनों तुम्हारे पास रहेगी।

औरत—कितने दिन? पूत!

माणिकलाल—यही कोई दो चार महीने।

औरत—बच्चा! मैं गरीबनी या कों खवैहों का?

माणिकलाल—ऐसी कहाँ की गरीब हो कि दो महीने पोती को खिला भी न सकोगी।

औरत—अरे पूत! दो महीना माँ बिटीवा का दसों रुपिया न खाई? भला मैं कहाँ ते लइयों।

माणिकलाल—इसकी चिन्ता न करो, रुपया हो जायगा। दो महीने रहने दो। उदयपुर जाता हूँ। राजा की नौकरी करली है।

यह कह कर वह अशर्फियाँ जो महाराणा ने उन्हें दी थीं औरत के आगे रख दीं। लड़की को गोद से उतार कर कहा—"ले, जा, अपनी दादी की गोदमें खेल।"

भूआजी यह तो जानती थीं एक अशर्फी में इस छोटी सी लड़की का खिलाना पिलाना बरस दिन चल सकता है। दो महीने खिला पिलाकर बहुत कुछ बच रहेगा। सिवा इसके माणिकलाल ने राजा की नौकरी की है।

कुछ दिनों में अमीर हो जायगा; तब मुझे कहाँ तक न देगा। ऐसी ऐसी बातें सोचकर भूआजी ने अशर्-फ़ियाँ हथिया लीं और ओढ़नी के पल्ले में बाँध कर बोली—

औरत—"पुतवा! तुम्हरी बिटिया का पालना कौन बड़ी बात आय? तुम फिकर न कीन्हों। मैं यहिकाँ जीव के साथ रखिहों।" गोद में लड़की को बिठाल लिया और प्यार करके बोली—" आव, मोरी छौनी!"

सारांश यह कि माणिकलाल अपनी लड़की का बन्दोबस्त करके गाँव के बाहर आये और बिना कहे सुने रूपनगर चल दिये। कुछ दूर चले होंगे कि एक चट्टान पर बैठकर ख्याली घोड़े दौड़ाने लगे—"महाराणा जी इसी पथरीली राह से घोड़े पर सवार होकर अपने साथी सवारों सहित रूपनगर गये हैं। हमारे पास तो घोड़ा है नहीं। हम पैदल हैं। उनके पास रूपनगर जल्दी कैसे पहुँच सकते हैं? फिर सोचा, घोड़े तो इस पथरीली राह पर तेज़ी से चल नहीं सकते। घोड़ों से तो वह पैदल जो धुन बाँधे चला जावे जल्दी पहुँच सकता है।" इस भाँति सोच विचार कर माणिकलाल रास्ते की तकलीफ़ों की परवाह न करके मञ्जिलें मारते मारते थोड़े ही समय में रूपनगर पहुँच गये। यहाँ आकर देखा तो महाराणा की फ़ौज का तो कुछ पता नहीं;

किन्तु मुग़लों के दो हज़ार पैदल और सवारों का जमघट नज़र आया। यह भी सुना कि कल बड़े भोर राजकन्या बादशाही फ़ौजके पहरे में दिल्ली को रवानः हो जायगी।

माणिकलाल एक तीव्र बुद्धि और अनुभवी पुरुष थे। वह बिना सोचे समझे किसी काम में हाथ डालना अनुचित समझते थे। सोचते सोचते उनका दिल इस बात पर जमा कि राजकन्या तो कल सवेरे बिदा होगी। इतने समय में तो हम महाराणाजी को तलाश ही कर लेंगे।

माणिकलाल इस तरफ़ की राह बाटों से अनजान थे। एक सड़क पर मनसूबे गढ़ते २ सिर झुकाये चले जाते थे। इतने में इन्हें सड़क पर एक मनुष्य मिला। वह शायद रूपनगर का ही रहनेवाला था। आपने उस से कहा—"भाई! दिल्लीवाली सड़क बता दो तो बड़ा एहसान हो। यह एक रुपया लो। इसकी मिठाई चखना। वह मनुष्य रुपये का दर्शन करते ही प्रसन्न होगया। उसने शीघ्र ही घुमा फिरा कर माणिकलाल को दिल्ली की सड़क पर लेजाकर खड़ा कर दिया। माणिकलाल ने सीधा दिल्ली का रास्ता पकड़ लिया। वह धीरे धीरे चले जाते थे किन्तु हर तरफ निगाह फैलाकर देखते जाते थे। थोड़ी दूर ही गये होंगे कि

इन्हें एक बहुत ही पेचदार रास्ता मिला। इस रास्ते की दोनों ओर आध कोस तक पहाड़ियाँ ही पहाड़ियाँ थीं और बीच में एक छोटी सी पतली गली थी। यह राह कुछ गावदुम सी थी। इसकी चढ़ाई चढ़ते चढ़ते हट्टे कट्टे जवान को भी हाँपनी आने लगती थी। दाहिनी ओर का पहाड़ अति ऊँचा और दुरारोह था। उसकी चोटी प्रायः रास्ते पर झुकी हुई थी। बाईं ओर का पहाड़ बहुत ऊँचा न था और उस पर चढ़ने का भी सुभीता था। एक बात और थी कि इस राह में पहाड़ों के मारे ऐसा अँधेरा था कि दिन में मशाल की रौशनी दरकार होती थी। माणिकलाल ने इस सङ्कीर्ण अन्धकार-मय स्थान पर पहुँचते ही सोचा—"हो न हो महाराणा इसी पहाड़ी पर कहीं न कहीं टिके हैं। यहाँ इनका क़ाबू बहुत अच्छी तरह चल सकता है। जब मुग़ल-सेना इधर से निकलेगी तब राजपूत अपने करतब आसानी से दिखा सकेंगे। इस स्थान से पत्थर बरसाना कुछ मुशकिल नहीं। नीचे चलनेवालों को ख़बर तक न होगी। दक्खनवाली पहाड़ी बहुत ऊँची है। उस पर सवारों का चढ़ना ज़रा टेढ़ी खीर है। "इस तरह गढ़न्त गढ़ते गढ़ते माणिकलाल बाँई तरफ की राह पर दो चार क़दम ही गये होंगे कि उनके दिल में यह ख्याल पैदा हुआ कि राजपूत हमें

पहचानते नहीं। कहीं मुग़लों का जासूस समझ कर हम पर हाथ साफ़ न कर बैठें। केवल राणाजी पहचानते हैं, किन्तु उनसे जल्दी मुलाक़ात होना कठिन है। इस समय रात हो गयी है। अँधेरा ऐसा है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता।" कुछ सोच समझ कर उन्होंने ज़ोर से आवाज़ लगायी — "महाराणाजी की जय" इस आवाज़ का निकलना था कि चार पाँच सशस्त्र राजपूतोंने उन्हें घेर लिया और चाहते ही थे कि उनका काम तमाम करें कि इतने में यकायक ख़बर्दार! ख़बर्दार! की आवाज़ आई। राजपूतों ने अपनी तलवार म्यान में करलीं और एक राजपूत के मना करते ही सबके सब अपनी जगह पर जा छिपे। अपरिचित राजपूत माणिकलाल को साथ लिये घाटी के अन्दर ही अन्दर थोड़ी दूर चला गया। माणिकलाल ने देखते ही उसे पहचान लिया और हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

राजपूत—यहाँ क्योंकर आये?

माणिकलाल—क्यों न आता? जहाँ स्वामी वहाँ सेवक। जब श्रीमान ने ऐसे कठिन काम पर कमर बाँधी तो मैं क्या वहाँ रह कर अण्डे सेता? मालिक के काम न आता। क्या उस जीवदान का यही बदला था? मैं अकृतघ्न और नमकहराम नहीं हूँ। जब तक दम

में दम है साथ देने को तय्यार हूँ। मुग़ल-सेना प्राय दो सहस्र है; किन्तु आपके युद्ध-कुशल राजपूत बहुत ही कम दिखाई देते हैं। ऐसे कठिन सङ्कट के समय में निकल जाना सरासर धर्म के विरुद्ध है। इसीलिये हाथ बँटाने को हाज़िर हुआ हूँ।

महाराणा—यह कैसे मालुम हुआ कि हम यहाँ ठहरे हैं?

माणिकलाल ने सारी कहानी कह सुनायी। राणा जी बहुत ही प्रसन्न हुए।

महाराणा—बहुत अच्छा किया जो हमारे पास आगये। हमें तो ऐसे मनुष्य की आवश्यकता ही थी। भला, एक काम कर सकते हो?

माणिकलाल—यदि मनुष्य-शक्ति से बाहर न हो।

महाराणा—मुग़ल-सेना की संख्या दो हज़ार है और हमारे सिपाही इने गिने हैं। यद्यपि संग्राम से मुँह मोड़ना क्षत्रिय-धर्मके विरुद्ध है; तौभी यदि सामना करके लड़ाई की जावे तो एक क्षत्रिय भी जान बचा नहीं सकता। इसमें शक नहीं, कि उधर के भी बहुत से आदमी खेत रहेंगे। हमें अपनी जानों की बिल्कुल परवाह नहीं। हमारी बात जान के साथ है। राज-कुमारी तो मेरे जीते जी दिल्ली जा नहीं सकती। तुम तेज़ और चालाक हो। राजकुमारी को किसी उपाय

से अपनी निगरानी में कर लो। लड़ाई तो हुआ ही करेंगी।

माणिकलाल--मैं क्या और मेरी समझ ही क्या? आपही कोई तदबीर निकालें। मुझे आपकी आज्ञा-पालन करने में कुछ उज्र न होगा।

महाराणा—तुम किसी मुग़ल के भेष में शत्रुओं के साथ राज-महल जाना और राजकुमारी की पालकी के साथ ही वापिस आना। फिर तो जो कुछ करना है वह तुम जानते ही हो। जो कुछ होगा सामने आयेगा।

माणिकलाल—बहुत अच्छा, आपकी आज्ञा सिर आँखों पर। किन्तु एक घोड़ा दिलवा दीजिये तो अपने करतब दिखाऊँ।

महाराणा—घोड़ा तो कोई मौजूद नहीं। हमारे साथ तो सौ सवार और सौ ही घोड़े हैं। यदि किसी तरह काम न चल सके तो हमारा घोड़ा ले लो। हम और किस से दिलवा सकते हैं?

माणिकलाल—यह तो मुझ से जीते जी न होगा कि आपका घोड़ा ऐंठ लूँ। अच्छा जाने दीजिये, देखा जायगा। सिर्फ़ हथियार ही दिलवा दीजिये।

महाराणा—यह भी असम्भव है। इतनों ही से काम न चलेगा और कहाँ से आवें जो तुम्हें दिये जायँ। हथियार भी हमारे ही मौजूद हैं, लेने हों तो ले लो।

माणिकलाल—अच्छा, यह भी न सही। ज़िरह बख़्तर ही का सामान कर दीजिये।

महाराणा—यह भी नहीं हो सकता। हमारे बदन पर जो मौजूद हैं उन्हें चाहो तो ले सकते हो।

माणिकलाल—ख़ैर, जाने दीजिये। आपके प्रताप से सब सामान लैस हो जायगा।

महाराणा—(हँस कर) कहाँ से लाओगे? क्या चोरी करोगे?

माणिकलाल—(दाँतों से जीभ दबाकर) ईश्वर न करे, वह काम मैं फिर करूँ। उसकी तो मैं क़सम ही खाचुका हूँ।

महाराणा—फिर क्या करोगे?

माणिकलाल—करेंगे क्या? किसी से ठग लेंगे।

महाराणा—(हँसते हुए) सच है, युद्ध में चालाकी और मक्कारी भी काम आती है। हम भी चोरों की तरह बादशाह-बेगम को चुराने आये हैं। किसी के कानों कान ख़बर नहीं, चोरों की तरह इस पहाड़ी पर आकर छिपे हैं और ताक लगाये बैठे हैं। माणिकलाल! जिस तरह हो तुम अपना काम पूरा करो। देर न करो।

माणिकलाल प्रणाम करके उठ खड़े हुए और वहाँ से चल दिये।

बारहवां परिच्छेद।

अच्छा चकमा दिया।

बरसातका मौसम और साँझका सुहावना समय था। दिन भर जो घटाएँ उमड़ी हुई थीं वह सब छट गई थीं। आस्मान किसी नाजुक बदनकी तरह बादलोंकी महीन रेशमी चादरोंमें झलकता हुआ नज़र आ रहा था। धानी दुपट्टोंकी कोठों परसे दिखाई दे जानेवाली झलकने सैकड़ोंही निगाहोंको अपनी ओर खींच लिया था। सुरीली सदाएँ और गूँजी हुई तानोंकी आवाज़ें शौक़ीन मिज़ाजोंके कलेजेको बिरमाती हुई चली जाती थीं। तबलेकी गमक और तम्बूरेकी चित्त प्रसन्न करने वाली आवाज़के साथही रसीली लोचदार लयमें डूबी हुई तानें ऊँची उठ उठकर दिलोंको बेचैन किये देती थीं। वह ऐसा समय था जो रँगीले माणिकलालकी तबियत खुश करनेके लिये कुछ कम न था।

माणिकलाल घूमते घामते रूपनगरके चौक बाज़ारमें जा पहुँचे। हलवाईकी दूकानसे कुछ मिठाई लेकर चक्खी और पानी पिलानेवालेके डोलसे जल पिया। वहाँसे

चलकर एक तमोलिनकी दूकान पर पान खानेके लिये जा डटे। तमोलिन भी परले सिरेकी सुन्दरी थी। यद्यपि उसने जवानीका वह हिस्सा तय कर दिया था जिसे हम भर जवानी कहते हैं; तथापि तीस सालकी उम्रमें भी उसके चेहरेकी चमक दमक, उसके भरे भरे सुडील अङ्ग उपाङ्ग, उसका छरहरा बदन, कुछ ऐसी चीजें थीं कि रूप लावण्यके परखनेवालोंकी निगाहोंमें बे-समाये न रहती थीं। गोरा गोरा अङ्ग, बड़ी बड़ी आँखें, रसीली चितवन, सिरसे पाँव तक सोने चाँदी के जेवरोंसे लदी हुई, मुँहमें गिलौरी दबाये, अजब आन बानसे गुदगुदे क़ालीन पर बैठी हुई, चोट खाये हुए दिलोंको, निगाहोंकी तीरोंसे, घायल कर रही थी। माणिकलालने दूर हीसे दो पैसे तमोलिनके पास फेंक दिये और दो गिलौरियाँ माँगी। दूकान पर एक बुढ़िया पान लगा लगाकर ग्राहकोंको देती थी। तमोलिनका काम ख़ाली पैसा लेना और ज़रा हँस देना था।

माणिकलाल—बीबी साहिबा! इसमें शक नहीं कि तुम बड़ी चालाक और तेज़दम हो। बड़े बड़े मर्दों को हज़ारोंही कूएँ झँकाये होंगे। मुझे भी एक आप जैसीही औरतकी तलाश थी। भाग्यसे आज आप मिल गयीं! अगर हमारी मदद कर सको तो एक अशर्फ़ी तुम्हारी नज़र करें।

तमोलिन—कैसी मदद ? बतलाइये तो सही।

माणिकलालने धीरे धीरे न जाने कानमें क्या कह दिया। तमोलिन रंगीन-मिज़ाज थी। माणिकलालकी बातोंसे उछल पड़ी।

तमोलिन—अशर्फ़ीका क्या काम है ? इसमें तो बड़ी दिल्लगी होगी।

माणिकलाल—ज़रा क़लम दवात तो लाना।

तमोलिनकी टहलनी एक पड़ोसी बनियेसे काग़ज़ क़लम और दवात ले आयी। माणिकलालने निम्न लिखित पंक्तियाँ तमोलिनकी ओरसे लिखीं,—

"जान मन सलामत !

आपका शहरमें तशरीफ़ लाना मेरे हक़में ग़ज़ब हो गया। जबसे देखा है, ईश्वरकी क़सम, दिल क़ाबूमें नहीं रहा। मेरी ज़िन्दगी अब आपही पर मुनहसिर है। अगर आप न मिले तो जीनेकी उम्मीद नहीं।

निकलती किस तरह है जान, मुज़तर देखते जाओ।
हमारे शहरसे जाओ, तो मिलकर देखते जाओ॥

सुनती हूँ, कल आप रुख़सत हो जायँगे। लिहाज़ा किसी न किसी तरह ज़रूर तशरीफ़ लाये; नहीं तो अपनी गर्दन पर छुरी फेर लुँगी। अगर ख़ून नाहक़ लेना मञ्जूर न हो; तो इस क़ासिदके साथही ग़रीबख़ाने

पर क़दम रञ्जा फ़रमायें कि मकानकी तलाशमें दिक़्क़त न हो।

मैं हूँ आपकी शैदा"—

चिट्ठी लिखनेके बाद लिफ़ाफ़े पर मुहम्मदख़ाँका नाम लिखा गया। तमोलिनने पूछा—"क्यों साहब! यह कौन हैं?"

माणिकलाल—एक सवार हैं।

सच तो यह है कि माणिकलालको मुग़ल-सेनामें न तो किसीसे जान पहचानही थी और न वह किसी सैनिकका नामही जानते थे। सिर्फ़ इस ख़्यालसे मुहम्मदख़ाँका नाम लिख दिया था कि दो हज़ार फ़ौजमें ज़रूर कोई न कोई इस नामका सवार होगा। चिट्ठी लिखनेके बाद तमोलिनसे पूछा,—"इसी मकान पर न ले आवें?"

तमोलिन—यहाँ ठीक न होगा। कोई घर भाड़े पर ले लो।

माणिकलाल और तमोलिन साथ साथ बाज़ार गये। एक मकान किराये पर लिया। उसमें गद्दे तकिये झाड़ फ़ानूस वग़ैरः ऐश इशरतके सब सामान यथा स्थान ख़ूबी से सजा दिये। यह सब करके, माणिकलालने मुग़लोंकी छावनीका रास्ता लिया। रियासतकी तरफ़से बाज़ार लगा हुआ था। नाच रङ्ग गाना बजाना हो रहा था।

सब अपनी अपनी धुनमें मस्त हो रहे थे। माणिक-लालने एक आदमीसे पूछा,—"क्यों साहब! आप मुहम्मदखाँको जानते हैं?" किन्तु उसने कुछ जवाब ही न दिया। इसी तरह कई आदमियोंसे पूछा ताछा, लेकिन किसीने भी ठीक जवाब न दिया। कोई गाली देकर दुतकार देता; कोई तेज़ होकर झिड़क देता, कोई कहता हम क्या जानें होंगे कोई, कोई बोला तलाश न कर लो, हमारे कान क्यों खाये जाते हो? एकने कहा,—"हम उनको तो जानते नहीं, मगर हमारा नाम तो नूरमुहम्मदखाँ है। अगर हमसे काम हो तो कहो।"

माणिकलाल—उनके नामको एक चिट्ठी लाया हूँ।

नूरमुहम्मद—देखें, हमारीही चिट्ठी न हो।

माणिकलालने चिट्ठी तो उनके हाथमें दे दी, किन्तु अपनी चालाकी पर खूब हँसे! अच्छा उल्लू फँसा! इधर मियाँ साहबने ख्याल किया,—"चिट्ठी चाहे किसीकी हो, परन्तु एक सुन्दरीसे प्रत्यक्ष मिलनेका खूब मौक़ा हाथ आया। इसमें चूकना उचित नहीं।"

नूरमुहम्मद—(बात बनाकर) "हाँ, यह चिट्ठी तो हमारी ही है। ठहरो, तुम्हारे साथ चलते हैं।" यह कहकर मियाँ साहब अपने तम्बूमें गये और बालोंमें

सुगन्धित तेल छोड़, इनसे कपड़े तर किये। बन ठनकर अकड़ते हुए माणिकलालके पास आये।

नूरमुहम्मदखाँ—क्यों जी, मकान यहाँसे कितनी दूर होगा?

माणिकलाल—(हाथ जोड़कर) हुजूर! नज़दीक ही तो है। बस, यही कोस भर चलना होगा। घोड़े पर सवार हो लीजिये तो ठीक हो।

खाँ साहब—बहुत अच्छा।

माणिकलाल - भगवान कुशल करें। खाली हाथ चलना ठीक नहीं है। हथियार भी लगा लीजिये, न मालूम कैसा मौक़ा हो। अगर पास होंगे तो काम ही आ जायँगे।

खाँ साहिब—हाँ हाँ, यह तो सच कहते हो। खाली हाथ चलना अक़्लमन्दी नहीं है। हम जङ्गी जवान ठहरे। अच्छा, तो हथियार भी ले लें।

बहुत लिखनेसे क्या, खाँ साहिब अपने डेरेमें जाकर हरबे हथियारोंसे लैस हो आये और घोड़े पर सवार होकर माणिकलालके साथ हो लिये। कुछ ही चले होंगे, कि सामनेसे वही मकान नज़र आया जिसमें तमोलिन साहिबा उनके आनेकी बाट जोह रही थीं।

माणिकलाल—(उँगलीके इशारेसे मकान दिखा कर) हुजूर! घोड़ा अब आगे कहाँ जायगा? मिहरबानी

करके यहीं उतर पड़ें और सामनेवाली हवेली में बेधड़क चले जावें।

ख़ाँ बहादुर घोड़ेसे उतर पड़े। माणिकलालने बाग थाम ली। ख़ाँ साहब क़दम बढ़ाये हुए कुछ दूर ही गये होंगे कि फिर पलट आये और माणिकलालसे बोले—"औरतोंके पास जानेके समय हथियार लगाकर जानेकी क्या ज़रूरत है? अच्छा हो, अगर तुम हमारे हथियार भी अपने पास रहने दो। जब लौटेंगे तब ले लेंगे।

माणिकलाल तो यह चाहतेही थे, फ़ौरन हथियार भी हथिया लिये। अब जङ्गी जवानने घरमें जानेका इरादा किया। ड्योढ़ीमें जाकर झाँकके देखा, तो एक खूब सजे सजाये कमरेमें, मख़मली फ़र्श पर, एक सुन्दरी बैठी हुई गिलौरियाँ लगा रही है। वह ख़ाँ साहबको देखतेही उठ खड़ी हुई और माशूक़ाना अन्दाज़से नाज़ नख़रे करती हुई उनके पास आई। हाथमें हाथ लेकर टहलती हुई उन्हें अन्दर लायी और एक खूबसूरत ज़रीके कामकी मख़मली गद्दी पर उनको बिठाया। उनके बाईं ओर एक चाँदीकी फ़र्शी रक्खी थी। उसने चिलममें आग धर करके फ़र्शी मियाँ साहबके पास रख दी।

ख़ाँ साहब—आप क्यों तकलीफ़ करती हैं? वल्लाह! काँटोंमें घसीटती हैं।

तमोलिन—(गर्मी के मारे पङ्खा उठाकर और खाँ साहब पर झलकर) अजी हजरत! आप हमारे मिहमान हैं। आपकी ख़ातिर तवाज़ञ करना हमारा काम है। मैं किस लायक़............

खाँ साहब—(बात काटकर) बस, पङ्खा इधर दीजिये। आपके नाज़ुक हाथ इस लायक़ नहीं। कहीं नाज़ुक कलाइयोंमें मोच न आ जाय।" यह कहकर खाँ साहब हुक्का गड़गड़ाने लगे और तमोलिन के रूप लावण्यकी छटा निरखने लगे।

तमोलिन—हुज़ूर! गर्मी कैसी पड़ रही है! बदन पसीने पसीने हुआ जाता है! क्या हर्ज अगर आप पोशाक उतार डालें? ज़रा हवा तो लगे। कैसी ऊमस है!

तमोलिनके कहनेसे खाँ साहबने अपने बदनके सारे कपड़े उतार दिये। उधर छबीली तमोलिनने दो एक ऐसी रसीली बातें कहीं कि खाँ साहब जी जानसे लट्टू हो गये। अब पन्द्रह सोलह मिनिटका अर्सा गुज़रा होगा कि मिस्टर माणिकलालने दरवाज़ेकी कुण्डी खड़-खड़ाई। तमोलिनने अन्दरसे जवाब दिया—"कौन है?"

माणिकलाल—(आवाज़ बदल कर) हम।

तमोलिन—(थर थराकर, सहमी हुई आवाज़से खाँ साहबकी ओर मुँह करके) ग़ज़ब हो गया!! मेरा

ख़ाविन्द आ गया! हाय! मैं तो जानती थी कि आज मूआ न आवेगा।

खाँ साहब—फिर अब क्या करना चाहिये?

तमोलिन—आप ज़रा इस पलँगके नीचे छिप रहें। मैं अभी कमबख़्तको टाले देती हूँ।

खाँ साहब—वाह, मर्द बच्चे कहीं चोरोंकी तरह छिपते हैं। आने दो मरदूदको, अभी काटकर गिरा दूँगा।

तमोलिन—(दाँतों तले ज़बान दबाकर) अरे सा-हब! कहीं ऐसा भी न करना। फिर मैं किसकी हो कर रहूँगी? खाना कपड़ा कौन देगा? वाह, क्या आपकी मुहब्बतका यही एवज़ है?

खाँ साहब—फिर तुम्हीं बताओ क्या करें?

तमोलिन—करोगे क्या—ज़रा छिप रहोगे तो क्या नुक़सान होगा? अभी तो मूँड़ी-काटेको धता बताये देती हूँ।

इस बीचमें कई दफ़ा कुण्डी खड़खड़ानेकी आवाज़ आई। लाचार, खाँ साहब पलँगके नीचे, जूतियोंमें, जा छिपे। फिर भी पलँगके नीचे घुसनेमें दो चार जगह ऐसी चोट आ गयी कि खून झलकने लगा। किन्तु प्रेम ऐसी चीज़ है कि इसमें सब कुछ सहना पड़ता है—तरह तरहके कष्ट उठाने पड़ते हैं। मियाँ

साहब सब लेकर एक तरफ़ साँस रोककर छिप गये। उधर तो यह हुआ, इधर तमोलिनने दरवाज़ा खोल दिया और माणिकलाल घरमें घुस आये।

तमोलिन—तुम तो कह गये थे, आज हम न आवेंगे।

माणिकलाल—क्या करें, कुञ्जी यहीं भूल गये।

इस बात पर दोनों चाभी ढूँढ़ने लगे। माणिकलाल ने खाँ साहबके कपड़े उठा लिये और फिर वहाँसे चलने को ठहरायी।

माणिकलाल—अच्छा, तो हम जाते हैं। दरवाज़ा बन्द कर लो।

तमोलिन—बहुत अच्छा, चलिये।

माणिकलाल और तमोलिन दोनोंने बाहर आकर दरवाज़ा बन्द कर दिया। पीछे साँकल चढ़ाकर ताला लगा दिया और वहाँसे दोनों नौ दो ग्यारह हुए। इधर खाँ साहबके दिलकी बात दिलमेंही रह गयी। यार लोग उन्हें इस काठके पींजरेमें बन्द करके चम्पत हो गये। माणिकलालने बाहर आकर खाँ साहबकी पोशाक पहिन ली और हरबे हथियारोंसे सजकर घोड़ेकी पीठ पर जा बैठे। तमोलिनको कई अशर्फ़ियाँ देकर बादशाही छावनीका रास्ता लिया।

तेरहवां परिच्छेद ।

आशाकी झलक ।

कभी कभी कालचक्रकी गति ऐसी आफ़तें ढहाती है कि प्रेम-पन्थमें चलने वालों के बनाये कुछ नहीं बनती। आस्मान उनकी बरबादी पर कुछ इस तरह तुला रहता है कि ये बेचारे किसी बीमारके दिलकी तरह बैठे हुए अपने भाग्यको रोते रहते हैं। विपद रूपी नदीकी बाढ़ उन्हें इतना भी अवसर नहीं देती जो किसी तरफ़ आँख उठाकर देख तो लें। इधर उनके अश्रु-पूर्ण नेत्रोंने किसी ओर देखा कि निराशा अपनी कुन्द छुरियोंको तेज़ करके उनकी आशाके नाश करने पर उतारू हो गयी।

पाठक! आज हम आपको एक ऐसीही दुःख दर्दकी सताई—आफ़तकी मारी—भग्न-हृदयाअबलाको दिखाते हैं, जिसकी बिगड़ी हुई क़िस्मत उसे इतना भी सहारा नहीं देती कि उसको विपदमें कोई हाथ बँटानेवाला तो नज़र आवे। आज राज-दुलारी चञ्चलकुमारीका बुरा हाल है। आज शोकने उसके सुख चैनको नाश

कर दिया है, उसके दिलमें धैर्य्य नहीं है—आशा नहीं है। इसीसे आज उसके चन्द्रमाको लजानेवाले चेहरे पर कान्ति नहीं है। सिरके बाल बिखर रहे हैं, रोते रोते आँखें लाल हो गयी हैं। इस समय न यह किसीसे मिलती भुलती है और न किसीसे बात ही करती है। इसके दिलमें अपने मा बापसे बिछुड़नेका भी कुछ ख्याल नहीं है। चुप साधे मूर्त्तिकी तरह बैठी हुई आँसुओंकी की नदी बहा रही है। ऐसेही समय में, उसकी सच्ची चाहनेवाली, दुःख दर्दमें हाथ बँटानेवाली सहेली निर्मलकुमारी उसके पास आयी और दोनों बाँहें गलेमें डाल फूट फूटकर रोने लगी। उसका रोना कलपना देखकर पत्थरकी भी छाती फटी जाती थी। निर्मलके इस तरह रोनेसे राजकन्याकी छाती और भी फटने लगी। आँसुओंकी नदी उमड़ आयी। बहुतेरा चाहती थी कि दिलको धीरज दे और अश्रु-धाराको रोके; किन्तु कुछ हो न सका। रोते रोते हिचकियाँ बँध गईं। बोलना चाहती थी, किन्तु कण्ठसे शब्द न निकलते थे। अन्तमें जैसे तैसे राजकन्याने छाती बाँधी, दिलको मज़बूत किया, आँखोंके आँसू आँचलसे पोंछकर बोली।

चञ्चलकुमारी—हाय! बचपनकी साथ खेलने वाली, दुःख दर्दमें शरीक होनेवाली बहिनकी सूरत भी देखने को न मिलेगी! मुझसे तो बबूलका वृक्षही भला जो

सदा अपनी जगह पर तो बना रहता है! हाय! मेरे भाग्यमें यह भी नहीं! अपना घरबार, अपनी जन्मभूमि सभी छूटी जाती है!

निर्मल—(हाथोंसे कलेजा थामकर ढाढ़स बँधानेके लिये) बहिन! उदास मत हो। जब तक दममें दम है तुम्हारा साथ देनेको मौजूद हूँ। चाहें जहाँ हो, मैं तुमसे ज़रूर मिलूँगी। मेरा मन तुम्हारे देखे बिना न मानेगा।

चञ्चल—इसका क्या भरोसा है? मैं तो दिल्लीकी राहमें अपने प्राण तज दूँगी।

निर्मल—ख़बर्दार, ऐसा कहीं कर भी न बैठना। जब तक मैं एक बार तुमसे मिल न लूँ आत्मघातसे अवश्य रुकना। मैं तो तुम्हारा साथ देनेको तय्यार हूँ। यह तो मैं भी जानती हूँ कि हम और तुम इस दुनिया में कुछ देर की ही मिहमान हैं।

यह दोनों तो इस तरह एक दूसरेको समझा बुझा-कर दिलको तसल्ली दे रही थीं, कि इतनेमें एक दासी आयी और एक थाल, जिसमें बादशाही गहने और कपड़े रक्खे थे, राजकन्याके सामने रख दिया।

चञ्चलकुमारीने दुलहिनकी पोशाक पहिनी। सोलह शृङ्गार किये, कङ्घी चोटीसे दुरुस्त होकर शाही गहने पहिने। सब तरहसे सज धजकर महादेवजीके मन्दिर

में गयो। बड़ी श्रद्धा भक्तिसे उन पर धूप, दीप, नैवेद्य, बेलपत्र, फूल, चन्दन आदि चढ़ाये। कपूरकी आरती उतारी। मूर्त्तिके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और अत्यन्त व्यथित हृदयसे कहने लगी—"हे देवोंके देव महादेव! हे उमापति! लो आज मैं मरने जाती हूँ। न जाने क्यों तुम्हें एक बालिकाका मरना अच्छा मालुम होता है? जो ऐसा ही मञ्जूर था, तो मेरा जन्म रूपनगरके राजाके यहाँ क्यों दिया? अच्छा, जो तुम्हारी इच्छा। मैं तो अब जाती हूँ।"

इस भाँति पूजा प्रार्थना करके राजकुमारी महलको लौटी। इस समय आठ बज गये थे। कूँचका समय समीप था। इसलिये वह माताके महलमें गयी। उनके चरणोंमें गिरकर रोने लगी। पीछे पिताके चरणोंमें गिरकर रोई। माता पितासे बिदा होकर, सखी सहेलियों, घरबारकी औरतोंसे गले लग लग कर रोई। वह सब भी सिसक सिसक कर रोने लगीं। महलमें कुहराम मच गया। चञ्चलकुमारी एक एकसे बिदा होने लगी। किसीको गहना, किसीको कपड़ा, किसी को खिलौना, किसीको रुपया अशर्फी देती थी और कहती जाती थी—"बहिन! भूलना मत, तुम्हारी याद मेरे साथ है। हाय! अब कौन मेरे खाने पीने हँसनेमें शरीक हुआ करेगा? (हिचकी लेकर) अरे मुझे

खूब दिल खोलकर रो तो लेने दो ।" फिर आँसुओंको रोककर आपही आप समझाने लगी—"देखो, बहिन ! मैं बेगम बनने जाती हूँ । हमारे रोनेसे होताही क्या है ? रोते रोते रूपनगरके पहाड़ बहादें तौभी होना कुछ नहीं ।" इस तरह रोते रोते राजकन्याने पालकी पर क़दम रक्खा । राजकुमारीका पालकी पर पैर रखना था कि हज़ार सवार पालकीके आगे और हज़ार पालकी के पीछे हो लिये ।

सवारोंके हाथोंमें नेज़े थे, पहलूसे तलवारें लगी हुईं थीं, ख़मदार तेग़े ज़ीनसे मिले हुए दाहनी तरफ़ पड़े हुए थे, ढालें पीठ पर पड़ी हुई थीं, कमरमें आबदार खञ्जर खुसे हुए थे जिनकी चमकसे बिजली सी कौंधती मालुम होती थी । इन सवारोंके घोड़े तुरकी नसलके थे । क़द कामतमें ठीक । हाथ पाँवसे दुरुस्त । सभी घोड़े ऐसे तेज़ थे कि ज़मीन पर पाँव न रखते थे । रेशमी कलाबत्तूनी लगामें मुँहमें दबाये, गर्दन झुकाये, ज़मीनको तह उलटे देते थे । चीफ़ कमाण्डरके हुक्म देतेही कूँचका बिगुल बजा । बिगुलका बजना था कि लगामें उठ गईं । समन्दरकी तरह सेना उमड़ती हुई चल खड़ी हुई । रूपनगरकी औरतोंने खील बताशोंका मेंह बरसाया । भालोंकी चमक दमकसे बिजली सी चमकती मालुम होती थी ।

सवार सवेरेकी शीतल सुहावनी हवासे मस्त होकर अलापते चले जाते थे। पालकीके पीछे चलनेवाले सवारोंमेंसे एकने यह शेर गाया—

हम जिन्हें दूर समझते थे, वह अज़बस हैं क़रीब।
बाद मरनेके भी, आफतसे बचाने वाले॥

इस दिलचस्प गीतका मतलब समझकर राजकन्याने ख्याल किया—"हे परमेश्वर! क्या यह सच है कि मेरे मृतक शरीरमें जीव डालनेवाला कोई पास ही है?"

सिपाहीका उपरोक्त गीत अलापना राजकन्याके मुरझाये दिलको ताज़ा कर रहा था। वह सोचती थी, क्या राजसिंहने मेरे लिये यह गीत गाया है। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। भला वह महाराज एक साधारण औरतके लिये अपना स्थान त्याग कर इतना कष्ट क्यों उठाने लगे? वह क्या जानती थी कि माणिकलालने इतनी चालें चलकर उसके लिये अपना घोड़ा पालकीके पास ही लगा रक्खा है।
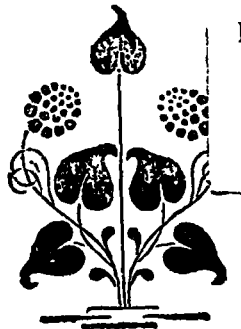
चौदहवां परिच्छेद ।

जोगन बन गयी ।

पाठक ! राजकन्याके रूपनगरसे चले जाने पर रूपनगरकी जान सी निकल गयी। रूपनगरका सारा आनन्द किरकिरा हो गया। रनवासकी औरतोंके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। नाते रिश्तेदार लौंडी बाँदी सबके दिल मुरझा गये। हरेककी आँखोंसे आँसूओंकी झड़ी लग गयी; किन्तु हमारी राजकुमारीके दिली भेदोंसे जानकार और उसके दुःखमें सच्ची सहानुभूति दिखानेवाली निर्मलकुमारीकी आँखोंमें आँसुओंका नाम भी न था। वह तस्वीरकी भाँति खड़ी हुई सबका मुँह देख रही थी। राजकन्याकी जुदाईसे उसकी छाती फटी जाती थी; लेकिन करती तो क्या करती, बेबस थी। उसके बनाये कुछ नहीं बन सकता था। एक एक पल युगके समान बीत रहा था।

जब दिल किसी तरह न माना, तो कोठेकी छतपर चढ़ गयी और आँखें फाड़ फाड़कर चारों तरफ़ देखने लगी; किन्तु राजकन्याका कहाँ पता? हाँ, सवारोंके परे, फौजके दस्ते नज़र आते थे जिनकी सुर्ख़ और

स्याह वर्दियाँ और हथियारोंकी चमक आँखोंमें चकाचौंध लगाये देती थी। सारी सेना अजगरकी तरह लहरा लहरा कर, बल खाती हुई, कभी घाटी पर चढ़ती और कभी घाटीसे उतरती थी। सूर्य्यकी किरणोंसे भाले चमचमा रहे थे। कुछ देर तक तो निर्मल यह तमाशा देखती रही; जब सूर्य्यकी तेज़ीसे आँखें जलने लगीं तब लाचार होकर नीचे उतर आई। सबकी नज़र बचाकर, किसी दासीके फटे पुराने कपड़े उठा लिये और उनके बदलेमें अपने रेशमी क़ीमती कपड़े रख दिये। जेवर और असबाबका भी कुछ ख्य़ाल न किया। सब फेंक फाँक,वही फटे पुराने मैले कुचैले कपड़े पहन कर, राजकन्यासे मिलनेके लिये, जोगन बनकर, राजमहलसे निकल खड़ी हुई और तेज़ीसे क़दम उठाती हुई, दिल्लीवाली सड़क पर-पहुँचकर, बादशाही फ़ौजके पीछे हो ली।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

बुरे फँसे।

सवेरेके कोई नौ बजे होंगे। किसी क़दर सर्द और ताज़ा हवा वृक्षोंकी डालियों को हिलाती हुई चल रही थी। चारों ओर सन्नाटा था। कहींसे एक शब्द भी न सुनायी देता था। सिर्फ़ फ़ौजी दस्ते अब उस पहाड़ीकी घाटियोंमें, जहाँ माणिकलालने राणा राजसिंहसे मुलाक़ात की थी, अजगरकी तरह लहर खाते हुए चले जाते थे। सवारोंकी लाल और हरी पगड़ियाँही पगड़ियाँ दिखाई देतीं थीं। जहाँ तक दृष्टि जाती थी वहाँ तक लाल और हरे फूलोंका बाग़ सा नज़र आता था। किसी सर्दारके सिर पर रत्न जटित कलङ्गी, तो किसीकी पगड़ी पर ज़रीका तुर्रा था। सवारोंके हथियार और फ़ौजी साज सामानकी चमक आँखोंको चौंधियाये देती थी। हथियारों की झनाझन और फ़ौजी बाजेकी गत हर बहादुर सवार के जोशको बढ़ाये हुए थी। हरेक सवार जोशके नशेमें झूमता चला जाता था। हक़ हक़ और सुभान अल्लाह की आवाज़ें ऊँची उठ उठकर पहाड़ीमें गूँज रहीं थीं। बीच बीचमें घोड़ोंका हिनहिनाना और मुसल्मानोंका

अल्लाह अकबरकी पुकार मचाना, भयङ्कर पहाड़ीको और भी भयानक बनाये देता था। दरख़्तोंके पत्ते इस भयानक आवाज़से काँपने लगे। पक्षी मारे डरके अपने अपने घोंसले छोड़ छोड़ कर, जान बचानेको, न जाने कहाँ उड़ गये? सवार और पैदल अपनी धुनमें मस्त चले-जाते थे। अचानक एक आवाज़ धमाकेकी ज़ोरसे सुनायी दी। जो लोग आस पास थे चौकन्ने होकर चारों तरफ़ देखने लगे। शीघ्रही एक पत्थर दस बारह हाथ लम्बा और उसी क़दर चौड़ा ऊपरसे गिरा। उसने गिरते गिरते दो तीन सवारोंको चकनाचूर कर दिया। यह क्या मामिला है? किसीको समझमें न आया। वह इसके जाननेकी फ़िक्रमें थे, कि एक और पत्थर ऊपरसे गिरता दिखाई दिया। देखते देखते एक, दो, तीन, बारह, पन्द्रह, बीस, तीस, तक की नौबत आ गयी। अब तो पत्थरोंका मेह बरसने लगा। सैकड़ों सवार कुचल गये। कितनेही घायल होकर गिर पड़े। कितनोंही के ऐसी चोट आयी कि उठ भी न सके। अब सबने भागनेकी ठहरायी, किन्तु रास्ता कहाँ। पीछेसे सवारोंकी वह रेल पेल थी कि न आगे राह मिलती थी और न पीछे। घोड़े पर घोड़ा और सवार पर सवार गिरने लगा। अजब हाल था। लेकिन बेचारे लाचार थे। करते तो क्या करते? अब सभी सवार सिपाहियोंमें, जो

इस संकीर्ण और अँधेरी राहमें थे, हलचल मच गयी।

माणिकलालने राजकन्याकी पालकीके सवारोंसे कहा—"घबराओ मत। बाईं ओर मुड़ पड़ो!" कहार बेचारे अपनी जान बचानेकी फ़िक्रमें थे। घोड़े पीछे हट हटकर उन्हें कुचले ही डालते थे। इस स्थान पर बाईं तरफ़ एक रास्ता ऐसा तङ्ग था जिसमें मुश्किलसे एक एक आदमी आगे पीछे चल सकता था। बस, इसी जगह पालकी पहुँची थी कि ऊपरसे पत्थर बरसने लगे। इस समय हरेकको अपनी अपनी प्राण-रक्षा की फ़िक्र थी। माणिकलालने कहारोंको वही रास्ता बताया जहाँ पचास राजपूतोंके साथ महाराणा राजसिंह उनकी बाट जोह रहे थे। माणिकलाल पालकीके साथ साथ दर्रेमें दाखिल हुए। एक सवारने माणिकलालके पीछे पीछे उसी दर्रेमें जानेका विचार किया; क्योंकि सिवाय इस स्थानके और कहीं बचावकी सूरत न थी।

इसी बीचमें ऊपर से एक बहुत बड़ा शिलाखण्ड लुढ़कता, सवारोंको घायल करता, इसी स्थान पर, बड़े ज़ोरसे गिरा; जिसके नीचे मियाँ सवार और उनके घोड़ेकी हड्डियाँ चूर चूर हो गयीं और अन्दर जानेकी राह भी बन्द हो गयी। अब उधर कौन जा सकता था? केवल

माणिकलाल और कहार पालकी लिये हुए पहिलेही निकल गये। हुसेन अली मन्सबदार अपने आधीन सवार सिपाहियोंको ललकार ललकार कर आगे बढ़ा रहे थे; किन्तु उनकी आवाज़ कौन सुनता था? सवार दुम दबाये पीछे फिरनेके सिवा कुछ जानतेही न थे। कोई धूल मिट्टी और खूनमें लदफद हो रहा था। किसीके सिरसे पैर तक खूनही खून बह रहा था।

पाठक! आपको मालुम है कि पहाड़की चोटी पर महाराणाके पचास शूरवीर क्षत्री यह करतब दिखा रहे थे। प्राय: पाँच सौ जवानोंका तो खातमा हो गया। दूसरे पचास वीर इस दर्रेमें छिपे हुए अपने करतब दिखानेके लिये समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी दर्रेमें माणिकलाल पालकी लिये हुए प्रवेश कर चुके थे। खोहका द्वार पत्थरसे बन्द हो गया। इससे यह लोग अपनी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता पर प्रसन्न हो रहे थे। राजकन्या अब क्षत्रियोंके अधिकारमें हो गयी। किन्तु मुसल्मानोंको अबतक मालुम न था कि पहाड़ोंके ऊपर कौन शत्रु हमारे रक्तका प्यासा बैठा हुआ है। लाख लाख निगाहें दौड़ाते थे मगर कोई नज़र न आता था। सब ने एक मत होकर पहाड़ोंकी चोटीपर चढ़नेका पक्का इरादा कर लिया। किन्तु उनकी हालत नाज़ुक होती जाती थी। ज्योंही कोई घाटीमें पैर बढ़ाता था कि आस्मानी

गाज उनपर टूट टूट कर पड़ती थी; जिससे सवार और घोड़े दोनों पृथ्वीमें मिले जाते थे। फिर भी मुसल्मानों ने साहस न छोड़ा। यद्यपि राह कठिन थी तथापि एक प्रकारकी आशा इन्हें निचला न बैठने देती थी। इन्हें यह भी ध्यान था कि हम ऐसे सङ्कीर्ण और अन्धकार-मय स्थानमें फँसे हैं जहाँ न तो किसी प्रकारकी सहायता ही आसकती है और न अपने मित्रोंको समाचार ही भेजा जा सकता है। हुसेनअली मन्सबदार ही ऐसे थे जिनकी हिम्मत अबतक बँधी हुई थी और जिनको अब भी अपनी बहादुरीका पूरा पूरा भरोसा था। उनके सवारोंके चेहरे एकदम उतर गये थे और उन पर मुर्दनी और निराशता की झलक दिखाई देती थी। हुसेन अली मन्सबदार सवारोंकी यह हालत देखकर एक सवार से बोले—

हुसेन अली—भाई शेरखाँ! कुछ समझ में नहीं आता क्या करना होगा।

शेरखाँ—जनाब मन! मेरे ख्याल में तो इतनी जानों का खून होते दिखाई देता है। अगर दुश्मन सामने होता तो बेशक मर्दुमी दिखाने में आती। किसी तरह मिर्ज़ा मुबारक अली मन्सबदार तुरकिस्तानी अपने आधीन अफ़सर और सवारोंको लेकर उस पहाड़ी पर चढ़ जायँ और कुछ लोग उस दर्रे में भेजे जायँ जहाँ एक

सवार बेगम साहिबाकी पालकी के साथ घुस गया है। कदाचित इस चेष्टा से कुछ मतलब की बात निकल आवे।

हुसेनअली—यह भी कठिन है; क्योंकि मुबारकअली तक पहुँचना ज़रा टेढ़ी खीर है। उन्हें तो हमारी इस हालत की ख़बर भी न होगी। किसमें दम है जो उन तक पहुँचे? कौन ऐसा है जो उनको जाकर हमारा हाल सुनावे?

शेरख़ाँ,—देखिये, मैं ही बन्दोबस्त करता हूँ।

मिर्ज़ा मुबारक अली मन्सबदार एक हज़ार फ़ौजके साथ ऐंठते इठलाते चले आरहे थे। हुसेनअली मन्सबदारकी विपद का हाल वह क्या जानें कि क्या बीती है। हाँ, इतना तो ज़रूर दिखाई दिया कि कुछ सवार और पैदल दुम दबाये भागे चले आते हैं; लेकिन इस भाग-दौड़का कारण न मालुम हुआ। एक सवार भेज कर सारा हाल दर्याफ़्त किया। मालुम हुआ कि पहाड़ीका रास्ता निहायत ही तङ्ग है। सैकड़ों बहादुर सवार और प्यादे मौतके मुँहमें जा पड़े हैं। सैकड़ों ज़ख़्मी ख़राब ख़स्ता मारे मारे फिरते हैं; किन्तु जान बचानेका कोई ठिकाना नज़र नहीं आता। मिर्ज़ा मुबारकने अपने दो सौ चुनीदा चुनीदा सवारोंको लेकर पहाड़ी पर चढ़नेका विचार किया। इतनेमें शेरख़ाँ

हाय हल्ला मचाते ख़ाक उड़ाते सामने नज़र आये। मिरज़ा मुबारक ने पूछा—"क्यों, क्यों, खैर तो है ?"

शेरख़ाँ—मैं न जाने किस तरह आप तक पहुँचा हूँ। खुदाकी मर्ज़ी में किस का चारा ? हम लोग मुसीबत में फँसे हुए हैं। मारनेवाला सामने नहीं। काफ़ि-रोंसे सामना होना तो दर किनार, उनकी सूरत भी नहीं देखी। हुसेन अली मन्सबदारने मुझे आपही के पास उन दुनयवी फ़रिश्तोंका पता लगानेके लिये भेजा है। बेगम साहिबाकी सवारी इस खोहमें चली गयी है। न जाने उनके उड़ा ले जानेका बन्दोबस्त किया गया है क्या ?

मिर्ज़ा मुबारक—घबराओ नहीं। सब बन्दोबस्त हो चुका है। अगर काफ़िरोंको मार डालेंगे तो फ़तह का डङ्का बजाते हुए अपने घर पहुँचेंगे और जहाँ-पनाह से खिलअत और इनाम लेंगे। अगर मारे गये तो फ़रिश्तोंसे बहिश्तमें जगह लेंगे। वहाँ हूरें अपनी खिदमतके लिये हर वक्त हाज़िर रहेंगी।

इतनी बातें कहकर, मिर्ज़ा मुबारकने रकाबों पर ज़ोर देकर उसी दर्रेकी ओर घोड़ेको दबाया और ज़ोरसे पुकार कर कहा—"भाइयो! जान जाती रहे तो कोई हर्ज नहीं। सौ सवारोंको पीनसके साथ ज़रूर जाना चाहिये ; इससे, आओ, हम सब लोग घोड़ोंसे उतर कर पैदल ही चट्टान पर चढ़ लें।" इतनी बात कहते ही मुबा-

रक अपने आधीन सवारों सहित उस शिला-खण्ड पर जा खड़े हुए जिससे इस खोहका रास्ता बन्द हो गया था। फिर इस चट्टानको फाँदकर उस तरफ़ कूद पड़े। मुबारक अली का साहस देखकर, उनके साथी सौ सवार भी उन्हींके पीछे पीछे लगे चले गये और एक एक करके उतरने लगे।

महाराणाजी यह सब हाल पहाड़ी की चोटीसे देख रहे थे। जब तक मिर्ज़ा मुबारक के कुल सवार दर्रेके अन्दर उतरते रहे, वह कुछ न बोले; किन्तु जब देखा कि सब सवार आ गये, तब अपने पचास सशस्त्र अश्वारोहियों को लेकर उन पर टूट पड़े और लगे एक एक को यमालय पहुँचाने। अब सब हक्का बक्का हो गये। जान बचानी मुश्किल हो गयी। ईश्वरीय मार इसी को कहते हैं। ये बेचारे पैदल और वे हथियारबन्द सवार। इनका और उनका मुक़ाबला ही क्या? बहुतेरे तो घोड़ोंकी टापोंसे ही स्वाहा हो गये। जो नीचे गिरा उसकी हड्डी पसली चूर चूर हो गयीं। सिर्फ़ दस बारह आदमी किसी प्रकार बच गये। उन्हें लेकर मियाँ मुबारकने पीठ दिखाई और राजपूतोंने उनका पीछा करना उचित न समझा।

मुबारकके साथ मुग़ल-वेश में माणिकलाल भी बाहर निकल आये। जो देखता था समझता था कि

जान लिये भागा जाता है। जब मैदान में पहुँचे तो रूपनगर वाली सड़कका रास्ता लिया और फिर न जाने कहाँ चले गये। इधर मियाँ मुबारकने खोह से निकलते ही साथी सवारोंको यों हिम्मत बढ़ाई :—

"इस पहाड़ी पर चढ़ जाना कुछ भी मुश्किल नहीं। सब लोग मय सवारी के चलें; दुश्मनों के नाश करने पर कमर कसें; बातकी बातमें दुश्मन मारे जायँगे।"

यह सुनते ही पाँच सौ मुग़ल "या अली या अली" और "अल्लाह अकबर"का शोर मचाते हुए पहाड़ी पर चढ़ने लगे।

शाही फ़ौजके साथ दो तोपें भी दिल्लीसे आई थीं। उनमें से एक तो पहाड़ी पर चढ़ा दी गयी और दूसरी उस पत्थर की चट्टान पर चढ़ा दी गयी जो खोहके द्वार को रोके हुए थी।
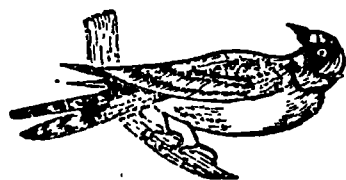
सोलहवां परिच्छेद।

हार मान लो।

पाठक! वही दिन और वही स्थान है जहाँ से हम और आप अभी सैर करते हुए आये हैं; लेकिन कालचक्र ने इतना फ़र्क़ ज़रूर कर दिया है कि वही सूरज जो उस समय पूरब दिशा से निकल कर तेज़ीके साथ बढ़ रहा था, इस समय सारे आस्मानको पार करके, थके माँदे मुसाफ़िरकी तरह पच्छम दिशा को ओर मुँह लटकाये चला जाता है। धूप, भी जिसकी तेज़ी उस समय किसी के उठते हुए जोबन की तरह तेज़ी पर थी, इस समय किसी भाग्यहीन प्रेमी की तरह फीकी पड़ती जाती है।

इस समय; सारी पहाड़ों पर मुसल्मान सिपाही फैल गये हैं। आलमगीरी फ़ौज का झण्डा घाटी के एक ऊँचे टीले पर गाढ़ दिया गया है। जहाँ आप माणिक लाल और मुसल्मान सिपाहियों को मौत के मज़बूत पञ्जे में फँसकर जानें गँवाते देख आये हैं वहाँ अब टोली बाँध बाँध कर आनेवाले सिपाहियों के दलके दल जमा होते जाते हैं। इस टेकरीके ऊपर दूर तक उन

सवारों के परे के परे नज़र आ रहे हैं जिनके चपला के समान चञ्चल घोड़ोंको नस नस में भरी हुई तेज़ी, उनके थके माँदे होने पर भी उन्हें निचला खड़ा नहीं रहने देती। यह सवार हुसेन अली मन्सबदार के आधीन हैं। पाठक ! तकलीफ़ तो होगी, लेकिन अब ज़रा पहाड़ी पर चल कर देखिये कि मिर्ज़ा मुबारक अली कुछ सवारों के साथ, दुश्मन की तलाश में, पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गये हैं और चारों तरफ़ आँखें फाड़ फाड़ कर नज़र दौड़ा रहे हैं; किन्तु दुश्मन का खोज तक नज़र नहीं आता। थोड़ी देर इधर उधर फिरने के बाद नीचे, पच्छिम की ओर, कुछ स्याही सी दिखायी दी। उन्होंने अपने साथियों को बुलाकर उँगली के इशारे से कहा—"ज़ुलफ़िक़ार! ज़रा देखना तो सही, यह स्याही कैसी है ?

ज़ुलफ़िक़ार खाँ—जी हाँ, कुछ न कुछ तो है। कौन जाने ये वही बाग़ी हों।

मिर्ज़ा मुबारक—बेशक, बेशक, ये वही लोग हैं। सुना आपने, वह देखिये सामने डोला भी तो नज़र आता है।

ज़ुलफ़िकार खाँने ग़ौर से देखा तो सचमुच ही चालीस राजपूत, नङ्गी तलवारें सीधी किये, डोलेके साथ साथ नज़र आये। उसने कहा—"मालुम होता है कि

ये लोग यहाँ के कुल पेचीदा रास्तों को जानते हैं।"
इस बातके सुनने पर मिर्ज़ा मुबारक कुछ बोले तो नहीं;
किन्तु सब सरदारों सहित इनके पीछे घोड़े डाल दिये
और साथ ही यह भी समझाया कि इनके पास चलने
में क्या अजब है कि दर्रे के किसी दूसरे निकास पर जा
निकलें जिधर से ये लोग उतार पर पहुँचे हैं।

थोड़ी दूर चलने के बाद पहाड़ी गावदुम ढलवाँ
नज़र आयी। रास्ता भी सीधा निकल गया था। फिर
क्या था, सबने घोड़े दपटा कर राजपूतों को रोक लिया
और आते ही दनादन दो चार फैरें दाग़ दीं। तोप की
घन-गरज आवाज़ और अल्लाह अकबरकी कलेजा दहला-
नेवाली भयङ्कर चिल्लाहट से पहाड़ी गूँज उठी।

पीछे से हुसेन अली मन्सबदार ने भी फ़ौरन तोप
की सलामी सर की। राजपूत घबरा गये; क्योंकि
उनके पास तोप बन्दूक़ वग़ैरः कुछ भी न थीं।

मुसल्मानोंको यों बढ़ता देखकर, राजपूतोंमें एक
हलचल सी पड़ गयी; किन्तु उन्होंने इस समय बड़ी
मज़बूतीसे काम लिया। उनकी निगाहोंमें मुसल्मानी
फ़ौज उनसे बीस गुनी थी। दोनों तरफ़ के रास्ते मुस-
ल्मानोंने रोक लिये थे। अब उनको न जाने की राह
मिलती थी न ठहरनेको जगह। हर राजपूत अपने
घोड़े और तलवार की ओर देखने लगा कि, कब हुक्म

हो और कब वह मुसल्मानी फ़ौज पर टूट पड़े। किन्तु राणाजी मुसल्मानोंके मुक़ाबले को खूब जानते थे—मुसल्मानों की दिलेरी और राजपूतोंकी वीरताके विषय में अच्छा ज्ञान रखते थे। अपने थोड़ेसे राजपूतोंका साहस देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई; लेकिन हमले का इशारा कुछ भी न किया। सिर्फ़ मुसल्मानी फ़ौजकी चाल ढाल देखते रहे। उनके अन्दाज़में मुसल्मानी फ़ौज बारह सौ से कम न थी। उनसे केवल सौ राजपूत कैसे सामना कर सकते थे? सिवा मरने मारनेके कुछ बन न पड़ता; क्योंकि रण से भागना राजपूतोंका धर्म नहीं। तौभी उन्हें अपने राजपूतोंके साहस, बल और पराक्रम पर पूरा भरोसा था। यद्यपि लड़ाई छोटी सी थी, किन्तु ढँग अच्छा न था।

महाराणा राजसिंह अपने वीर राजपूत योधाओंसे कहने लगे,—"तुम जानते हो कि राजपूत के साहस और वीरत्वमें कभी कमी नहीं हो सकती; तौभी इतना तो ज़रूर कहूँगा कि यह मुहिम आसानी से सर होती मालुम नहीं होती। मुसल्मानोंके क़दम तभी हट सकते हैं, जब इनसे हथेली पर सिर रखकर सामना किया जाय। बहादुरों! हिम्मत हार देना क्षत्रिय धर्मके विरुद्ध है। आप लोग मेरे हुक्मकी राह देख रहे हैं। आशा है कि आप लोग,जान पर खेलकर, दुश्मनोंके दाँत

खट्टे किये बिना पानी न पिओगे। मुसल्मानी फ़ौज तक पहुँचना और उसे तित्तर वित्तर करना आप लोगोंका कर्त्तव्य है। आप लोग अनुभवी हैं—आप लोगोंने युद्ध-विद्या सीखी है—आप लोग अपनी तलवारके काट और अपनी ताक़तको जानते हैं। आप लोगोंके लिये मुसल्मानी फ़ौज का नाश करना कौन बड़ी बात है? अगर आप लोगोंने साहस से काम लिया और ज़ोर शोरसे हमला करके लड़ाई की, तो आप सौ के सामने ये हज़ार बारह सौ मुसल्मान भेड़ बकरीकी तरह खेत छोड़ भागेंगे। एक राजपूतका पूरा हाथ दोनों अफ़सरोंके लिये काफ़ी है। मुसल्मानोंमें इतनी हिम्मत कहाँ जो अपने अफ़सरोंके मारेजाने पर भी लड़ते रहें। बे-सर्दारकी फ़ौज दो ही घण्टेमें भाग खड़ी होगी। आप लोग क्षत्रिय हैं—क्षत्रियोंकी सन्तान हैं—आप लोगोंकी नस नसमें पवित्र क्षत्रिय रक्त बह रहा है—आपके पूर्व्व पुरुषोंने सदा तलवार से नाम कमाया था। आप जिन क्षत्रिय शूरवीरोंकी सन्तान हैं वे लोग रणमें पीठ दिखाना धर्म-विरुद्ध समझते थे। आप लोग भी उन्हीं के वीर्य से पैदा हुए हैं। यदि आप लोगोंमें कुछ भी साहस और पराक्रम है और सचमुचही आप लोग क्षत्रिय हैं; तो आओ सबके सब झपट पड़ें और पहले ही आक्रमणमें प्रमाणित कर दें कि सच्चे क्षत्रियोंके

साथ युद्ध करना लड़कों का खेल नहीं है। भाइयो! देखो, पथरीली ज़मीन पर हमारे घोड़े कुछ काम न देंगे; इस से पैदल हो धावा बोल दिया जाय और तोपें छीन ली जायँ तो अच्छा हो। भाइयो! सच्चे क्षत्रियोंके जीवनका भरोसा ही क्या? कदाचित हमारी तुम्हारी भी यह अन्तिम भेट हो। यह मेरा सौभाग्य होगा कि अपनी प्रेयसी, अपने देश और अपनी जातिके लिये मुझे अपनी जान देनी पड़े। मैं तो कुछ ही देरका मिह-मान दिखाई देता हूँ।" राजसिंह के मुँह से यह अन्तिम वाक्य निकलते ही राजपूतोंकी तलवारें चमकने लगीं। मन्त्री और मुसाहिबोंने अपने सिर झुका लिये। महाराजके अन्तिम शब्दोंके सुननेकी ताव न लाकर, राज-पूतोंने बतौर क़सम के तलवारोंकी मूठों पर हाथ डाल दिये और बोले,—"ऐसा होना असम्भव है। आपका नमक हमारी हड्डी हड्डीमें समा रहा है। अपने देश और अपनी जातिके लिये अपना सिर देना हमारा कर्त्तव्य है। ईश्वर साक्षी है, जब तक हाथोंमें बल और तलवारोंमें धार है, कँवर जी! आपका रोंगटा भी मैला नहीं हो सकता। जहाँ आपका पसीना गिरेगा वहाँ हम अपना खून बहादेंगे। हमें क्षत्रिय-धर्मकी क़सम है, जब तक जानमें जान है, आपका साथ हरगिज़ न छोड़ेंगे। यदि आप अपनी जान राजकुमारी चञ्चलदेवी पर देने

को तय्यार हैं ; तो ये सौ जानें भी आप पर न्यौछावर हैं। हाँ, वीरों ! बढ़ो।"

इतना कहकर सबके सब घोड़ोंकी पीठ से कूद पड़े। तलवारें म्यान से खींच ली गयीं। राजपूत चल पड़े। राणाजी सबके आगे हो लिये। राजसिंह केसरिया पोशाक पहिने हुए थे। हाथमें तलवार और कन्धे पर धनुष बाण था। उन्होंने मनमें विचार लिया था,—"या तो आज मौतके मुँहमें जायँगे या सिर पर सेहरा बाँधेंगे।" ये लोग निहायत खुशीसे क़दम बढ़ाये जाते थे। किसीके दिल पर ज़रा भी मैल न था। कुछ ही दूर गये होंगे कि एक ओर से "माता जीकी जय," "काली माईकी जय"का शोर कानोंके पर्दे फाड़ने लगा। राणाजी ने पलट कर देखा तो एक नाज़ुक बदन, जिसका रूप अप्सराओंको लज्जित करता था, जिसके बाल खुले हुए थे और माथेपर भभूत लगी हुई थी, अजब आन बान से, राजपूतोंकी पंक्तिके बीचमें आती दिखाई दी।

राजसिंह ग़ौर से देखते रहे। कुछ समझमें न आया। उन्हें जान पड़ा कि यह भुवन-मोहिनी, रतिका मान मर्दन करनेवाली, अपनी सुन्दरतासे चकाचौंधी लगानेवाली, किसी राजाकी लड़की है या भगवती देवीने राजपूतोंकी सहायताके लिये स्वयँ कष्ट

उठाना स्वीकार किया है। ऐसे विचारोंमें कुछ देर उलझे रहकर महाराजने अपने सिपाहियोंसे कहा:—"भाइयो! डोला कहाँ है? देखना तो सही।" उन्होंने उत्तर दिया,—"यहाँ ही है, महाराज!"महाराणा ने फिर पूछा,—"देखो, उसमें कोई है कि नहीं।"उन्होंने जवाब दिया,—"है कौन—कोई नहीं। कुमारी जी तो आपके सामने विराजमान हैं।" उन्होंने इतना कहा ही था कि चञ्चलकुमारीने हाथ जोड़कर राणाजीको प्रणाम किया।"

राजसिंह—(आश्चर्य से) हैं! तुम यहाँ कहाँ?

चञ्चल—क्या बताऊँ? महाराज! किसी ज़रूरी बातके कहने के लिये लाचार होकर आयी हूँ। मैं बेशर्म और बेहया हूँ किन्तु अभी तक मैं किसी से छुई नहीं गयी। मेरा सतीत्व रत्न अभी तक अछूता है।

राजसिंह—जो तुम्हारे दिलमें हो बे-खटके कह गुज़रो। किसी तरह का अन्देशा न करो। मैं तो तुम्हारे ही वास्ते आया हूँ।

चञ्चल—(हाथ जोड़कर) महाराज! मैंने चञ्चल स्वभाव, ना-समझी और लड़कपन से आपको बुला भेजा। दिल हर वक्त तो क़ाबू में रहता नहीं। अब, जब से मुग़ल बादशाह की बड़ाई सुनी है उसपर जी जान से मोहित होगयी हूँ। आपसे आज्ञा माँगती हूँ कि आप मुझे दिल्ली जाने से न रोकें।

राजसिंह—(आश्चर्य्यसे गर्दन झुकाकर) यदि तुम्हारा यही विचार है तो जाओ; हम तुम्हें नहीं रोकते। अफ़सोस! स्त्रियोंकी बात पर विश्वास करना बड़ी नादानी है! लेकिन इस समय तो हम तुम्हें न जाने देंगे। मुग़ल समझेंगे कि महाराणाने जान जाने के भय से ऐसा किया है। जब लड़ाईका फ़ैसला हो जाय, चली जाना। हाँ, जवानों! बढ़े चलो।

चञ्चल—(मुस्कराती हुई अपने हाथकी हीरेवाली अँगूठी दिखाकर) महाराज! इस अँगूठीमें हीरा जड़ा है। खाकर सो रहूँगी। बस, भलाई इसीमें है कि आप मुझे दिल्ली जानेसे न रोकें।

राजसिंह—हम तुम्हें पहचान गये। ज़ियादह बक बक क्यों करती हो? हम तुम्हें हरगिज़ न जाने देंगे। अभी अपने तईं हमारी क़ैदमें समझो। जब हमारी जानें निछावर हो जायँ; तब इच्छा हो जहाँ चली जाना।

चञ्चल—(तिरछी चितवनसे देखकर और मुस्कराकर अपने दिलमें) महाराजाधिराज! बन्दी कैसी? आज से तो मैं आपकी पटरानी हो चुकी। यदि ऐसा न भी हुआ, तो क्या मेरी जान तनमें रह जायगी? कभी नहीं। मैं आपका साथ परलोक तक न छोड़ूँगी। यह

सब मैंने आपकी परीक्षा लेनेके लिये कहा है। (प्रगट में चिढ़ाने की इच्छा से) महाराज! बादशाह आलमगीर की बेगमको आप क्योंकर रोक सकते हैं? किसीकी मजाल नहीं, जो आँख उठाकर तो देख सके; कैद करना तो बड़ी टेढ़ी खीर है। देखिये, अभी मुगल-फ़ौज में जाती हूँ। देखूँ तो सही, मुझे कौन रोकता है?

यह कहकर, वह सौन्दर्य्य की साक्षात मूर्त्ति राज-सिंहके सामने से मुसल्मानी फ़ौज की ओर बढ़ी। उसकी सुन्दरता और अपूर्व्व रूप-छटा के मारे, किसीकी हिम्मत न पड़ी जो उसका पल्ला तो छू ले; रोकना तो बड़ी बात थी। राजकन्या हँसती, झूमती, अठखेलियाँ करती हुई पाँच सौ मुगलोंके सामने जाकर खड़ी हो गयी। मुगल सैनिक उस समय अपने अफ़सर के हुक्म की बाट जोह रहे थे। चाहते थे, कि ज्योंही हुक्म मिले त्योंही राजपूतोंसे नाकों चने चबवायें—ऐसा हैरान करें कि छटी तक का दूध याद आजावे। इस सुन्दरीके वहाँ अचानक पहुँचजाने ने सारी फ़ौजको चकित स्तम्भित कर दिया। सबके सब चित्र-लिखे से खड़े रह गये। किसीका क़दम आगे न बढ़ा। सब खड़े खड़े सोचते थे—क्या यह राजा इन्द्रके अखाड़ेकी अप्सरा है अथवा कोह काफ़ (काफ़ पर्वत) की रहनेवाली परि-स्तान की परी है। सबकी निगाहें उसीके चेहरे पर

आ डटीं। नज़र हटाने से न हटती थी। टकटकी बँध गयी।

चञ्चल—इस फ़ौजके अफ़सर कौन साहब हैं?

मुबारक—फ़ौज इस गुनहगार के मातहत है। फ़रमाइये आप कौन हैं?

चञ्चल—मैं एक मामूली औरत हूँ। आप से,एकान्तमें, कुछ कहना है। अगर आपका हर्ज न हो,तो दो बातें सुन लीजिये।

मुबारक—(उँगली के इशारे से उस दर्रे को बता कर जिसमें माणिकलाल चञ्चलकुमारीको लेगया था।) "आप उस दर्रे में तशरीफ़ ले चलें।" आगे आगे चञ्चलकुमारी और पीछे पीछे मियाँ मुबारकने उस दर्रे में क़दम रक्खा। वहाँ दिनमें ही ऐसा अन्धकार था कि उस के सामने काली अँधियारी रात भी मात थी। जब वह ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ उनकी बात कोई न सुन सके; तब राजकुमारी ने खड़ी होकर मुबारक अली से कहा—

चञ्चल—मैं रूपनगरके राजाकी लड़की हूँ। बादशाहने मेरे ही लिये आप लोगोंको भेजा है। आपको मेरे कहने पर विश्वास होता है या नहीं?

मुबारक—क्यों नहीं हुज़ूर? आपका चेहरा और रूप ही कहे देता है कि आप चञ्चलकुमारी हैं।

चञ्चल—तो सुनिये, मैं बेगम बनना नहीं चाहती।

मुझे अपना धर्म बहुत प्यारा है ; किन्तु मेरे पितामें इतनी शक्ति कहाँ जो मुझे बचा सके। इसीसे मैंने अपना आदमी महाराणा राजसिंहके पास भेजा था। लेकिन मेरे अभाग्य से महाराणा सिर्फ़ पचास ही आदमी लेकर आये हैं। उनका बल वीर्य्य और उनका पुरुषार्थ तो आपने देख ही लिया।

मुबारक—(चौंक कर) हैं! तो क्या पचास ही सिपाहियोंने हमारे एक हज़ार आदमियोंको ख़ाकमें मिला दिया ?

चञ्चल—यह कोई तअज्जुबकी बात नहीं। उनका तो यही हाल है। आपने सुना होगा कि ऐसा ही मार्का एक दफ़ा हल्दीघाटमें हो चुका है। लेकिन बीती बातोंसे कुछ मतलब नहीं। इस ज़िक्रको जाने दीजिये। इस समय महाराणा आपसे दबे हुए हैं और इसी वजह से मैं, शर्मको छप्पर पर रखकर, आपके पास हाज़िर हुई हूँ। लड़ाई बन्द कीजिये और मुझे अपने साथ दिल्ली ले चलिये।

मुबारक—हाँ, तो यह क़हिये कि आप अपनी जान देकर राजपूतोंकी जान बचाती हैं ; मगर यह तो बतलाइये वह भी इसमें राज़ी हैं ?

चञ्चल—भला, यह कैसे हो सकता है ? वह तो लड़ाई से कभी मुँह न मोड़ेंगे। अगर आप मुझे

ले चलेंगे तो वह आपसे ज़रूर लड़ेंगे; किन्तु आप मिहरबानी करके तरह देते चलें तो अच्छा हो।

मुबारक—यह तो हो सकता है; मगर उन्हें सरकशी को सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिये। मैं उन्हें क़त्ल न करूँगा, सिर्फ़ क़ैद करूँगा।

चञ्चल—यह तो असम्भव है। आप चाहें उनकी गर्दन क्यों न काट लें; लेकिन वह जीते जी क़ैद न होंगे। वह लड़ाईमें जान देना अच्छा समझते हैं; लेकिन क़ैद होना बुरा समझते हैं।

मुबारक—ख़ैर, देखा जायगा। आप तो अपना पक्का इरादा कहें। दिल्ली चलनेमें कुछ उज्र तो न करोगी?

चञ्चल—(ठण्डी साँस लेकर) हाँ, चलना तो पड़े ही गा; लेकिन यह नहीं कह सकती कि वहाँ तक ज़िन्दा पहुँच सकूँ।

मुबारक—यह क्यों?

चञ्चल—यही कि आप लोग लड़ाईमें लड़भिड़ कर ज़िन्दगी बरबाद करते हैं; मगर हम लोग तो लड़ाईका नाम भी नहीं जानतीं। फिर लड़ना क्या जानें? हाँ, जान दे देना तो हमें भी आता है।

मुबारक—तोबा! तोबा!! आप यह क्या फ़रमाती हैं? हमारा काम तो दुश्मनोंसे पड़ता रहता है; इस

से मरना मारना पड़ता है। खुदा न करे, आपका यहाँ कौन दुश्मन है जो उठती जवानी बरबाद करती हो ?

चञ्चल—यह न पूछिये। हम अपने दुश्मन आप ही हैं।

मुबारक—यह मुमकिन है; लेकिन इस दुश्मन के पास हथियार कहाँ से आये ?

चञ्चल—वाह साहब वाह! क्या ज़हर कुछ कम हथियार है ?

मुबारक—हैं! वह आपके पास कहाँ से आया ?

चञ्चल—इस अँगूठीके हीरेको देखते हैं ? यह हीरा ही मेरा हथियार है।

मुबारक—मादर मिहरबान! आप खुदकशी—आत्म-हत्या—का इरादा क्यों करती हैं ? अगर आपको दिल्ली चलना मञ्जूर नहीं, तो मेरी मजाल भी नहीं कि आपको ले जाऊँ। मेरा तो क्या ज़िक्र है, अगर खुद जहाँपनाह आलमगीर भी तशरीफ़ लाते तो वह भी आपके साथ सख्ती से पेश न आते। बन्देकी तो हक़ीक़तही क्या है ? आप बे-ख़ौफ रहिये। कोई आपकी मर्ज़ीके खिलाफ़ दम नहीं मार सकता; लेकिन राजपूतोंने हज़रत ज़िल सुभानीके साथ वे अदबी का इरादा किया है; इसवास्ते उन्हें मैं माफ़ नहीं कर सकता।

चञ्चल—माफ़ करने को कहता कौन है? आप शौक़से लड़ें मगर * * * * * * *

इतने में राजसिंह अपने साथी वीर राजपूतों को लिये खड़बड़ खड़बड़ करते हुए वहीं पहुँच गये जहाँ चञ्चल कुमारी और मियाँ मुबारक से बात-चीत हो रही थी। राजकन्या ने पलट कर देखा तो महाराणा को अपने पीछे खड़ा पाया।

चञ्चल—अच्छा, आप खुशी से युद्ध कीजिये। राजकन्या उन औरतों में है जो कुछ न कुछ युद्ध-विद्या जानती हैं। (फिर राजसिंह से) महाराज! आप अपनी कमर से लगी हुई तलवार दे दें, तो मुझ पर बड़ा एह-सान हो।

राजसिंह—(हँस कर) "हम समझ गये, आप दुर्गा जीका अवतार हैं।" यह कह कर उन्होंने अपनी तलवार दे दी और राजकन्या दो हाथ बनैठीके फेंकती हुई मियाँ मुबारक के ठीक सामने जा खड़ी हुई।

चञ्चल—"हाँ, अब आजाइये, मिर्ज़ा साहब! आपको भी मालुम होजाय कि राजपूतों की लड़कियाँ लड़ाई को भी खेल समझती हैं। आइये, पहले मुझी से दो चार हाथ हो लें। जब तक दो चार औरतों की जान न जायगी, आपके सुल्तान की नामवरी न होगी।" इस बात के सुनते ही मिर्ज़ा मुबारक मुस्करा दिये। राज-

कन्याकी बात का जवाब तो न दिया ; लेकिन राजसिंह की ओर देख कर कहने लगे—

मुबारक—उदयपुर के बहादुरों ने औरतों की मदद से लड़ना कब से अख़्त्यार किया है ?

राजसिंह—(त्यौरियों पर बल डाल कर, मारे गुस्से के थर थर काँपते हुए) "जब से मुसल्मान बादशाह औरतों पर ज़ुल्म करने लगे ; तभी से राजकन्याओं ने भी लड़ना अख़्त्यार किया है।" इतनी बात मुबारक अली से कह कर अपने साथियों से कहने लगी,—"वीर राज-पुतो ! क्षत्रिय लोग मुँहकी लड़ाई करना नहीं जानते। तलवार से लड़ाई करना उनका बायें हाथ का खेल है। भाइयो ! वृथा की बकवाद में अपना अमूल्य समय नष्ट न करो। शत्रुओं को तलवार के घाट उतारो। इन मुग़लों को चींटी की तरह कुचल डालो।"

अभी तक दोनों फ़ौजें चुपचाप खड़ी हुई अपने अपने अफ़सरों के हुक्म की राह देख रही थीं। हुक्म पाते ही सूरमाँ राजपूत "राणा जी की जय" कहते हुए मुसल्मानों की तरफ़ बढ़े और उधर भी मियाँ मुबा-रक का इशारा ही काफ़ी था। अल्लाह अकबर की चीख मारती हुई मुसल्मानी फ़ौज भी आगे बढ़ी। तलवार से तलवार और योद्धा से योद्धा न भिड़ने पाया था, कि इन दोनों सेनाओं के बीच में राजकन्या नङ्गी तलवार लिये

हुए आखड़ी हुई और दोनों तरफ़के जवानों को ललकार कर बोली—

राजकन्या—बस. आगे क़दम न बढ़ाना। पहले मेरी ज़िन्दगी का फ़ैसला हो जाय, फिर जो चाहे सो करना।

राजसिंह—(क्रोध से) यह क्या करती हो? क्या अपने ही हाथ से राजपूतों पर हमेशा के लिये कलङ्क का टीका लगाओगी? हट जाओ; नहीं तो यही बात कहनेको हो जायगी कि एक औरत की हिमायत से राजसिंह अपनी जान बचा ले गये।

राजकन्या—नहीं महाराज! ऐसा कोई नहीं कह सकता। मैं आप को मरने से नहीं रोकती; क्योंकि यह सब किया धरा मेरा ही है—यह सब बखेड़ा मैंने ही उठाया है; इसलिये चाहती हूँ कि पहले मेरा ही सिर तन से जुदा कर दिया जाय; जिससे सारा क़िस्सा तमाम हो जाय।

राजकन्या को तो इस भयङ्कर युद्ध-भूमि से न हटना था न हटी—मुसल्मान फ़ौज ने जो बन्दूकें तान रक्खी थीं झुकालीं और मिर्ज़ा मुबारक अली यह हाल देखकर अजब असमञ्जस में पड़ गये। आख़िर लाचार होकर दोनों फ़ौजों की तरफ़ हाथ उठाकर ऊँचे स्वर से बोले, "जहाँपनाह आलमगीर का काम औरतों से लड़ना नहीं है; इसलिये मैंने इस सुन्दरीसे हार मानी और लड़ाई

बन्द की। लेकिन मुझे यक़ीन है कि राणा राजसिंह के साथ फिर कभी हार जीत का फ़ैसला करना पड़ेगा; इसवास्ते मैं राणा साहब से कहता हूँ कि अबकी दफ़ा लड़ाई में औरतों को साथ न लावें।" यह बात सुनते ही राजकन्याने मुबारक की तरफ़ देखा; मगर इस वक्त मुसल्मानी फ़ौज की बागें फेर दी गयीं और सब लड़ाई के मैदान से चलने को तय्यार होगये। बिगुल बजने की ही देर थी।

राजकुमारी ने सामने जाकर मुबारक अली से कहा—"क्यों साहब! मुझे क्यों छोड़ जाते हैं? बादशाहने आपको मेरे लिये ही तो भेजा था? अगर आप मुझे न ले चलेंगे; तो वह क्या कहेंगे और आप उन्हें क्या जवाब देंगे"?

मुबारक—आपका फ़रमाना दुरुस्त है; मगर मुझे ज़ियादातर उसकी जवाबदिही का ख्याल है जो सब बादशाहों का बादशाह है।

राजकुमारी - उसका सामना तो परलोक में होगा। तब की तब के हाथ है। जगत् के भय से तो बचना चाहिये।

मुबारक—दुरुस्त है। दुनिया में मुबारक अली को किसी का खौफ़ नहीं। खुदा आपको खुश रक्खे! अब रुख़सत होता हूँ। बन्दगी!

मुबारक अली अपने साथियों को पलट चलने की इजाज़त देने ही को थे, कि इतने में हज़ार बन्दूकों की बाढ़ की आवाज़ सुनाई दी और देखते ही देखते मुग़ल खाक और खून में लोटते दिखाई दिये। मुबारक अली ने ख्याल किया,—"या इलाही! यह नयी आफ़त कहाँ से हम लोगों पर आई!"

सत्रहवाँ परिच्छेद।

राह चलते दुलहिन मिली।

रूपनगरकी सेना अपना असबाब वग़ैरः दुरुस्त करने लगी। कोई कमर कसे हुए था, कोई ढाल, तलवार, बरछे बरछियोंको रियासतके सिलहखानेमें जमा करा रहा था। यह सेना सदा राज्यकी छावनीमें न रहती थी लेकिन काम पड़तेही बुला ली जाती थी और काम हो जाने पर छोड़ दी जाती थी।

आज यह सेना इस मतलबसे बुलायी गई थी कि मुग़लोंकी खातिर तवाज़ञ करे और यदि किसी तरह

मुग़लों की नियत बिगड़े तो लड़ भिड़कर उन्हें भगा दे।

राजकुमारीके बिदा होतेही सिपाही लोग, अपने अपने हथियार सिलहखानेमें दाखिल करा कर, राजा विक्रमसिंहसे इनाम पानेके लिये, राज-महलके द्वार पर खड़े थे। राजा साहब सबको इनाम इक़राम दे देकर घर जानेकी आज्ञा दे रहे थे। वह लोग घोड़ों पर काठियाँ रख रख कर सवार होते जाते थे किन्तु अभी किसी ने राज-द्वारसे बाहर पैर न रक्खा था।

इतनेमें एक मुग़ल सवार पसीनोंमें तर, घोड़ा दौड़ाता हुआ राजा विक्रमसिंहके सामने पहुँचा। सभी ने चकित विस्मित होकर आगन्तुकको तरफ़ निगाहें दौड़ाईं। सभी सोचने लगे—यह क्यों आया है, कुछ न कुछ दालमें काला ज़रूर है। निदान राजा विक्रमसिंहसे बिना पूछे न रहा गया। चटसे पूछही तो बैठे।

राजा—कहो क्या ख़बर है ?

पाठक ! आप तो जानही गये होंगे कि माणिकलाल पिछले परिच्छेदमें मुबारक अलीके साथ खोहके बाहर निकल आये थे और सीधे रूपनगरको ओर बेतहाशा घोड़ा दौड़ाये चले गये थे।

माणिकलाल—(सलाम करके) हुजूर ! ग़ज़ब हो गया ! पाँच हज़ार डाकुओंने डोला घेर लिया ! ! जनाब

हुसेन अली खाँ साहब जान हथेली पर लिये लड़ रहे हैं; लेकिन शाही फ़ौज दुश्मनोंके मुक़ाबलेके लिये काफ़ी नहीं है। इसलिये मुझे आपको ख़िदमतमें भेजा है और कहा है कि मदद कीजिये।" सुनतेही राजा विक्रमसिंहके होश उड़ गये। घबराकर माणिकलाल से कहने लगे—

राजा—"यह भी बड़ी ख़ैर हुई। हमारी फ़ौज तय्यार ही खड़ी है।" इतनी बात माणिकलालसे कहकर अपनी सेनाके सरदारोंसे कहने लगे—"तुम लोगोंको युद्धमें जाना होगा और मैं भी तुम्हारे साथके लिये तय्यार हो आता हूँ।"

माणिकलाल—हुज़ूर! बेअदबी माफ़। अगर हुक्म हो, तो मैं इन्हें लेकर वहाँ पहुँच जाऊँ। ख़ुदा जाने, उन पर क्या गुज़रती होगी। आप और फ़ौज इकट्ठी करके लेते आवें, मगर जल्दी। बाग़ी क़रीब ५००० के हैं। अगर ज़रा भी देर हुई तो ख़ुदा ही हाफ़िज़ है।

राजा—अच्छा, तो आप चलें। मैं भी आता हूँ—घबराइयेगा नहीं। जहाँपनाह का इक़बाल है। डाकुओं के बनाये कुछ न बनेगा।

राजाके आज्ञा देते ही माणिकलाल पाँच हज़ार राजपूतोंको लेकर युद्ध-भूमिकी ओर चल पड़े। थोड़ी ही

दूर गये होंगे कि उन्होंने देखा,—एक अत्यन्त सुन्दरी नारी, अपने तईं बड़ी भारी चादरमें छिपाये, एक वृक्षके नीचे बैठी हुई किसीकी यादमें आँखोंसे मोती गिरा रही है। यद्यपि उस बालाने अपने तईं चादरसे छिपा रक्खा था; तथापि उसकी रूप-छटा हलके हलके बादलोंमें छिपे हुए चाँदकी तरह चारों दिशाओं को आलोकित कर रही थी। भगवान जानें,वह किसकी यादमें इस तरह आँसुओंकी धारा बहा रही थी। ज्योंही उसने फ़ौजके घोड़ोंकी टापोंका शब्द सुना; त्योंही वह उठ खड़ी हुई और भाग जानेके ख्यालमें चारों ओर देखती रही; किन्तु उसे कोई अच्छा रक्षा-योग्य स्थान न दीखा। इतनेमें माणिकलाल घोड़ेसे उतर कर, पैदलही उस सुन्दरीके पास जा खड़े हुए। देखतेही मुग्ध हो गये। मनमें कहने लगे,—"वाह रे विधाता! खूब फ़ुर्सतमें गढ़ी है। रूपके साँचे में ही ढाल दी है। यह उठती जवानी, चाँद सा चेहरा, किसका मन नहीं आकर्षित करेगा? पूर्णमाका चाँद भी इसे देखकर शरमिन्दा होता होगा। उर्व्वशी भी इसके रूपको देखकर मनही मन झेंपती होगी। खैर, इससे इसका ठौर ठिकाना पूछना चाहिये।"

माणिकलाल—तुम कौन हो? यहाँ इस तरह क्यों पड़ी हो?

सुन्दरी—(माणिकलालकी बातका जवाब न देकर) आप किसकी सेनामें हैं ?

माणिकलाल—मैं राणा राजसिंहका दास हूँ।

सुन्दरी—मैं भी रूपनगर की राजकन्या की एक दासी हूँ।

माणिकलाल—तो इस सुनसानमें क्यों ख़ाक छानती फिरती हो ?

सुन्दरी—राजकुमारीजी तो बादशाही फ़ौजके साथ दिल्ली जाती हैं। मैं भी उनके साथ दिल्ली जानेवाली थी। लेकिन वह मुझे अपने साथ ले चलने पर राज़ी न हुईं, मुझे छोड़कर चल दीं; किन्तु मैं उनका साथ नहीं छोड़ सकती। यही कारण है, कि मैं पैदल उनके पीछे पीछे चली जा रही हूँ।

माणिकलाल—मालुम हुआ, इसीसे थक गयी हो और इस वृक्षके नीचे बैठी हुई सुस्ता रही हो।

सुन्दरी—हाँ, चली भी तो बहुत हूँ; लेकिन अब तो चला नहीं जाता। पाँवोंमें छाले हो गये हैं, थकाईके मारे पैर ऐसे भारी हो गये हैं कि उठाये नहीं उठते।

यद्यपि निर्मलकुमारी कुछ बहुत न चली थी; कोस दो कोस ही आयी होगी; किन्तु उस फूलसी नाजुक सुन्दरीके लिये, जो कभी मील भर भी पैदल न चली थी; इतना चलना क्या थोड़ा था ?

माणिकलाल—तो यहाँ पड़े रहनेसे क्या फ़ायदा? क्या तुम्हें इस सुनसान बयाबानमें भय नहीं मालुम होता?

सुन्दरी—भय किसका? मैं तो अपनी जान देने आयी हूँ। इसी जगह मेरे प्राण इस काया से पयान करेंगे।

माणिकलाल—तुम्हें अपनी उठती जवानी पर रहम नहीं आता? जान खोनेसे क्या हाथ आवेगा? राज-कन्या के पास क्यों नहीं चलतीं?

सुन्दरी—चलूँ कैसे, चला तो जाता ही नहीं। तुम तो देख ही रहे हो।

माणिकलाल—अच्छा, तो घोड़े पर बैठ लो।

सुन्दरी—हैं, हैं, घोड़े पर क्या?

माणिकलाल—क्यों? क्या कुछ डर की बात है?

सुन्दरी—क्या आपने मुझे सिपाही समझा है?

माणिकलाल—आजसे सही।

सुन्दरी—मैं घोड़े पर चढ़ना क्या जानूँ? कभी चढ़ी भी हूँ?

माणिकलाल—इसका अन्देशा क्या? हमारे घोड़े पर सवार हो लो।

सुन्दरी—वाह साहब वाह! यह खूब, आपका

घोड़ा मानों वलायती कल है कि बिना चलाये चल ही नहीं सकता।

माणिकलाल—इस बातसे क्यों डरती हो? हम उसे रोके रहेंगे।

अब तक तो निर्मल कुमारी लज्जा त्यागकर माणिकलालको रसीली और लच्छेदार बातोंका जवाब देती रही; किन्तु माणिकलालके अन्तिम उत्तर से कुछ भौएँ तान, मुँह फेर कर, नखरे से बोली—"तुम अपना काम करो। मैं तो इसी वृक्ष के नीचे पड़ी रहूँगी। मुझे राजकुमारीके पास जानेकी कुछ ज़रूरत नहीं है।"

माणिकलालने जब निर्मलकुमारी का रङ्ग ढँग और ही देखा तो सोचने लगे—"ऐसी सुन्दरी नारी हाथमें आकर जाती है। ऐसी सोनेकी चिड़िया हमें इस जीवन में फिर न मिलेगी। यह बिना लालच दिखाये न फँसेगी।" तब कुछ मुस्कराते हुए बात बनाकर बोले,—"तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं?"

निर्मल—नहीं तो।

माणिकलाल—आप हैं कौन जात?

निर्मल—राजपूतानी।

माणिकलाल—वाह वाह! राजपूत तो हम भी हैं। हमारी भी शादी नहीं हुई है। पहली स्त्री मर गयी। एक छोटी सी कन्या है। हम उसकी माँ की फ़िक्र में

थे ; क्या तुम उसकी माँ न बनोगी ? अगर उसकी माँ बनने में उज्र न हो, तो हमारे घोड़े की पीठ पर चढ़ बैठो, इस में कोई कुछ कह भी नहीं सकता।

निर्मल—मुझे आपकी बातों पर विश्वास नहीं होता। अगर सौगन्ध खाओ तो जानूँ कि सच कहते हो।

माणिकलाल—कहो जिसकी क़सम खाऊँ।

निर्मल—तलवार पर हाथ रखकर कहो कि व्याह ज़रूर करेंगे।

माणिकलाल—(तलवार पर हाथ रख कर) अगर आज की लड़ाई से जीते बचे तो तुम्हारे साथ शादी ज़रूर करेंगे।

निर्मल—अब मुझे कोई उज्र नहीं। अच्छा, तो चलो घोड़े पर सवार हो लें। फिर क्या था, माणिक-लालने गोदमें उठाकर निर्मलकुमारी को घोड़े पर सवार कराया और निहायत खुशीसे घोड़ा हाँकना शुरू किया।

हम समझते हैं कि हमारे बहुत से पाठकों को इस कोर्टशिप से दिलचस्पी न हुई होगी ; किन्तु हम करें तो क्या करें। दो दिलोंका आ जाना ही शर्त है। अगर आपको जवानीकी उमङ्ग और किसी नाजुक वदन सुन्दरी से आँख लग जाने की बात कोई याद आजाय तो आप उसका अन्दाज़ा कर सकते हैं।

अठारहवां परिच्छेद।

दैवी सहायता।

माणिकलालने अपनी नयी प्रेयसीको किसी सुरक्षित स्थानपर बैठा कर समझा दिया, कि जब तक मैं समरक्षेत्र से लौट न आऊँ तब तक तुम यहीं बैठी हुई राणाजीकी जयके लिये ईश्वर से आशीर्व्वाद माँगती रहना।" इतना कहकर वह सरपट घोड़ा दौड़ाते हुए युद्ध-भूमिमें पहुँच गये और मुबारक मियाँ के पीछे जाकर टहलने लगे।

पाठक! माणिकलाल की चालाकियाँ आपने देख लीं। विधाताने न मालुम उन्हें किस मसाले से बनाया था? जब देखा कि राजपूत यहाँ से किसी तरह जान बचाकर नहीं ले जा सकते, कुछ देरमें काम तमाम हो जायगा; तब फ़ौरन ही तरकीब ज़ेहन में समायी और रूपनगर की ओर चल खड़े हुए। अपनी बुद्धिमानी और चालाकी से जब पाँच हज़ार सशस्त्र राजपूत लेकर उस स्थान पर पहुँचे और देखा कि कोई दममें लड़ाई छिड़ा ही चाहती है तो मिर्ज़ा मुबारककी फ़ौजकी तरफ़ इशारा करके कहने लगे—

माणिकलाल—देखो जवानों! यही लोग बाग़ी हैं।

इन्हींके दाँत खट्टे करके, इन्हें अपने आधीन करना चाहिये।

राजपूत—ये तो मुसल्मान हैं, जी!

माणिकलाल—क्या मुसल्मान डाकू नहीं होते? सब बुरे काम हिन्दुओंसे ही होते हैं? मारो कम्बख्तों को।

इतना सुनते ही पाँच हज़ार सवारोंने एक साथ बन्दूक़ों की बाढ़ दाग़ दी। दाँय दाँयकी आवाज़ ने मिर्ज़ा मुबारकको चौंका दिया। पलट कर देखा, तो कई हज़ार सवारों ने हमला कर दिया है। सबके हाथ पाँव फूल गये। होश जाते रहे।

एक आफ़त से तो मर मर कर हुआ था जीना।
पड़ गयी और यह कैसी मेरे अल्लाह नयी।

फिर क्या था, जिसका सींग जिधर समाया भाग खड़ा हुआ। मुबारक अलीने बहुत कुछ हाथ पाँव मारे कि सेना साहस न छोड़े। भागतोंको रोकने लगे, किन्तु रुकता कौन था। कोई बात तो सुनता ही न था। सभी भागने की फ़िक्र में थे। राजपूतोंने ऐसी मार मारी कि समर भूमि लाशोंसे भर उठी। खूनके नदी नाले बह निकले। घायलोंकी पुकार और भयङ्कर चीत्कार के मारे कानों के पर्दे फटने लगे। इसी बीचमें माणिकलाल ने राणाजीसे भेंटकी और विनीत भाव से मस्तक नवां कर प्रणाम किया।

राजसिंह—यह क्या बात है? माणिकलाल कुछ जानते हो?

माणिकलाल—(हँस कर) हाँ, महाराज! यह सब किया धरा मेरा ही है। जब देखा कि आप इस तङ्ग अँधेरी पहाड़ीमें अपने साथियों सहित मुसल्मानोंके जालमें फँसना चाहते हैं; तब मुझ से और कुछ तो न बन पड़ा; लेकिन रूपनगर जाकर यह जाल फैलाया जो आप देख रहे हैं।

राजसिंह—हाँ, तो यह कहो कि यह करतूत तुम्हारी ही है। निस्सन्देह तुम बड़े चालाक और होशियार हो। तुमने बहुत बड़ा काम किया है। इसका प्रति-फल तुम्हें उदयपुर चलकर दिया जायगा। लेकिन एक बातका मुझे दुःख रह गया। मुग़लोंको यह दिखाना ज़रूर था कि राजपूत कैसे मरते हैं।

माणिकलाल—यह भी आपके नमक ख़ानेवालोंका काम है। सुसरालकी फ़ौज पर क्या आपका दावा नहीं? ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। अब आप उदयपुर पधारें। इस पहाड़ी और पथरीले मार्ग में मारे मारे फिरनेसे क्या लाभ? राज-नन्दनी को भी लेते चलिये।

राजसिंह—अभी तो हमारे वीर अश्वारोही इधर उधर फिर रहे हैं। सब इकट्ठे हो जायँ तब चलें।

माणिकलाल—अच्छा, मैं उन्हें लेकर आता हूँ । अब आप अपने इन पचास अश्वारोहियोंको लेकर कूँच बोल दें । मैं भी राहमें मिल जाऊँगा ।

राणा राजसिंहने माणिकलाल की सलाह मान ली और राजकुमारी को साथ लेकर उदयपुर की ओर घोड़े डाल दिये ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।

निर्मल का विवाह ।
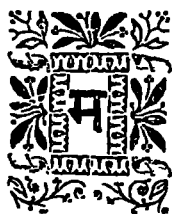
महाराणाके रवानः होते ही माणिकलाल ने पहाड़ी पहाड़ी घूमकर पचास सवारों की खोज लगायी । इस समय वे सब सवार शत्रुओंकी खोज में इधर उधर फिर रहे थे और उनको नीचा दिखानेकी फ़िक्र में बड़ी तनदेही से काम ले रहे थे । माणिकलाल ने एक एक को राणाजी के लौटने का समाचार दिया । उदय-पुरी अश्वारोही अपने राजाकी जय होने से खुश होकर फूले न समाये और शीघ्र ही राणाजीके पास जानेको तय्यार हो गये । माणिकलाल उन्हें अपने सामने चलते

करके, बड़ी प्रसन्नता के साथ, निर्मलके पास आये। पासके गाँवसे एक पालकी किराये पर लाकर उसमें निर्मल कुमारीको सवार कराया। आप भी घोड़ा फेंकते हुए पालकी के साथ हो लिये। कुछ दिनों की सफ़रके बाद अपनी उसी भूआके पास पहुँचे।

माणिकलाल—देखिये भूआजी! हम एक बहू लाये हैं।

इस परमा सुन्दरीको देखते ही बुढ़िया सूख गयी। उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। कुछ देर तक वह गहरे सोच विचारोंमें डूबी रही। मनमें कहने लगी,—"अब हमका काहे का कुछ मिली। यही घरकी मालकिन होई। अब मोर कौन्ह का होई? पर एक दिन तो इन्हँकाँ खियैहों पियैहों।"

बुढ़िया—मोर पतोहू तो बड़ी सुन्दर है!

माणिकलाल—अभी हमने शादी नहीं की है।

बुढ़िया—तो क्या कहीं से उड़ा लाये हो? मोरे घर माँ * * * * * *

माणिकलाल—मोरे घर माँ, मोरे घर माँ, क्या? आज ही विवाह का प्रबन्ध करो। शास्त्रकी रीति से विवाह हो जाना चाहिये।

बुढ़िया—यही तो मोरे मन माँ है। खर्च कहाँ से आई?

माणिकलाल—उसको फ़िक्र ही क्या? सब हो जायगा।

यह कहकर एक अशर्फ़ी जेब से निकाल कर बुढ़िया के हाथ पर रख दी। बुढ़िया उठी और बाहर से किसी पण्डित को ले आई। आस पासके घरोंमें बुलावा फेर दिया। बिरादरी के चन्द स्त्री पुरुषोंके आते ही पण्डित जी ने यथाशास्त्र विधि दोनोंका गठबन्धन कर दिया। विवाह के दूसरे दिन ही माणिकलाल निर्मलको लेकर उदयपुर चले गये।

दूसरा खण्ड।

पहला परिच्छेद।

चञ्चलकी जय।

राजसिंह चञ्चलकुमारी को लेकर उदयपुर पहुँच गये। उसे एक महल में ठहरा दी। कितने ही दिन तक वह गहर गम्भीर विचार-सागर में गोते खाते रहे। अष्ट पहर चौसठ घड़ी उन्हें चञ्चल की ही चिन्ता लगी रहती। बहुत दिन सोच विचार करने पर भी, वह चञ्चल कुमारी को उदयपुर रखने अथवा उसे उसके पिता के पास रूपनगर भेजनेका फ़ैसिला न कर सके। जितने दिन वह इस बातकी मीमांसा न कर सके, उतने दिन वह चंचल कुमारीके पास न गये।

इधर राजसिंहका यह हाल था। उधर चञ्चल-कुमारी भी राजाकी चाल ढाल ढँग डौल देखकर अत्यन्त विस्मित हुई। अपने मनमें विचार करने लगी,—"राणाजी मेरे साथ विवाह करेंगे, ऐसा ढँग तो कुछ भी

दिखायी नहीं देता। अगर वह मेरे साथ विवाह न करें, तो मेरा उनके महल में रहना ठीक नहीं है। लेकिन जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ" ?

राजसिंह जब कुछ मीमाँसा न कर सके, तब एक दिन चञ्चल के मनका भाव जाननेके लिये उसके पास गये। जानेके समय वह उस चिट्ठीको भी साथ लेते गये जो चञ्चल कुमारीने अनन्त मिश्रके हाथ उनके पास भेजी थी और जो उन्हें माणिकलाल द्वारा प्राप्त हुई थी।

राजसिंह एक कुरसीपर बैठ गये। चञ्चलकुमारी ने उनको प्रणाम किया और सलज्ज एवँ विनीत भावसे एक तरफ़ खड़ी हो गई। उसकी लोक-मनो-मोहिनी मूर्त्ति देख कर राजा मोहित हो गये। लेकिन उसी समय सँभल गये और मोह त्याग कर बोले,—"राजकुमारी! अब तुम्हारी क्या मर्ज़ी है, उसी के जानने के लिये ही मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम अपने पिताके घर जाना चाहती हो अथवा यहीं रहना चाहती हो" ?

राणाजी की बात सुनते ही चञ्चलका दिल टूट गया, उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकला—चुप चाप खड़ी रही।

राणाजी ने अपने जेबसे उसकी चिट्ठी निकाल

कर उसे दिखायी और पूछा,—"यह तुम्हारी ही चिट्ठी है न?"

चञ्चल—जी हाँ, यह मेरी ही चिट्ठी है।

राणा—लेकिन यह सारी चिट्ठी एक हाथ की लिखी हुई नहीं जान पड़ती। मालुम होता है, यह दो हाथोंसे लिखी गयी है। तुमने अपने हाथ से इसमें कहाँ तक लिखा है?

चञ्चल—इस चिट्ठीका पहला अँश मेरे हाथ का लिखा हुआ है।

राणा—तब अन्तिम अँश किसी दूसरे के हाथ का लिखा हुआ है?

पाठकों को याद होगा कि चिट्ठीके अन्तिम भागमें विवाहका प्रस्ताव था। चञ्चल कुमारीने जवाब दिया—"यह अन्तिम अँश मेरे हाथका लिखा नहीं है।"

राजसिंहने पूछा—"किन्तु तुम्हारी सलाह से ही यह लिखा गया होगा?"

यह सवाल बड़ा टेढ़ा था। लेकिन चञ्चल कुमारी ने अपने उन्नत स्वभाव के अनुसार जवाब दिया,—"महाराज! क्षत्रिय लोग विवाहके लिये ही कन्या हरण कर सकते हैं और किसी कारण से कन्या हरण करना महा पाप है। मैं आपको महा पाप करने के लिये किस तरह अनुरोध करती"?

राणा—मैंने तुम्हारा हरण नहीं किया है, तुम्हारी जाति और तुम्हारे कुलकी रक्षाके लिये तुम्हारा मुसल्मान के हाथ से उद्धार किया है। अब तुमको तुम्हारे बाप के पास भेज देना ही राज-धर्म है।

चञ्चलकुमारी कई एक बातें कहकर कुछ लजा गयी थी; किन्तु अब सिर ऊँचा करके, राणाजी की तरफ़ देख कर बोली,—"महाराज! अपना राज-धर्म आप जानते हैं। मेरा धर्म मैं जानती हूँ। मैं तो यह जानती हूँ कि जब मैंने आपके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर दिया तब मैं धर्मसे आपकी महिषी हो गयी। आप मुझे ग्रहण करें या न करें; धर्मसे मैं और किसीको वरण नहीं कर सकती। चूँकि इस समय धर्मसे आप मेरे पति हैं, इसलिये आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य्य है। अगर आप मुझे रूपनगर लौट जानेको कहेंगे तो मैं अवश्य लौट जाऊँगी। वहाँ जानेपर मेरे पिता मुझे फिर लाचार होकर बादशाह के पास भेजेंगे; क्योंकि वह मेरी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं रखते। अगर आप का ऐसा ही इरादा था, तो जब मैंने रणक्षेत्रमें आपसे कहा था कि महाराज! मैं दिल्ली जाऊँगी—तब आप ने मुझे क्यों न जाने दिया?"

राजसिंह—केवल अपनी मान-रक्षाके लिये।

चञ्चल—अब जिसने आपकी शरण ले ली है, क्या

उसे आप दिल्ली जाने देंगे?

राणा—यह भी नहीं हो सकता। इससे तुम यहीं रहो।

चञ्चल—क्या मैं यहाँ अतिथि की तरह रहूँगी? रूपनगरकी कन्या यहाँ महिषीके सिवा और तरह नहीं रह सकती।

राणा—तुम्हारे समान भुवन मोहिनी सुन्दरी जिस राजाकी महिषी होगी उसे सब कोई भाग्यवान कहेंगे। तुम अद्वितीया रूपवती हो—पृथ्वीतल पर इस समय और कोई स्त्री रूप लावण्यमें तुम्हारी समता नहीं कर सकती; इससे मैं तुमको अपनी महिषी बनानेमें सुकचता हूँ। सुना है कि शास्त्रोंमें रूपवती भार्य्या शत्रु समान लिखी है।

ऋणकर्त्ता पिता शत्रुः माताश्च व्यभिचारिणी।
भार्य्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः॥

चञ्चल कुमारी कुछ हँसकर बोली,—"बालिका की गुस्ताखी माफ़ करना। उदयपुरकी राज-रानियाँ क्या सारी ही कुरूपा हैं?"

राजसिंह—तुम्हारे समान रूपवती कोई भी नहीं है।

चञ्चल कुमारी बोली—"मेरी एक विनीत प्रार्थना है कि यह बात आप राज-महिषियोंके सामने न कहना।"

राजसिंह को ज़ोरसे हँसी आगयी। चञ्चल कुमारी अब तक तो खड़ी थी; लेकिन अब बैठ गयी। मनमें कहने लगी,—"यह अब मेरे नज़दीक महाराणा नहीं हैं, अब तो यह मेरे वर हैं"।

आसन पर बैठकर चञ्चल कुमारी बोली,—"महाराज! आपकी बिना आज्ञा जो मैं आसन पर बैठ गयी हूँ, वह अपराध आप क्षमा करें। इस समय मैं आपसे कुछ ज्ञान लेने बैठी हूँ—शिष्यका आसनपर अधिकार है। महाराज! रूपवती स्त्री शत्रु कैसे होती है; इस बातको मैं अब तक नहीं समझ सकी हूँ।"

राजसिंह—यह बात समझना तो कुछ भी कठिन नहीं है। स्त्रीके रूपवती होनेसे लड़ाई झगड़ा सहज में खड़ा हो जाता है। देखो, अभी तुम हमारी भार्य्या नहीं हुई हो; तौभी औरँगज़ेब का और हमारा झगड़ा चल गया है। हमारे वंशकी महाराणी पद्मिनी की बात तो सुनी होगी?

चञ्चल—आपकी यह बात मेरे मनमें नहीं जँचती। सुन्दरी स्त्री न होनेसे ही क्या राजा लोग विपदसे छुटकारा पा जाते हैं? क्या रूपवती स्त्रियोंके ही कारण से राजाओंको युद्ध करना पड़ता है? महाराज! मेरे जैसी साधारण स्त्रीके लिये आपका ऐसी बात मुँहसे निकालना क्या उचित है? मैं सुरूपा हूँ चाहें कुरूपा हूँ,

मेरे लिये जो झगड़ा खड़ा हो गया है वह तो खड़ा हो ही गया है।

राजसिंह—और भी एक बात है। रूपवती भार्य्यापर पुरुष अत्यन्त आसक्त हो जाता है। रात दिन उसका मन उसीमें रहता है। हर घड़ी उसकी आँखोंके सामने वही नाचा करती है। उससे ज़रा भी अलग होने पर उसे कल नहीं पड़ती। नूरजहाँ और जहाँगीरकी बात क्या नहीं सुनी है? स्त्रीके प्रेममें एकदम डूब जाना राजाओंके हक़में अच्छा नहीं है; क्योंकि ऐसा करनेसे राज-कार्य्य सुचारु रूपसे नहीं चलता। राजमें अनेक विघ्न खड़े हो जाते हैं। दिल्लीपति चौहान महाराज पृथ्वीराज कन्नौज-राज-नन्दनी पर एकदम आसक्त हो गये थे—रात दिन महलोंमेंही पड़े रहते थे—राज-काज बिल्कुल छोड़ दिया था। उनके उस अतिशय स्त्री-प्रेमका जो परिणाम हुआ, क्या वह तुम्हें मालुम नहीं है? उसी रूपवती भार्य्यामें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण, वह असावधान हो गये और शाहबुद्दीनने आक्रमण करके उनको परास्त कर दिया। वहींसे मुसल्मानों की बादशाहतका सूत्रपात हुआ।

चञ्चल—पहिले राजाओंके सैकड़ों रानियाँ रहतीं थीं। उतनी रानियोंके रहते हुए भी वह लोग राज-कार्य्यसे विरक्त न होते थे। मेरे जैसी बालिकाके प्रेममें

फँसकर महाराणा राजसिंहका मन राज-काजसे हट जायगा, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। मुझे आपकी इस बात पर श्रद्धा नहीं होती।

राजसिंह—खैर, उस बात पर तुम्हारी श्रद्धा नहीं होती तो न सही। शास्त्रमें एक बात और भी कही है—"वृद्धस्य तरुणी विषम।"

चञ्चल—महाराज क्या बूढ़े हैं?

राणा—जवान भी तो नहीं हैं।

चञ्चल—जिसकी भुजाओंमें बल होता है राजपूत-कन्याएँ उसे जवान ही समझती हैं। दुर्बल युवकको राजपूत-कन्याएँ बूढ़ोंकी गिन्तीमें गिनती हैं।

राणा—मैं स्वरूपवान नहीं हूँ।

चञ्चल—कीर्त्ति ही राजाओंका रूप है।

राणा—रूपवान, बलवान, जवान राज-पुत्रोंका अभाव नहीं है।

चञ्चल—मैंने आपको आत्म-समर्पण किया है। अब दूसरे की स्त्री होनेसे मैं द्विचारिणी हो जाऊँगी। मैं अत्यन्त निर्लज्ज की नाईं बातें करती हूँ; किन्तु आप विचार देखें, दुष्यन्तने जब शकुन्तला को त्याग दिया था तब शकुन्तलाको लाचार होकर लज्जा त्यागनी पड़ी थी। आज मेरी भी प्राय वही दशा है। अगर आप मुझे परित्याग करेंगे तो मैं राज-समन्दर में डूब मरूँगी।

राजसिंह इस तरह वाग्युद्धमें चञ्चलसे हार कर बोले,—"तुम जीतीं, हम हारे। तुम्हीं हमारी उपयुक्त महिषी हो। मेरे मनमें जिन जिन बातोंका संशय था वह आज दूर हो गया। तुम हमारी महिषी होगी। लेकिन एक बात है कि मैं इस मामलेमें तुम्हारे पिताका मत लेना चाहता हूँ। तुम्हारे बापकी मर्ज़ी बिना, मैं विवाह करना पसन्द नहीं करता। इसमें एक कारण है, यद्यपि तुम्हारे बाप का राज्य छोटा सा है, सेना थोड़ी सी है; लेकिन विक्रम सोलङ्की वीर पुरुष और योग्य सेनानायक हैं। उस प्रसिद्ध मुग़ल के साथ हमारा युद्ध अनिवार्य्य है। यदि युद्ध होगा तो तुम्हारे बापकी मदद से हमारा बड़ा काम निकलेगा। यदि मैं उनकी बिना मर्ज़ी विवाह कर लूँगा तो वे मेरी सहायता हरगिज़ न करेंगे। बल्कि उनकी अनुमति बिना विवाह करनेसे वे मुग़लोंकी मदद करेंगे और हमसे शत्रुओंका सा व्यवहार करेंगे। इससे मेरी इच्छा है, कि उनको चिट्ठी लिखूँ और उनकी मञ्जूरी मँगाकर तुम्हारे साथ विवाह करूँ। क्या तुम इस बात में सम्मत हो?

चञ्चल—आपकी बात बहुत ही ठीक है। इस बात में असम्मत होनेका तो कोई कारण नहीं देखती। मेरी भी इच्छा है, कि माता पिताका आशीर्व्वाद लेकर ही आपकी चरण-सेवामें रत होऊँ। आप आदमी भेजें।

राजसिंहने नम्रतापूर्व्वक एक चिट्ठी लिखकर दूतके हाथ विक्रमसिंहके पास भेजी। चञ्चलकुमारीने भी माताके आशीर्व्वादकी कामना से एक चिट्ठी लिख दी।

दूसरा परिच्छेद।

पत्रोत्तर।

राणा राजसिंहने जो चिट्ठी विक्रमसिंह को लिखी थी उसका उत्तर ठीक समय पर आगया; किन्तु जो उत्तर आया वह महाभयङ्कर था। उस से राजसिंह और चञ्चलकुमारी की लहलहाती हुई आशा-लता मुर्झा गयी। हम अपने पाठकों के अवलोकनार्थ उस पत्रोत्तर को ज्योंका त्यों नीचे प्रकाशित कर देते हैं:—

"राजन! आप राजपूत-कुल-चुड़ामणि हैं—आप राजपूताने के मुकुट स्वरूप हैं—आप से राजपूत वंश की शोभा है; लेकिन आपने इस समय जो काम किया है वह कुछ सोच विचार कर नहीं किया है। आपने इस काम में हाथ डालकर बुद्धि से काम नहीं लिया है। आपने यह अनुचित काम करके राजपूतों

के मुँह पर स्याही पोत दी है। आपने मुसल्मान-सेना से मेरी कन्या छीनकर मेरा अपमान किया है। यदि आप आड़े न फिरते, तो आज मेरी चञ्चल दिल्लीश्वरी होती। मेरी प्यारी पुत्री के पृथ्वीश्वरी होने में आपने वाधा उपस्थित करके शत्रुका सा काम किया है। आपके इस निन्दित कर्म की मैं प्रशँसा नहीं कर सकता। इस काम से हमारे और आपके बीच में शत्रुता हो गयी है। अब मुझे भी आपके साथ शत्रु का सा व्यवहार करना होगा। आप मेरी मञ्जूरी लेकर मेरी कन्या के साथ विवाह नहीं कर सकते।

"आप कह सकते हैं कि पहले भी वीर क्षत्रियों ने कन्या-हरण करके विवाह किये हैं। भीष्म पितामह अनेक राजाओं से लड़भिड़ कर काशीराज की कन्या अम्बा और अम्बालिका को ले आये थे। अर्ज्जुन श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा को द्वारका से हर लेगये थे। स्वयं श्रीकृष्ण कुण्डलपुर से भीष्म की कन्या रुक्मिणी को हर लाये थे, फिर मैंने क्या बुरा काम किया? जो राह पूर्व्व पुरुषों ने निकाल दी है, उस पर चलने से हमारी निन्दा नहीं हो सकती। निस्सन्देह भीष्म और कृष्ण ने कन्या हरण किया; किन्तु आप में उनका सा बल, उनका सा पुरुषार्थ कहाँ है? स्यार होकर सिंह की नक़ल करना ठीक नहीं है। मैं भी राजपुत्र हूँ—मैंने भी

क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया है—मैं भी मुसल्मान को अपनी कन्या देने में अपनी गौरव वृद्धि नहीं समझता। लाचार होकर मुझे यह निन्दा-योग्य कर्म करना पड़ा। यथेष्ट बल होने पर कौन क्षत्रिय वीर अपनी कन्या यवन को देना स्वीकार करेगा? यदि मैं मुग़ल-राज को अपनी कन्या देना स्वीकार न करता तो रूप नगर में एक ईंट भी न मिलती—इस नगर के पत्थरों का चूर्ण होजाता। मेरी मान मर्य्यादा नाम को भी न रहती। अगर मैं अपनी रक्षा आप कर सकता या कोई शक्तिशाली क्षत्रिय मेरी सहायता पर उद्यत होता; तो मैं मुग़ल-राज को अपनी कन्या देने पर कदापि सम्मत न होता। जब मुझे यह मालूम हो जायगा, कि आप में भी उन लोगों की सी शक्ति और क्षमता है उस समय मुझे आपको कन्या दान करने में कुछ आपत्ति न होगी।

"यह बात ठीक है, बिल्कुल सच है, कि प्राचीन काल के क्षत्रिय राजाओं ने कन्या हरण करके विवाह किये हैं। लेकिन उन लोगोंने आपकी सी चालाकी और धूर्त्तता से काम नहीं लिया। आपने मेरे पास आदमी भेज कर, झूँठ बात कह कर, मेरी फ़ौज मँग-वाली और उसीके बल से मेरी कन्या को हर ले गये—नहीं तो आप ऐसा हरगिज़ न कर सकते। यह काम करके आपने मेरा भी अनिष्ट साधन किया है, उसे ज़रा

विचार कर तो देखिये। मुगल-बादशाह औरङ्गज़ेब अपने मनमें समझेगा कि यह सब रूपनगरके राजाकी ही करतूत और चालबाज़ी है—उसीने अपनी फ़ौज भेजकर अपनी कन्या उदयपुरवालों को दिलादी है। आपने जैसी चालाकी की है,उससे बादशाहका इस काममें मेरा हाथ समझना अनुचित न होगा। निश्चय है, कि बादशाही फ़ौज आवेगी, रूपनगर को ध्वंस करेगी और पीछे आपको भी दण्ड देगी। मैं भी युद्ध करना जानता हूँ, किन्तु लक्ष-लक्ष मुग़ल-सेना के सामने जाने का साहस कौन कर सकता है? यही कारण है कि सारे राजपूत, आजकल, मुग़ल-राज के पैरों पर लोटने में भी अपना सौभाग्य समझते हैं—तब मेरी क्या गिन्ती है?

"नहीं जानता, अब उनके सामने सच बात कह देने पर भी मुझे रिहाई मिलेगी या नहीं। लेकिन यदि आप मेरी कन्या से विवाह कर लेंगे, उनको मैं कन्या दे न सकूँगा, तो मेरा और मेरी कन्याका पीछा हरगिज़ न छूटेगा। मुझे, अपनी कन्या सहित, उनके कोपानल में निश्चय ही भस्मीभूत होना पड़ेगा।

"आप मेरी कन्या से विवाह न करें। अगर आप विवाह कर लेंगे, तो आपको मेरा श्राप झेलना होगा। मैं श्राप देता हूँ, कि मेरी इच्छा बिना विवाह करने से मेरी कन्या विधवा होगी, सहगमन से वञ्चित रहेगी,

जन्मभर दुःख भोगेगी और आपकी राजधानी स्यार और कुत्तों की आवास-भूमि होगी।"

राजा विक्रम सिंहने इस भयङ्कर श्राप के नीचे एक पंक्ति और भी लिख दी थी,—"यदि कभी आपके द्वारा कोई ऐसा काम होगा जिससे मैं आपको उपयुक्त पात्र समझ सकूँगा ; तो मैं बड़ी खुशीसे आपको अपनी कन्या दान कर दूँगा।"

चञ्चल कुमारी की मा ने चिट्ठीका कुछ भी जवाब न दिया। राजसिंह ने चञ्चल के बाप की चिट्ठी चञ्चल को पढ़ सुनायी। चिट्ठी सुनते ही चञ्चल के पैरों तले की मिट्टी निकल गयी। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार नज़र आने लगा।

चञ्चल कुमारी बहुत देर तक चुप चाप खड़ी रही। मुँह से एक शब्द भी न निकला। तब राणाजी ने उस से पूछा—"अब क्या करना चाहिये? विवाह किया जाय या नहीं?"

चञ्चल के नेत्रों से आँसू की एक बूँद टपक पड़ी। उसे पोंछ कर बोली,—"पिता का श्राप सिर पर लेकर, कौन कन्या विवाह करने का साहस कर सकती है?"

राणा—यदि इस समय भी पिता के घर जाना चाहो तो भेज सकता हूँ।

चञ्चल—यही दिखता है, किन्तु पिता के घर जाना

और दिल्ली जाना एक ही बात है। वहाँ जाने की अपेक्षा विष पीना क्या बुरा है?

राणा—राजकुमारी! मेरी एक बात सुनो। तुम ही मेरी योग्य महिषी हो, मैं तुमको एकाएकी छोड़ नहीं सकता; किन्तु तुम्हारे पिता के आशीर्वाद-बिना, मैं भी विवाह न करूँगा। उनके आशीर्वाद की आशा एक दम त्याग भी नहीं सकता। औरङ्गज़ेब के साथ मेरी लड़ाई ज़रूर होगी। एक लिङ्ग महाराज सहायक हैं। उस युद्ध में या तो मैं मरजाऊँगा अथवा औरङ्गज़ेबको पराजित करूँगा।

चञ्चल—मुझे पक्का भरोसा है, कि उस युद्ध में मुग़ल-राज आपके द्वारा पराजित और लाञ्छित होंगे।

राणा—मुग़ल-राज को पराजित करना गुड़ियों का खेल नहीं है। उनसे बाज़ी ले जाना ज़रा टेढ़ी खीर है। यदि एक लिङ्ग महाराज की कृपा से मैं विजयी हुआ—मुग़ल-सेना को परास्त कर सका—तो मैं तुम्हारे पिता का आशीर्वाद अवश्य प्राप्त कर सकूँगा।

चञ्चल—तब तक मैं क्या करूँ?

राणा—उस समय तक, तुम मेरे अन्तःपुर में रहो। मेरी और महिषिओं की भाँति तुम्हें जुदा महल मिलेगा। उन्हीं की तरह तुम्हारी सेवा परिचर्य्या के लिये दास दासियाँ नियुक्त कर दी जायँगी। मैं सब लोगों

से कहदूँगा कि, थोड़े ही दिनोंमें. मैं रूपनगरकी राजकुमारी का पाणिग्रहण करूँगा और वह मेरी महिषी होगी। इस बात को सुनकर लोग तुम्हें महारानी कह कर सम्बोधन करेंगे। सिर्फ़ जितने दिन तक मेरा विवाह तुम्हारे साथ न होगा. उतने दिनतक मैं तुम्हारे पास न आऊँगा। बोलो, क्या बोलती हो ?

चञ्चल कुमारीने मनमें विचार कर देख लिया कि, इस समय, इससे अच्छी तदबीर और हो नहीं सकती ; अत: वह राणाजी की बात पर राज़ी होगयी। राजसिंह ने जैसा कहा था, ठीक वैसा ही इन्तज़ाम कर दिया।

तीसरा परिच्छेद ।

चञ्चल और निर्मल।

मल ने माणिकलाल से सुना, कि चञ्चल कुमारी राज-महिषी होगयी है। लेकिन कब विवाह हुआ, हुआ कि नहीं हुआ, यह बात माणिकलाल ठीक ठीक न बोल सके। तब निर्मल स्वयं चञ्चल कुमारी से मुलाक़ात करने आयी।

निर्मल को,बहुत दिन बाद, देखने से चञ्चल कुमारी अत्यन्त आनन्दित हुई। दिन भर निर्मल को अपने पास से हटने न दिया। रूपनगर छोड़ने के बाद जो जो घटनाएँ हुई थीं, दोनों ने आपस में विस्तार पूर्व्वक कह सुनाईं। निर्मलके सुखकी बात सुनकर चञ्चल परम प्रसन्न हुई। निर्मल को सुख क्यों न होता, माणिक लाल ने राणा जी से अनेक प्रकार के पुरस्कार पाये थे; इससे माणिकलाल के पास बहुत सी धन सम्पत्ति हो गयी थी। इसके सिवा, महाराणा की कृपा से, वह राज-सैन्य में अति उच्च पद पर प्रतिष्टित और राज-सम्मान में अत्युच्च पद पर गौरवान्वित होगये थे। निर्मल के ऊँची अटारी, बहुत सी धन दौलत और अनेक दास दासी होगये थे और माणिकलाल स्वयँ उसके ज़र-ख़रीद गुलाम होगये थे। दूसरी ओर निर्मल चञ्चल के दुःख की बातें सुन कर बहुत ही दुःखित हुई। चञ्चल के माता पिता, राजसिंह और चञ्चल सब पर उसे विरक्ति हो गयी। उसने चञ्चल को महारानी कह कर पुकारना अस्वीकार किया और महाराणा से साक्षात होने पर दो दो बातें करने की प्रतिज्ञा की। चञ्चल ने कहा—"इस समय उस बात का ज़िक्र छोड़ो। यहाँ मेरा कोई परिचित नहीं है—यहाँ मेरा कोई अपना सगा सम्बन्धी नहीं है। मैं इस दशामें यहाँ रह नहीं

सकती। भगवान् ने ही तुम्हें मुझ से मिलाया है! अब मैं तुम्हें न छोड़ूँगी, तुम को मेरे पास ही रहना होगा।"

यह बात सुनते ही निर्मलको पहिले तो ऐसा मालुम हुआ, मानों छाती पर पहाड़ टूट गिरा है। अभी तो बेचारी को पति मिला था—नवीन प्रेम, नूतन सुख मिला था, क्या इन सब को छोड़ कर वह चञ्चल के पास आकर रह सकती थी? निर्मल कुमारी सहसा चञ्चल की बात पर राज़ी न हुई—कोई झूँठा बहाना भी न किया—किन्तु असल बात को उड़ाकर भी न बोल सकी। बोली—"पीछे कहुँगी।"

चञ्चल की आँखों में पानी भर आया। मनमें कहने लगी—"निर्मल ने भी मुझे छोड़ दिया। हे भगवन्! तुम मुझे मत त्यागना।" इसके बाद चञ्चल कुछ हँस कर बोली,—"निर्मल एक दिन तुम मेरे लिये पैदल ही रूपनगर से चल खड़ी हुई थीं—मेरे लिये जान देने को तय्यार बैठी थीं। लेकिन आज तो तुम्हें स्वामी मिल गया है! अब तुम स्वामी की होगयी हो!"

निर्मल ने मुँह नीचा कर लिया और अपने तईं सैकड़ों धिक्कार देकर बोली,—"मैं उस समय आऊँगी। जिसको स्वामी बनाया है उस से पूछना होगा। इसके सिवा, मेरे सिर पर एक लड़की भी है, उसका भी कुछ बन्दोबस्त करना होगा।"

चञ्चल–लड़की को यहाँ ले आने से क्या काम न चलेगा ?

निर्मल—यहाँ चायँ चायँ टाँय टाँय का काम नहीं है। एक बनावटी भूआ है। उसी को बुलाकर घर में बिठा आऊँगी।

इस तरह कह सुन कर, निर्मलकुमारी चञ्चल से बिदा होकर अपने घर गयी। घर पहुँच कर माणिक-लाल से सारा हाल कह सुनाया। माणिकलाल को भी निर्मल को छोड़ते बड़ा दुःख मालुम हुआ। लेकिन वह तो बड़े भारी प्रभुभक्त थे; इससे कुछ उज्र न किया। भूआजी ने माणिकलालके घरमें आकर कन्या का भार अपने सिर पर ले लिया।

चौथा परिच्छेद।

ज्योतिषी।

निर्मल कुमारी पालकी पर चढ़ कर, साथ में दास दासी लेकर महाराणा के महलों की ओर चली। जिस राह से वह जा रही थी उस राह में बड़ी भीड़ हो रही थी। भीड़ के मारे कन्धे से कन्धा छिलता

था। निर्मल की पालकी पर क़ीमती कपड़ा पड़ा हुआ था। किन्तु उसने हल्ला गुल्ला सुन कर, अपनी पालकीके पर्दे का एक कोना ज़रा हटाया और इशारे से दासी को बुलाकर पूछा,—"यह क्या हो रहा है?" सुना जाता है कि इस मकान में एक मशहूर ज्योतिषी ठहरा हुआ है। हज़ारों आदमी नित्य उसके पास गणना कराने आते हैं। आज भी गणना करानेवालों की भीड़ लगी है। यह ज्योतिषी सब तरह के प्रश्नों का उत्तर देता है। इसने जिस को जो बात कही है, वह बावन तोले पाव रत्ती, ठीक इसके कहने अनुसार पूरी होगयी है। निर्मल ने दासियोंसे कहा—"सिपाहियोंसे कहो कि भीड़ हटा दें। मैं भीतर जाकर गणना कराऊँगी; लेकिन मेरा परिचय देने की आवश्यकता नहीं है।"

सिपाहियों के बल्लमों के मारे सारे लोग हट गये—निर्मल की पालकी अन्दर दाखिल हो गयी। जो लोग गणना कराने को वहाँ बैठे थे, वह भी उठ गये। निर्मल पालकी से उतर कर प्रश्न-कर्त्ता के आसन पर बैठ गयी। ज्योतिषी को प्रणाम करके कुछ भेंट आगे धर दी। ज्योतिषी ने पूछा, "माँ, तुम क्या गणना कराओगी?"

निर्मल बोली—"मैं जो कुछ पूछूँ उसे गणना करके बताओ।"

ज्योतिषी—अच्छी तरह बोलो, क्या प्रश्न है?

निर्मल बोली—मेरी एक प्यारी सखी है।

ज्योतिषी ने पाटीपर कुछ लिख लिया और बोला—"और क्या ?"

निर्मल बोली—"वह अविवाहिता है।"

ज्योतिषी ने और भी थोड़ा सा लिख लिया और बोला—"और क्या ?"

निर्मल—उसका विवाह कब होगा ?

ज्योतिषी ने थोड़ा सा कुछ और लिखा। पीछे लग्न सारणी देखी, कई पोथी पन्ने उलटे, निर्मल से भी और कई बातें पूछीं। पीछे निर्मल की ओर देख कर सिर नीचा कर लिया।

निर्मल बोली, "विवाह नहीं होगा ?"

ज्योतिषी—प्राय ऐसा ही उत्तर शास्त्र में निकलता है।

निर्मल—'प्राय' क्यों ?

ज्योतिषी—जब ससागरा पृथ्वीपति की महिषी आकर तुम्हारी सखी की परिचर्य्या करेगी, तब विवाह होगा। यदि ऐसा न होगा तो विवाह भी न होगा। लेकिन ऐसा होना असम्भव है ; अतः मेरी समझमें विवाह नहीं होगा।

"असम्भव है !" यह कह कर निर्मल ने ज्योतिषी को कुछ दिया और पालकी में चढ़कर वहाँ से चल दी।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

क्रोधाग्नि भभक उठी ।

रूपनगर की राजकुमारी के हरण होजाने का समाचार दिल्ली पहुँच गया। इस समाचार का दिल्ली पहुँचना था कि हलचल मच गयी। बादशाह औरङ्गज़ेब एक दम लाल हो गये। उन्होंने अपनी सेना के सेनानायकोंमें से किसी को पदच्युत कर दिया, किसी को एक दम डिसमिस कर दिया, किसी को कारागार में भेज दिया और किसीको जानसे ही मरवा डाला। जो नज़दीक थे—जो उसके आधीन थे, उन सब को तो उन्होंने दण्ड दे दिया ; लेकिन प्रधान अपराधी चञ्चल कुमारी और राजसिंह का वे कुछ भी न कर सके। उनको इतनी जल्दी दण्ड देना बादशाह के लिये दुःसाध्य जान पड़ा ; क्योंकि मेवाड़ यद्यपि छोटा सा राज्य था, किन्तु उसके चारों ओर दुर्लङ्घ्य पर्व्वतमालाओं से बनी हुई प्राकृतिक प्राचीर शत्रुओं के आने में बड़ी बाधा उपस्थित करती थी। राजपूत सभी वीर-पुरुष थे। राणा हिन्दू-वीर-चूड़ामणि थे। अकबर ने मेवाड़ में बहुत सिर मारा, बहुत कुछ ज़ोर लगाया,

परन्तु महाराणा प्रतापसिंह से उनकी एक न बसायी। अकबर तो समझदार, पूर्ण राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे, इससे चोट खाकर चुप मार बैठे।

किन्तु औरङ्गज़ेब तो और ही साँचे का ढला हुआ आदमी था। उसमें क्रोध के दबाने की शक्ति नहीं थी। उसने हिन्दुओं के अनिष्ट साधन के लिये ही जन्म लिया था। कदाचित वह और भारतीय जातियों का अपराध सहन कर सकता था; किन्तु हिन्दुओंका अपराध तो उसे एक दम असह्य था। पहिले शिवाजी नामक एक महाराष्ट्र वीर ने उसको पद पद पर अपमानित और लाञ्छित किया था। अब राजसिंह उसका अपमान करने लगे। एक आग बुझी नहीं थी कि दूसरी जल उठी। औरङ्गज़ेब शिवाजी का बाल भी बाँका न कर सका, सब कुछ कर धर कर हैरान हो गया। अब राजसिंह का भी कुछ न कर सका; इससे उसकी क्रोधाग्नि एक दम भभक उठी। उसने, राजसिंह के अपराध के बदले में, सारी हिन्दू जातिको पीड़ित करने का विचार ठान लिया।

आजकल हम लोग सरकारी इनकम टैक्स को ही दुःखदायी समझते हैं। लेकिन मुसल्मानी राज्य में एक और टैक्स था, जो इस टैक्स से कहीं बढ़कर दुःखदायी था। उसके विशेष असह्य और दुःखदायी होनेका कारण यह था, कि वह कर मुसल्मानों को तो न देना

पड़ता था ; केवल हिन्दू बेचारे ही उसके बोझे से दबाये और मारे जाते थे। हिन्दुओंको लाचार होकर वह टेक्स देना होता था। उसका नाम "जज़िया" था। अकबर बादशाह तो परम राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने उसकी बुराइयाँ समझ कर उसे उठा दिया था। वह अब तक तो बन्द ही चला आता था ; लेकिन औरङ्ग़ज़ेब तो परम हिन्दूद्वेषी था ; इससे उसने उसे फिर जारी करके हिन्दुओं का कष्ट बढ़ा दिया।

इस घटना के पहिले ही औरङ्ग़ज़ेब "जज़िया" जारी कर चुका था ; लेकिन अब उस पर उसने बहुत ही ज़ोर दिया। हिन्दू भीत, अत्याचारग्रस्त और मर्म पीड़ित हुए। हज़ारों हिन्दू हाथ जोड़ कर उससे क्षमा माँगने लगे ; किन्तु औरङ्गजेब तो जानता ही न था कि क्षमा किस चिड़िया का नाम है। एक रोज़ यह मुसल्मान बादशाह नमाज़ पढ़ने के लिये मसजिद में जा रहा था। उस समय लाखों हिन्दू इकट्ठे होकर उसके आगे रोने लगे। किन्तु उनके रोने गिड़गिड़ाने पर औरङ्ग़ज़ेब का पत्थर-हृदय ज़रा भी न पसीजा। जगत्के बादशाहने दूसरे हिरण्य कश्यप की तरह आज्ञा दे दी,—"इन सबको हाथियोंके पैरों तले कुचल डालो।" देर क्या थी, हुक्म होते ही लाखों हिन्दू हाथियों के पैरों से रुँधवा कर मार डाले गये।

औरङ्ग़ज़ेब की आधीनता में भारत को फिर "जज़िया" देनी पड़ी। उसके समय में ब्रह्मपुत्र से सिन्धु नदी तक की हिन्दू-मूर्त्तियाँ चूर्ण कर दी गईं, प्राचीन काल के गगन-स्पर्शी देव-मन्दिर नेस्तनाबूद कर दिये गये, और उनके स्थान में मुसल्मानी मसजिदें बना दी गईं। काशी में विश्वेश्वरनाथ का मन्दिर, मथुरा में केशव देव का मन्दिर तोड़ डाला गया और उनके ऊपर उन्हीं के मसालों से मसजिदें बना दी गईं, जो आजतक खड़ी हुई औरङ्ग़ज़ेब के अत्याचार की याद दिला रही हैं। बङ्गाल में भी जो कुछ हिन्दुओं की स्थापित कीर्त्ति थी, वह भी चिरकाल के लिये अन्तर्हित होगयी।

इस घटनाके समय औरङ्ग़ज़ेब ने हुक्म दिया कि राजपूतानेके राजपूतोंको भी "जज़िया" देनी होगी। राजपूताने की प्रजा उसकी प्रजा नहीं थी; किन्तु वह लोग भी तो हिन्दू ही थे; इससे उन पर भी यह दण्डाघात किया गया। राजपूतों ने पहिले तो इँकार किया; किन्तु उदयपुर को छोड़ कर, और सब राजपूताना बिना माँझी की नाव के समान अचल था। जयपुर के जयसिंह— जिनका बाहुबल मुग़ल-साम्राज्य का एक प्रधान अवलम्ब था, विश्वासघाती, भाइयों की हत्या करने वाले, बापको क़ैद करनेवाले औरङ्ग़ज़ेबकी चालसे विष देकर मार-डाले गये थे और उनका जवान बेटा दिल्ली में क़ैद

कर लिया गया था। सुतराँ जयपुर ने "जज़िया" दे दी।

जोधपुर के जसवन्तसिंह भी चल बसे थे। इस समय उनकी रानी ही राज-प्रतिनिधि थी। उसने स्त्री होकर भी, बादशाह के कर्मचारियों को भगा दिया। औरङ्गज़ेब ने उससे युद्ध करने की तय्यारी की। स्त्री होने के कारण, रानी युद्ध से डर गयी। उसने "जज़िया" तो न दी; लेकिन अपने राज्यका एक अंश छोड़ दिया।

राजसिंहने "जज़िया" न दी। उन्होंने प्रण किया कि चाहे सर्व्वस्व क्यों न चला जावे,परन्तु"जज़िया''न दूँगा। उन्होंने "जज़िया" के सम्बन्ध में एक पत्र भी औरङ्गज़ेब को लिखा था। हम उस पत्र का सारमर्म,अपने मनचले पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे लिख देते हैं :—

"श्रीमान्! एक मात्र परमात्मा ही पूर्ण स्तुतिके योग्य है; लेकिन पृथ्वी पर, अत्युच्च पद पर आसीन होने के कारण, आप भी स्तुति के योग्य हैं। मैं चाहे आप से दूर ही क्यों न रहूँ; तथापि सदा आपके मङ्गल की आकाङ्क्षा करता रहता हूँ। मेरे योग्य यदि कुछ सेवा हुआ करे, तो मुझे लिख भेजा कीजिये। मेरी सदा यही इच्छा रहती है,कि सब देश सुखी हों। जिस तरह मैं भारत के लिये तन मन से परिश्रम कर रहा हूँ,

आप सच जानिये, उसी तरह मैं और देशों का भी भला चाहता हूँ।

"मैं आप से कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ। उससे विशेष लाभ आपही को होगा। आशा है,आप उस पर ध्यान देंगे। आपने जो मेरे पीछे बड़ी भारी सेना लगाकर ख़ज़ाना ख़ाली कर दिया है, सुनता हूँ, उसकी कमी पूरी करने के लिये, आपने कई प्राणहारी कर लगाये हैं।

"मैं आप से पूछता हूँ, कि ये कुरीति आपने क्यों चलायी है? क्या आपने अपने पूर्व्वजों की नीति पर ज़रा भी ग़ौर नहीं किया है? क्या आपके पुरुषे शक्ति-शाली न थे? क्या वे ऐसे ऐसे कर न लगा सकते थे? क्या उनको यह राज-सत्ता-प्रणाली मालुम ही नहीं थी?

"क्या आपने अपने परदादा अकबरशाह की नीति पर कभी ध्यान नहीं दिया है? वे अपनी हिन्दू मुसल्-मान प्रजा को एक दृष्टि से देखते थे—दोनों में कुछ भी भेद भाव और अन्तर न समझते थे। उनके राज्य में प्रजा चैन की बंशी बजाती थी। ग़रीब अमीर सभी सुख की नींद सोते थे। उनके समदर्शी होने से ही उनका नाम लोगों की ज़बान पर रहता है। आपके दादा जहाँगीर और पिता शाहजहाँ के राजत्व-

काल में भी प्रजा सुखी थी। उनके सभी काम हिन्दू-ओंको भले लगते थे। क्या यह सब बातें आपही के घर की नहीं हैं? आपके पूर्व्व पुरुषों में उदारता और प्रजावत्सलता थी, वे सर्व-प्रेमी थे, इसी से क्या हिन्दू क्या मुसल्मान सभी उनका यश गाते हैं।

"अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने सर्वप्रेमी बन कर कौन सा काम सिद्ध नहीं किया? आपने हिन्दू-द्वेषी बनकर कौन सी उन्नति की है? अगर कोई बारीक नज़र से देखे, तो साफ़ मालुम होगा कि अब पहिले से उन्नति नहीं अवनति हो रही है। हाँ, उन्नति भी हो रही है। वह उन्नति राज में नहीं, प्रजा-पीड़न में हो रही है। आपका तेज दिन दिन धीमा होता जाता है। आपकी राज्य-सीमा धीरे धीरे कँट छँट रही है। अगर यही दशा कुछ दिन और रही; तो आपके हाथों से दूसरे देश भी निकल जायँगे।

"आप ही देखिये, इस समय राज्यकी क्या दशा है। न्याय का कहीं नाम भी नहीं है। सब जगह अन्धेर मच रहा है। प्रजा दीन हीन होती जाती है। शान्तिके स्थान में अशान्ति फैलती जाती है। हिन्दुओंकी दीन दशा पर सहृदय यवनोंकी भी छाती फटती है। आजकल जहाँ तहाँ व्योपारी लुटते पिटते हैं। प्रजा त्राहि त्राहि कर रही है। चारों

तरफ़ अन्धेर हो रहा है। कोई किसी की सुननेवाला नहीं है।

"देश में दरिद्र बढ़ रहा है। देश नष्ट हो रहा है। वेतन न मिलने से सेनाका मन बिगड़ता जाता है। जब आप के ही खज़ाने खाली हो चले हैं, तब अन्यान्य लोगों की क्या दशा होगी? जिनको रातमें पेट भर खानेको सूखा अन्न भी नहीं मिलता, जो हवामें बादलोंकी तरह मारे मारे फिरते हैं, यदि ऐसे दरिद्रोंसे भी कर लेना उचित है तो इस पृथ्वी पर न्यायका नाम रहना भी कठिन है। सारा देश एक स्वर से कह रहा है कि, आप अतिशय हिन्दू-द्वेषी हो गये हैं। आप अपने कुल की गौरव गरिमा भूलकर साधुओंको सताते हैं और उस कड़े कर के लेनेमें महत्व समझते हैं!

"याद रखिये, परमात्मा ही सबका मालिक है। हिन्दू और मुसल्मान सभी उसकी दया-दृष्टिके पात्र हैं। एक मात्र वही सर्वव्यापी सब के पैदा करनेवाला परमेश्वर है। उस विश्वात्माके नज़दीक सभी समान हैं। वही सब का स्वामी है। वह किसी एक का नहीं है। उसके नाम जुदे जुदे हैं; किन्तु उनसे कुछ भिन्नता और भेद भाव नहीं होता। आप की मसजिदों में मुल्ला उसीके गुण गाते हैं; हमारे मन्दिरों में उसी की पूजा होती है। हिन्दू और मुसल्मान दोनोंही उसको रिझाते हैं। सिर्फ़

रिझानेकी रीति न्यारी न्यारी है। जो उसको भूलते हैं वह अज्ञानी हैं।

"अब मैं आपको यही जताना चाहता हूँ कि दूसरों को सताने से सृष्टिका रचयिता अवश्य अप्रसन्न होता है। अगर हम किसी बाग़के पौधोंको तोड़ें, तो क्या माली हम पर क्रोध न करेगा?

आप जो काम कर रहे हैं, वह अन्यायी और अधम राजाओंके योग्य हैं। ऐसे काम करनेसे एक दम अशान्ति और अराजकता फैल जायगी। अगर आप इस कलुष-कर से हाथ खींचना ही न चाहें, तो मरोंको क्यों मारते हैं? शूरवीरोंको मक्खियों को शिकार शोभा नहीं देती। अगर कर लेना ही मञ्जूर है, तो उसे मुझसे वसूल करने को तय्यार हो जाइये।

राजसिंह के पत्रने औरङ्गज़ेब को क्रोधाग्नि में घृताहुति का काम किया। सुलगती हुई आग ज़ोर से भभक उठी। बादशाहने आपे से बाहर होकर आज्ञा दी—"राजसिंह को "जज़िया" देनी होगी। उनके राज्य में गोहत्या की जायगी और समस्त देव-मन्दिर तोड़ दिये जायँगे।" बादशाही आज्ञा की ख़बर पाते ही राजसिंह युद्ध की तय्यारी करने लगे।

उधर औरङ्गज़ेब भी युद्ध का उद्योग आयोजन करने लगा। उसने इस समय युद्ध के लिये जैसी भयानक

तय्यारियाँ की थीं, वैसी पहिले कभी नहीं की थीं। यदि चीन-सम्राट और फ़ारसके बादशाह भी उसके प्रतिद्वन्द्वी होते; तोभी कदाचित ऐसा उद्योग न किया जाता, जैसा इस छोटे से राजा के विरुद्ध किया गया था। आधे एशिया के मालिक ज़रकसस ने क्षुद्र ग्रीसराज के डराने के लिये जैसी तय्यारियाँ की थीं; इस सत्रहवीं शताब्दी के ज़रकसस—औरङ्गज़ेब—ने भी राजसिंह के पराजित करने के लिये वैसीही तय्यारियाँ कीं। ये दोनों घटनाएँ आपसमें मेल खाती हैं। इनसे तुलनाकी जाने योग्य और तीसरी घटना इतिहासमें नहीं है। हम लोग यूनान का इतिहास कण्ठ करने के लिये सिर पच्ची किया करते हैं; किन्तु अपने घर में ही राजसिंह के इतिहास को नहीं देखते। आज कल की शिक्षा का यही सुफल है।

छठा परिच्छेद ।

फिर माणिकलाल ।

णा राजसिंहने अपना लिखा हुआ पत्र औरङ्गज़ेब के पास भेजनेका विचार किया। सभी जानते थे, कि औरङ्गज़ेब इस पत्रके पढ़ते ही तत्ते तवेका बैंगन हो जायगा। यद्यपि दूत अवध्य होता है तथापि औरङ्गज़ेब कितने ही दूतोंको मरवा चुका था, यह बात देश देशान्तरोंमें फैल गयी थी; इसीलिये पत्र लेजानेका साहस किसी को न होता था। सभी अपने अपने प्राणोंकी ममता रखते थे। यह काम ऐसे वैसे आदमी का नहीं था। राणाजी ऐसे आदमी की तलाश में थे, जो प्राणों की ममता न रखता हो, साथ ही सुचतुर और चालाक हो, एवं मौक़ा पड़ने पर अपनी प्राण-रक्षा भी कर सके। बहुत कुछ खोज करने पर भी उपयुक्त पात्र न मिला। राणाजी इसी पशोपेश में थे कि माणिकलालने आकर प्रार्थना की,—"इस काम पर मुझे नियुक्त कीजिये।" राणाजीने, उसे इस कठिन कामके उपयुक्त समझ कर, यह काम उसी के सिपुर्द किया।

इस समाचार के सुनते ही चञ्चलकुमारी ने निर्मल को बुलाया और कहने लगी,—"तुम भी अपने स्वामी के साथ क्यों नहीं जातीं ?"

निर्मल विस्मित होकर बोली—कहाँ जाऊँ ? दिल्ली ? किस लिये ?

चञ्चल—एक बार बादशाह के रङ्गमहल तो देख आओ।

निर्मल—सुना है कि वहाँ नरक है।

चञ्चल—क्या नरक में तुमको कभी जाना न होगा ? तुम बेचारे ग़रीब माणिकलाल पर जो ज़ुल्म करती हो, उस से तो तुम को भी नरक में जाये बिना छुटकारा न मिलेगा।

निर्मल—उसने क्यों सुन्दरी देख कर विवाह किया ?

चञ्चल—मुझे मालुम है। तुम्हें पेड़के नीचे पड़ी पाकर उसने तुमसे प्रार्थना की थी ?

निर्मल—मैंने भी तो उसे नहीं बुलाया था। अब यह बोलो कि दिल्ली जाकर क्या करना होगा ?

चञ्चल—उदयपुरी को निमन्त्रण-पत्र देआना होगा।

निर्मल—किस लिये ?

चञ्चल—तमाखू भरने के लिये ?

निर्मल—ठीक है। यह बात मेरे ध्यान में नहीं

थी। पृथिवीश्वरी के तुम्हारी परिचर्य्या न करनेसे काम न बनेगा।

निर्मल—बादशाहकी बेगम मेरी दासी होगी—उस के दासी न होनेसे मुझे ज़हर खाना पड़ेगा। ज्योतिषी ने तो ऐसी ही बात गणना करके बतायी है न?

निर्मल—पत्र द्वारा निमन्त्रण करने से ही क्या बेगम आजायगी?

चञ्चल—नहीं। मैं चाहती हूँ कि विवाद खड़ा हो। मुझे विश्वास है कि विवाद होनेसे राणाजी की जय होगी। एक मतलब और है। तुम बेगम को पहचानती आना।

निर्मल—यह काम किस तरह कर सकूँगी।

चञ्चल—मेरे पास जोधपुरी बेगमका पञ्जा है। तुम उसी पञ्जेको लेती जाओ। उन्होंने, समय पर काम आनेके लिये, यह पञ्जा मेरे पास छिपा कर पोशीदगी से भेजा था। पञ्जेकी बात शायद मैंने आजतक तुमसे भी नहीं कही। इसके बलसे तुम रङ्गमहलमें जा सकोगी और जोधपुरीसे मुलाक़ात कर सकोगी? मैं जो तुम्हें उदयपुरीके नामकी चिट्ठी देती हूँ, इसे भी तुम उनको दिखा देना, वह इस चिट्ठी को किसी न किसी तरह उदयपुरीके पास पहुँचवा देंगी। जब तुम्हारी बुद्धिसे काम न चले, तब थोड़ी सी बुद्धि अपने स्वामीसे उधार ले लेना।

निर्मल—क्या खूब ! मेरी जैसी स्त्री मिलनेसे ही तो उनका काम चलता है।

निर्मल—हँसती हँसती चिट्ठी लेकर चली गयी और घर पहुँच कर स्वामीके साथ उपयुक्त आदमी लेकर दिल्लीकी यात्रा का उद्योग करने लगी।

सातवां परिच्छेद।

दिल्ली जानेकी तय्यारियाँ।

अधिक उद्योग माणिकलाल ने ही किया था। उसने उसका नमूना एक दिन निर्मल को दिखाया। निर्मल ने विस्मित होकर देखा कि, उसकी कटी हुई उँगलीके स्थानमें नयी उँगली पैदा होगयी है। उसने माणिक-लाल से पूछा—"यह कैसे हुआ ?"

माणिकलाल—नयी उँगली बनवाई है।

निर्मल—किस तरह ?

माणिकलाल—हाथी दाँतकी उँगली बनवाई गयी है। इसमें बे-मालुम कल कब्जे लगाये गये हैं। इसके ऊपर बकरेका पतला चमड़ा लगाकर, मेरे शरीरके

समान रङ्ग किया गया है। इसको मैं जब चाहूँ तब अलग कर सकता हूँ और जब चाहूँ तब लगा सकता हूँ।

निर्मल—इसकी क्या ज़रूरत थी?

माणिक—यह बात तुम्हें दिल्लीमें मालुम होगी। दिल्लीमें छद्मवेश की ज़रूरत पड़ेगी। उँगली कटे आदमीका छद्मवेश चल नहीं सकता; लेकिन दोनों तरह होनेसे खूब काम निकल सकता है। जब उँगली की दरकार होगी तब उँगली लगा ली जायगी। जब दर-कार न होगी तब निकाल कर अलग रख दी जायगी।

निर्मल—हँसने लगी। इस कामके सिवाय माणिकलाल ने अपने साथ एक पिंजरेमें एक पालतू कबूतर भी लेलिया था। यह कबूतर खूब ही सुशिक्षित था। दूतके काममें भली भाँति निपुण था। आजकल जो लोग वलायती ख़बर ले जानेवाले कबूतरोंके विषयमें समाचार-पत्रोंमें पढ़ चुके हैं वे इस प्रकार के कबूतरकी बात सहजमें समझ सकेंगे। प्राचीन कालमें, भारतमें भी सिखाये हुए कबूतरों से काम लिया जाता था। माणि-कलाल ने कबूतरके गुण निर्मल को अच्छी तरह बता दिये।

यह रीति थी, कि जो कोई राजा दिल्लीके बादशाह के पास दूत भेंजता था वह उसके साथ कुछ नज़र

ज़रूर भेजता था। इँगलेण्ड,फ्रान्स, पुर्त्तगाल प्रभृति देशों के राजा भी दिल्लीपतिके पास कुछ न कुछ भेट अवश्य भेजा करते थे। राजसिंह ने भी बादशाह के लिये कुछ थोड़ी सी चीज़ें माणिकलाल के साथ भेजीं थीं। उन चीज़ोंके अलाव: उन्होंने सफ़ेद पत्थरकी बनी हुई, मणि रत्न खचित कारुकार्य्ययुक्त सामग्री भी भेजी थी। माणिकलालने वह पत्थर की सामग्री एक घोड़ेपर अलग लदवा ली।

नियत दिन आनेपर, राणाकी आज्ञा और वह चिट्ठी मिलतेही, माणिकलालने निर्मलकुमारी, अनेक दास दासी,घोड़े,ऊँट,हाथी,छकड़े,गाड़ी आदि लेकर,बड़े ठाठ बाटसे, दिल्लीकी तरफ़ कूँच किया। दिल्ली पहुँचनेमें अनेक दिन लगे। जब दिल्ली दो चार कोस रह गयी, तब माणिकलालने एक रमणीक स्थानपर अपने तम्बू डेरे गढ़वा दिये। निर्मलकुमारी और दूसरे लोगोंको उसी स्थानपर रखकर, आप एक विश्वासी आदमीको साथ लेकर दिल्ली जाने लगे। साथ में पत्थरका सामान भी लेलिया। बनावटी उँगली निर्मलके पास छोड़ दी। चलते समय निर्मलसे कहने लगे,—"मैं कल आऊँगा।"

निर्मलने पूछा—आप करते क्या हैं ?

माणिकलालने एक पत्थरकी चीज़ निर्मलको बतायी और उसपर एक छोटा सा निशान दिखाकर

कहा,—"सारी चीज़ोंपर ऐसे ही निशान बना दिये गये हैं।"

निर्मल—ये निशान क्यों बनाये गये हैं?

माणिकलाल—दिल्लीमें हम तुम अवश्यही अलग अलग हो जायँगे। अगर किसी तरह मुग़लके बन्धनमें पड़ जावें और एकको दूसरेका पता न लगे तो तुम पत्थरका सामान ख़रीदनेके लिये किसीको बाज़ार भेजना। जिस दूकानकी चीज़ों पर ऐसे निशान देखो, उसी दूकान पर मेरा पता लगाना।

इस तरह समझा बुझाकर माणिकलाल अपने साथ उस विश्वासी आदमी और उन पत्थरकी चीज़ोंको लेकर दिल्ली चले गये। वहाँ पहुँचकर एक मकान भाड़े लिया और उसमें पत्थरकी चीज़ोंकी दूकान लगायी। उस आदमीको, जिसे साथ ले गये थे, दूकानपर बैठाकर आप डेरेको लौट आये।

इसके बाद, सारे नौकर चाकर और निर्मलकुमारी को लेकर माणिकलाल फिर दिल्ली गये और वहाँ क़ायदेके माफ़िक़ तम्बू डेरे लगाकर बादशाहके पास ख़बर भेजी।

आठवां परिच्छेद।

शाही दरबार।

दो पहर दिन ढलने पर, औरङ्गज़ेब दरबारमें आकर बैठा। माणिकलाल भी वहाँ जाकर हाज़िर हो गये। दिल्लीके बादशाहके आमख़ासका वर्णन अनेक ग्रन्थोंमें मौजूद है; अतः इस जगह उसके विस्तार सहित वर्णन करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

माणिकलालने पहले सीढ़ियाँ चढ़कर कोरनिश की। इसके बाद फिर उठना पड़ा। एक पैर उठाकर फिर कोरनिश—एक पैर उठाकर फिर कोरनिश, इस तरह तीन बार उठकर वह तख़्त ताजसके पास पहुँच गये। माणिकलालने सलाम करके, राजसिंहकी भेजी हुई सामान्य भेंट बादशाहके सामने रख दी। मामूली सी नज़र देखकर औरङ्गज़ेब मनही मन नाराज़ हो गया, किन्तु मुँह से कुछ न बोला। राणाकी भेजी हुई चीज़ोंमें दो तलवार भी थीं। उनमेंसे एक तो म्यान में रक्खी थी और दूसरी म्यानसे बाहर थी। औरङ्गज़ेबने नङ्गी तलवार लेकर बाक़ी चीज़ें फेर दीं।

माणिकलालने राजसिंहका पत्र दिया। पत्रको पढ़तेही औरङ्गज़ेब क्रोधसे अन्धा हो गया, किन्तु उसका स्वभाव था कि, वह क्रुद्ध होनेपर भी अपना क्रोध एकाएकी बाहर प्रगट नहीं होने देता था। उसने उस समय माणिकलालके साथ विशेष आदरके साथ बात-चीत की। उसके वास्ते अच्छा वास-स्थान देने के लिये बख्शीको हुक्म दिया और महाराणाकी चिट्ठी का जवाब कल दिया जायगा, कहकर माणिकलालको विदा किया।

उसी समय दरबार बरख़ास्त हो गया। दरबारसे उठकर आते ही उसने माणिकलालके बधकी आज्ञा दी। बधकी आज्ञा तो हो गयी; किन्तु बध करनेवालोंको माणिकलालका पता ही न मिला। जिनको माणिक-लालकी ख़ातिर तवाज़ञ करने का हुक्म मिला था, उन्हें भी माणिकलाल न मिले। दिल्लीका कोना कोना खोज लिया गया; परन्तु माणिकलाल कहीं न मिले। बधकी आज्ञा होनेके पहिले ही माणिकलाल वहाँसे खिसक गये थे। समय बहुत हो गया था। जिस समय माणिकलालकी खोज ढूँढ हो रही थी, उस समय माणिकलाल अपनी पत्थरकी दूकान पर, भेष बदल कर, सौदागरी कर रहे थे। सिपाहियोंने जब कहीं माणिकलालका पता न पाया, तब उनके डेरे में

पहुँचे। उनके डेरेमें जितने आदमी मिले, सबको पकड़कर कोतवालके पास ले गये। उन सबमें निर्मल-कुमारी भी थी।

कोतवालने उन लोगोंसे भी कुछ पता न पाया। भय दिखाया, मार पीट भी की; किन्तु फल कुछ न हुआ। वह लोग जब कुछ जानते ही न थे, तब बताते कैसे?

कोतवालने अन्तमें निर्मलकुमारीसे पूछा। उसने उत्तर दिया, "महाराणाके एलचीको मैं पहचानती ही नहीं।"

कोतवाल—उसका नाम माणिकलाल सिंह था।

निर्मल—माणिकलाल सिंहको मैं नहीं पहचानती।

कोतवाल—तब तुम कौन हो?

निर्मल—मैं जनाब जोधपुरी बेगम साहिबाकी हिन्दू बाँदी हूँ।

कोतवाल—जनाब जोधपुरी बेगम साहिबाकी बाँदियाँ महलके बाहर नहीं आतीं।

निर्मल—मैं भी कभी बाहर नहीं आयी। इस बार हिन्दू एलचीको आया हुआ सुनकर, बेगम साहिबाने मुझे उसके डेरे पर भेजा था।

कोतवाल—किस लिये?

निर्मल—किशनजीके चरणामृत के लिये। क्योंकि वह सभी राजपूतोंके पास रहता है।

कोतवाल—तुमको तो हम अकेली ही देखते हैं। तुम महलके बाहर आई किस तरह ?

निर्मल—इसके बलसे।

यह कहकर, निर्मलने जोधपुरी बेगमका "पञ्जा" कपड़ोंसे निकालकर दिखा दिया। देखते ही कोतवाल ने तीन सलामें कीं और निर्मलसे बोला,—"तुम जाओ, तुमसे कोई भी कुछ न बोलेगा।"

निर्मल बोली,—"कोतवाल साहिब! एक मिहरबानी और करनी होगी। मैं कभी महलके बाहर नहीं आयी। आज बड़ी भारी धर पकड़ देखकर, मुझे डर लगता है। अगर आप, दया करके, एक सिपाही मेरे साथ कर दें, जो मुझे महल तक पहुँचा आवे तो बहुत अच्छा हो।

कोतवालने उसी समय एक हथियारबन्द सिपाही को कुछ समझाकर निर्मलके साथ कर दिया और कह दिया कि इसे शाही महलों तक पहुँचा आओ। बादशाहकी प्रधाना बेगम का "पञ्जा" देखकर किसी खोजेने भी कुछ आपत्ति नहीं की। निर्मलने, चतुराईके साथ पूछते पूछते, जोधपुरी बेगमका पता लगा लिया। उनको प्रणाम करके "पञ्जा" दिखाया। उसके देखतेही, बेगम

साहिबा सतर्क होकर उसे एकान्तमें ले गईं और पूछा—"यह पञ्जा तुमने कहाँ पाया ?"

निर्मल बोली—मैं सारा हाल विस्तार पूर्व्वक कहती हूँ।

निर्मलकुमारीने पहले अपना परिचय दिया। इसके बाद जिस तरह "पञ्जा" पहुँचा, वह बात कही। पीछे चञ्चलकुमारीके और अपने ऊपर जो जो घटनाएँ बीतीं थीं सो कह सुनायीं। पीछे माणिकलालके साथ अपना आना, चञ्चलकी चिट्ठी लाना, दिल्लीमें आकर विपद्में पड़ना, वहाँसे छुटकारा पाना, चालाकीसे महलमें आना, ये सब बातें भी कह सुनाईं। शेषमें, चञ्चलने जो चिट्ठी उदयपुरीके लिये भेजी थी वह भी दिखाई और कहा,—"जिस तरह यह चिट्ठी मैं उदयपुरी बेगम तक पहुँचा सकूँ, उस तरकीबके जाननेके लियेही मैं आपके पास आयी हूँ।"

जोधपुरी बेगम साहिबा बोलीं—"इसका उपाय है, किन्तु इसमें ज़ेब-उन्निसा बेगमके हुक्मकी ज़रूरत है। इस समय उसके पास जानेसे गोलमाल होगा। रातके समय, जब वह पापिष्ठा शराब पीकर मस्त हो जायगी तब वह उपाय करना ठीक होगा। इस समय तुम मेरी हिन्दू बाँदियोंके पास ठहरो। वहाँ तुम्हें हिन्दूका अन्न-जल खानेको मिलेगा।

निर्मल इस बात पर राज़ी हो गयी। बेगमने भी वैसीही आज्ञा प्रचार कर दी।

नवाँ परिच्छेद।

निर्मल और उदयपुरी।

रातके समय, एक बजे पीछे, जोधपुरी बेगमने कुछ ज़रूरी बातें समझा कर, साथमें एक तातारी बाँदी देकर, निर्मलको जेब-उन्निसाके कमरेमें भेज दिया। कमरे की चौखट पर पैर रखते ही अतर, गुलाब, पुष्प-राशि और तमाखूकी सुगन्धसे निर्मलका दिमाग़ तर हो गया। फ़र्श और दीवारोंमें नाना प्रकारके रत्न लगे हुए थे। बेगमके सोनेका पलँग भी रत्नोंसे जड़ा हुआ था। चारों ओर सच्चे मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं। दीवारों पर सुचतुर चित्रकारोंकी बनाई हुई अनमोल तसवीरें लग रही थीं। जगह जगह झाड़ फ़ानूस टँग रहे थे, जिनमें काफूरी बत्तियाँ जल रही थीं। इन सबसे भी अधिक, जेब-उन्निसाके रत्न पुष्प मिश्रित अलङ्कार, सूर्य्य चन्द्रकी ज्योतिकी तरह, जगमग जगमग कर रहे थे। इस सजे हुए कमरेमें क़ीमती जवरोंसे सजी

हुई पापिष्ठा ज़ेब-उन्निसा देवलोक-वासिनी अप्सरा सी मालुम होती थी। यह अपूर्व दृश्य देखकर, निर्मल एक बारही चकित स्तम्भित हो गयी।

किन्तु उस समय अप्सराकी आँखें मतवालेकी तरह ऊपर चढ़ रहीं थीं। मुँह रक्तवर्ण और चित्त विभ्रान्त हो रहा था। शराबके नशेका ज़ोर था। निर्मल जाकर उसके सामने खड़ी हो गयी। उसने पूछा—"तू कौन है?"

निर्मल बोली—"मैं उदयपुरकी राज-महिषी की दूती हूँ।"

ज़ेब-उन्निसा—क्या मुग़ल बादशाहकी तरह ताजस लायी है?

निर्मल—नहीं, चिट्ठी लेकर आयी हूँ।

ज़ेब—चिट्ठी का क्या होगा? जला कर रौशनी करेगी?

निर्मल—नहीं, उदयपुरी बेगम साहिबाको दुँगी।

ज़ेब—वह बची है या मर गयी?

निर्मल—मालुम होता है, बच गयी हैं।

ज़ेब-उन्निसा—नहीं, वह मर गयी है। इस दासी को कोई उसके पास पहुँचा दो।

ज़ेब-उन्निसाके कहनेका मतलब यह था कि इसे भी उसीके पास लेजाओ यानी इसे भी मार डालो।

किन्तु तातारी बाँदी उसकी बातका असल मतलब न समझी। साधारण अर्थ समझ कर, उसे उदयपुरी बेगम के पास ले गयी।

वहाँ जाकर निर्मलने देखा कि उदयपुरी बड़े ज़ोरसे हँस रही है और उसका मिज़ाज बहुत ही खुश है। निर्मलने एक खूब लम्बी सलाम की। उदयपुरीने पूछा—"आप कौन हैं?"

निर्मलने जवाब दिया—"मैं उदयपुरकी राज-महिषीकी दूती हूँ। चिट्ठी लेकर आयी हूँ।"

उदयपुरी बोली—नहीं नहीं, तुम फ़ारस देशके बादशाह हो। मुग़ल बादशाहके हाथोंसे मुझे निकाल ले जानेको आये हो।"

निर्मलको हँसी आयी, किन्तु उसने हँसी रोक ली और चञ्चलकी चिट्ठी उदयपुरीके हाथमें दे दी। उदयपुरी उसे हाथमें ले, पढ़नेका सा ढँग बनाकर बोली—"क्या लिखती है?" लिखती है,—"अय नाज़नी! मेरी प्यारी! तुम्हारी सूरत और दौलतका हाल सुनकर, मैं एक बार ही बेहोश और दीवानी होगयी हूँ। तुम जल्दी आकर कलेजा ठण्डा करो। अच्छा, यह काम करूँगी, हुजूरके साथ ज़रूर चलूँगी। आप थोड़ी देर ठहरें। मैं ज़रा शराब पी लूँ। क्या आप इस शराबका मुलाहिज़ा फ़रमायेंगे? अच्छी शराब है। फिरङ्गियोंके एल-

चीने यह नज़र दी है। ऐसी शराब अपने देशमें पैदा नहीं होती।"

उदयपुरीने प्याला मुँहको लगाया. उसी अवसरमें निर्मल बाहर निकलकर जोधपुरीके पास जा खड़ी हुई और जो बीती थी वह सब कह सुनायी। निर्मल की बातें सुन, जोधपुरी हँसकर बोली,—"कल होश हवास आनेपर चिट्ठी पढ़ेगी। तुम इसी वक्त भाग जाओ; नहीं तो कल गोलमाल होना सम्भव है। मैं तुम्हारे साथ एक विश्वासी खोजेको कर देती हूँ। वह तुमको महलके बाहर ले जाकर तुम्हारे स्वामीके डेरे तक पहुँचा देगा। अगर वहाँ तुम्हारा कोई आत्मीय स्वजन मिल जाय, तो तुम उसके साथ आज ही दिल्लीसे चली जाना। यदि डेरेमें कोई न मिले तो इसीके साथ दिल्लीके बाहर निकल जाना। तुम्हारा स्वामी दिल्ली छोड़कर कहीं बैठा हुआ तुम्हारी राह देखता होगा। राहमें भी यदि उससे मुलाक़ात न हो, तो यह खोजा ही तुम्हें उदयपुर तक पहुँचा आवेगा। अगर ख़र्च पत्तर तुम्हारे पास न हो तो मैं वह भी देने को मुस्तैद हूँ। किन्तु सावधान! मुझे मत पकड़वा देना।

निर्मल बोली—"हज़रत! इस बातसे बिल्कुल निश्चिन्त रहिये, मैं राजपूतकी लड़की हूँ।

जोधपुरी ने अपने बनासी नामक विश्वासी खोजे

को बुलाया और उसे जो काम करना था समझाकर बोली,—"इसी समय जा तो सकोगी न ?"

बनासी बोला—"हाँ जासकूँगा; लेकिन बेगम साहिबा का दस्तख़ती परवाना बिना मिले, इस कामके करनेका साहस नहीं कर सकता।"

जोधपुरी बोली—"जैसा परवाना दरकार है वैसा ही लिखा ला। मैं बेगम साहिबा के दस्तख़त करा दूँगी।

खोजा परवाना लिखा लाया। परवाना उसी तातारी बाँदी के हाथमें देकर बेगम साहिबा बोलीं—"इस परवानेपर बेगम साहिबा के दस्तख़त करा ला।"

बाँदीने पूछा, "यदि पूछें, कैसा परवाना है ?

जोधपुरी बोली—"कह देना, मेरे कोतलका परवाना है। लेकिन क़लम दवात साथ लेती जा। और पञ्जा लगाना मत भूलना।

बाँदीने क़लम दवात सहित परवाना ले जाकर ज़ेब-उन्निसाके पास रख दिया। ज़ेब उन्निसा ने पूछा,—कैसा परवाना है ?"

बाँदी बोली,—"मेरे कोतलका परवाना है।"

ज़ेब-उन्निसा—तुमने क्या चीज़ चोरी की है ?

बाँदी—हज़रत उदयपुरी बेगम का पिशवाज़।

ज़ेब-उन्निसा—"भला किया," यह कह कर उसने

परवाने पर दस्तख़त कर दिये। बाँदी ने मुहर लगा कर परवाना जोधपुरी को ला दिया। बनासी उस परवाने और निर्मल को लेकर जोधपुरी के महलसे चल दिया। निर्मल कुमारी बड़ी खुशी से खोजे के साथ हो ली।

लेकिन वह खुशी बहुत देर न रहने पायी। रङ्गमहल के फ़ाटक के पास आकर खोजा भीत, स्तम्भित होकर खड़ा हो गया और बोला,—अरे! आफ़त है! भागो! भागो," यह कह कर खोजा उर्द्धश्वास लेता हुआ सिर पर पैर रखकर भाग गया।

दसवाँ परिच्छेद।

निर्मल और आलमगीर।

निर्मल इस बातको बिल्कुल न समझी कि, क्यों भागना चाहिये। उसने इधर उधर देखा, लेकिन भागने का कारण कुछ भी नज़र न आया। केवल देखा कि फ़ाटक के पास एक आदमी खड़ा है। उसकी अवस्था पकी हुई है और वह श्वेत वस्त्र पहिने हुए है। मन में कहने लगी, यह क्या भूत प्रेत है जो इसके भय से खोजा

भाग गया ? किन्तु निर्मल तो भूत प्रेतसे भी न डरती थी ; इससे भागी तो नहीं लेकिन इधर उधर करने लगी। इसी बीचमें वह सफ़ेद-पोश आदमी निर्मल के पास आकर खड़ा हो गया और उससे पूछने लगा, "तू कौन है ?"

निर्मल बोली—"मैं कोई क्यों न हूँ, आपका मतलब ?"

सफ़ेद-पोशने पूछा,—"तू कहाँ जाती थी ?"

निर्मल—बाहर।

पुरुष—किसलिये ?

निर्मल—कुछ ज़रूरत है।

पुरुष—बिना ज़रूरत कोई कुछ भी नहीं करता, इस बातको मैं जानता हूँ। क्या काम है ?

निर्मल—मैं नहीं बताऊँगी।

पुरुष—तेरे साथ कौन था ?

निर्मल—नहीं बताऊँगी।

पुरुष—तू तो हिन्दूकी लड़की मालुम होती है, कौन ज़ात है ?

निर्मल—राजपूत।

पुरुष—क्या तू जोधपुरी बेगमके पास रहती है ?

निर्मलने मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि, जोधपुरी बेगम का नाम किसी के सामने न लूँगी। कौन जाने इस

से उनको नुक़सान पहुँचे। इसलिये बोली, "मैं यहाँ नहीं रहती। आज ही आयी हूँ।"

पुरुषने पूछा,—"तू कहाँ से आयी है।"

निर्मल मनमें कहने लगी। झूठ क्यों बोलूँ? यह आदमी मेरा क्या करेगा? राजपूत कन्याको किसका भय है जो झूठ बोले? इस तरह सोच विचार कर बोली—"मैं उदयपुर से आयी हूँ।"

उस पुरुष ने पूछा—"क्यों आयी है?"

निर्मल—मनमें कहने लगी, इसको इतना परिचय देनेको क्या आवश्यकता है? बोली,—"आपको इतनी बातें बताने से क्या लाभ? इतनी पूछ-ताछ न करके, यदि आप मुझे फ़ाटक के पार करदें तो मुझ पर बड़ा एहसान हो।"

पुरुषने उत्तर दिया,—"यदि तुम्हारे उत्तर से सन्तुष्ट हो जाऊँगा, तो तुमको फाटक के पार कर सकूँगा।"

निर्मल—आप कौन हैं, यह बात जाने बिना मैं आप से सारी बातें न कहूँगी।

पुरुष ने जवाब दिया,—"मैं आलमगीर बादशाह हूँ।"

उस पुरुष के अपना परिचय देते ही, निर्मल के ध्यान में वही तस्वीर आगयी जो चञ्चल ने लात मारकर तोड़ दी थी। निर्मल दाँतों तले जीभ दबाकर, मनमें बोली,—"हाँ, वही तो है।"

उसी समय निर्मल ने ज़मीन चूम कर बादशाह को क़ायदे के माफ़िक़ सलाम की। हाथ जोड़ कर बोली, "हुक्म फ़रमाइये।"

बादशाह—यहाँ किसके पास आयी थी?

निर्मल—हज़रत बादशाह बेगम उदयपुरी साहिबा के पास।

बादशाह—क्या बोली? उदयपुर से उदयपुरी के पास? किसलिये?

निर्मल—चिट्ठी थी।

बादशाह—किसकी चिट्ठी?

निर्मल—महाराणाकी राज-महिषी की।

बादशाह—कहाँ है वह चिट्ठी?

निर्मल—वह हज़रत बेगम साहिबा को दे दी है।

बादशाह बहुत ही विस्मित होकर बोला,—"मेरे साथ आओ।"

निर्मलको साथ लेकर बादशाह उदयपुरीके महल में गया। निर्मलको दरवाज़े पर खड़ी करके, तातारी बाँदियों से बोला, "इसको छोड़ना मत।" आप उदय-पुरीके सोनेके कमरे में गया। देखा, कि उदयपुरी घोर निद्राके वशीभूत पड़ी है और उसके बिछौनेपर एक चिट्ठी रक्खी है। औरङ्गज़ेब उसे उठाकर पढ़ने लगा। चिट्ठी उस ज़माने की रीति अनुसार फ़ार्सी भाषामें लिखी थी।

चिट्ठी पढ़ते ही औरङ्गज़ेबका चेहरा एक दम भयानक हो गया। आँखें लाल लाल करके बाहर आया और निर्मलसे बोला,—"तू इस महल में कैसे आयी ?"

निर्मल हाथ जोड़ कर बोली,—"बाँदी का अपराध क्षमा हो—मैं इस बात का जवाब न दूँगी।"

औरङ्गज़ेब चकित होकर बोला,—"इतनी हिमाक़त क्यों ? मैं दुनिया का बादशाह हूँ—मैं पूछता हूँ, तू जवाब न देगी ?"

निर्मल हाथ जोड़कर बोली,—"दुनिया हुज़ूर की है; लेकिन जीभ मेरी है। मैं जो बात न कहूँगी, दुनिया का बादशाह उसे मुझसे न कहला सकेगा।"

औरङ्गज़ेब—यह नहीं हो सकता, जिस जीभकी बड़ाई करती है, उसे अभी तातारी बाँदियोंसे कटवाकर कुत्ते को खिलवा दूँगा।

निर्मल—दिल्लीश्वरकी इच्छा। किन्तु जिस बातको आप जानना चाहते हैं, उसके प्रकाश होनेकी राह हमेशाके लिये बन्द होजायगी।

औरङ्गज़ेब—इसी कारण से तो अभीतक जीभ नहीं कटायी है। मैं हुक्म देता हूँ कि, तेरे शरीर में कपड़ा लपेट कर तातारी बाँदियाँ आग लगा दें। मेरी जिन बातोंका जवाब तू अभी नहीं देती है. उनका जवाब आग लगने पर ज़रूर देगी।

निर्मल कुमारी हँसकर बोली,—"हिन्दू की लड़की आगमें पड़ कर मरने से नहीं डरती। हिन्दुस्तानके बादशाह ने क्या कभी नहीं सुना कि, हिन्दू स्त्री, हँसती हँसती, स्वामीके साथ जलती हुई चिता में पड़कर मर जाती है? आप जिस आगका भय दिखाते हैं, उसमें मेरी मा, नानी वग़ैरः सभी जीती हुई जल गई हैं। मैं भी चाहती हूँ कि, ईश्वरकी कृपा से, मुझे भी स्वामी के पास स्थान मिले और मैं जीती जागती आगमें जल मरूँ।"

बादशाह मनही मन बोला, "वाहवा! वाहवा!" प्रकट में बोला, "इस बातकी मीमाँसा पीछे की जायगी। अभी तू इस महलके एक कमरेमें रह। बाहर से ताला लगा दिया जायगा। भूख प्यास से कातर होनेपर भी खानेको कुछ न मिलेगा। जिस समय प्राण जाने लगें, उस समय किवाड़ों में धक्का मारना। तातारी बाँदियाँ दरवाज़ा खोलकर तुझको मेरे पास ले आवेंगी। उस समय यदि तू मेरी बातोंका उत्तर दे देगी, तो तुझे खाने पीनेको मिलेगा।

निर्मल—शाहँशाह! क्या आप ने कभी सुना नहीं है कि, हिन्दू-स्त्रियाँ व्रत-नियम किया करती हैं? व्रत नियमके लिये एक दिन, दो दिन, तीन दिन निर्जल उपवास करती हैं? सुना नहीं है, वे लोग उपवास करती करती, कभी कभी, अपनी इच्छा से, प्राण त्याग भी कर

देती हैं ? जहाँपनाह ! यह दासी भी वह सब काम कर सकती है। इच्छा हो तो मृत्यु पर्य्यन्त मेरी परीक्षा कर देखें।

औरङ्गज़ेबने देखा कि इस स्त्री को भय दिखाने से कुछ लाभ न होगा। मार कर फेंक देने से भी कुछ न होगा। एक बार इसे लोभ भी दिखाना चाहिये। कौन जाने. लोभ से काम निकल आवे। बोला,—"अच्छा. मैं तुम्हें तकलीफ़ न दूँगा। तुमको धन दौलत देकर विदा करूँगा। तुम सारी बातें मुझसे सच सच कह दो।"

निर्मल—राजपूत-कन्या जिस तरह मृत्यु से घृणा करती है उसी तरह धन दौलत से भी। मैं सामान्य स्त्री हूँ। आप मुझे दया करके विदा करदें।

औरङ्गज़ेब—दिल्लीके बादशाह को अदेय कुछ भी नहीं है। क्या उसके पास तुम्हारे मांगने योग्य कुछ भी नहीं है ?

निर्मल—है। निर्व्विघ्न विदा।

औरङ्गज़ेब—केवल यही इस समय नहीं मिल सकती। इसको छोड़कर क्या और कुछ मांगने अथवा भय करने को नहीं है ?

निर्मल—क्या मांगूँ ? दिल्ली के बादशाहके रत्नागार में वह रत्न नहीं है।

औरङ्गज़ेब—ऐसी क्या चीज़ है?

निर्मल—हम लोग हिन्दू हैं; हम लोग जगत् में केवल धर्म से ही भय करते हैं और धर्म की ही कामना करते हैं। दिल्लीका बादशाह म्लेच्छ और ऐश्वर्य-शाली है। दिल्लीके बादशाह की क्या शक्ति है, जो मेरी इच्छित वस्तु दे सके या ले सके?

निर्मल की हिम्मत और चातुरी देखकर दिल्लीश्वर का क्रोध काफ़ूर हो गया। उनको बड़ा भारी विस्मय हुआ। बोले—"है! है! यह बात तो भूल ही गया था।" उसी समय उन्होंने एक तातारी को हुक्म दिया "जा, बावर्ची-महलसे कुछ गो-माँस ले आ। दो तीन जनी पकड़ कर, उसे इसके मुँह में ठूँस दो।"

निर्मल इस बात से भी न टली, बोली—"जानती हूँ, आप लोगोंके पास यह विद्या है। इस विद्याके बल से ही यह सोनेका हिन्दुस्तान अपने आधीन कर लिया है। गायोंके झुण्डों को आगे रख कर लड़ाई करनेसे ही मुसल्मानों ने हिन्दुओं को परास्त किया है। नहीं तो राजपूतों के बाहुबल के सामने मुसल्मानों का बाहुबल वैसा ही है जैसा कि समद्रके सामने गो-पद। लेकिन एक बात और आपको जनाये देती हूँ। सुना नहीं है कि, राजपूत स्त्रियाँ विष बिना सँग लिये एक पैंड भी नहीं चलतीं? मेरे पास ऐसा तेज़ ज़हर है,

कि अगर आप की बाँदियाँ जहर लेकर इस घरके अंदर आजावें और मैं तब भी जहरको मुँहमें दे लूँ; तो वह मेरे जीते हुए मेरे मुँहमें गो-माँस नहीं दे सकतीं। आप अपने बड़े भाई दारा शिकोह को मारकर, उसकी दो स्त्रियोंको निकाल लाने गये थे—गये थे न?—अधम ईसाइन तो आगयी, किन्तु राजपूतानी दिल्लीके बादशाहके मुँह पर सात पैज़ार मारकर स्वर्गको चली गयी।

मैं भी इस समय तुम्हारे मुँह पर सात पैज़ार मार कर स्वर्गको चली जाऊँगी।

बादशाह अवाक हो गया। जो पृथ्वीपति के नाम से विख्यात थे, जगत् में जिनके नामका डङ्का बजता था, जिनसे समस्त भारतवर्ष थरथर थरथर काँपता था, जिनके ज़रा भृकुटी टेढ़ी करनेसे बड़े बड़े महीपालोंकी धोती ढीली हो जाती थी वही एक अनाथा असहाया अबला से अपमानित और परास्त हुए! औरङ्गज़ेबने पराजय स्वीकार कर ली। मनही मन कहने लगे, "यह अमूल्य रत्न है। इसको नष्ट करना ठीक नहीं है! मैं इसे वशीभूत करूँगा।" प्रकट में बहुत ही मीठे स्वर में बोले, "तुम्हारा नाम क्या है प्यारी?"

निर्मल कुमारी हँसकर बोली, क्या कहा जहाँपनाह! क्या और भी राजपूत-महिषी की साध है? अगर है तो

वह साध भी आपको परित्याग कर देनी होगी। मैं विवाहिता हूँ। मेरा हिन्दू स्वामी जीवित है।

औरङ्ग—इस वक्त इस जिक्रको छोड़ दो। अब तुम कुछ दिन इसी रङ्गमहल में रहो। भरोसा है, इस हुक्मके बरखिलाफ़ काम न करोगी।

निर्मल—मुझे क्यों रोकते हैं?

औरङ्ग—यदि तुम इस समय अपने देशको जाओगी तो मेरी बहुत निन्दा करोगी। इसलिये अब तुम्हारे साथ वह व्योहार किया जायगा जिससे तुम मेरी तारीफ़ करो। पीछे तुमको छोड़ दूँगा।

निर्मल—यदि आप न छोड़ें तो मेरी जाने की शक्ति भी नहीं है। किन्तु आप मेरी कुछ बातोंको सुन लें, तो मैं कुछ दिन यहाँ रह सकती हूँ।

औरङ्ग—वह कौनसी बातें हैं?

निर्मल—हिन्दू के अन्न-जल के सिवा दूसरे का अन्न-जल न छूऊँगी।

औरङ्ग—यह मैंने मञ्जूर किया।

निर्मल—कोई मुसल्मान मुझे न छूएगा।

औरङ्ग—यह भी मञ्जूर है।

निर्मल—मैं किसी राजपूत बेगमके पास रहूँगी।

औरङ्ग—यह भी हो जायगा। मैं तुमको जोधपुरी बेगमके पास रख दूँगा।

निर्मल कुमारी के लिये बादशाहने जैसा मञ्जूर किया था वैसा ही बन्दोबस्त कर दिया।

ग्यारहवां परिच्छेद।
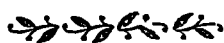
निर्मल की चिट्ठी।

गले दिन औरङ्गज़ेब, ज़ेब-उन्निसा और निर्मल कुमारी को साथ लेकर रङ्ग-महल में इस बात की तहक़ीक़ात करने लगा कि, किसने इसको महल में आने दिया। उसने महलके एक एक खोजे और एक एक बाँदी से बुला बुला कर पूछा। जिनके सामने होकर निर्मल आयी थी अथवा जिन्होंने उसे अन्दर आने दिया था वे उसे पहचान तो गये; मगर बुरा काम होने के कारण किसी ने भी अपराध स्वीकार न किया। बहुत कुछ कोशिश करने पर भी औरङ्गज़ेब और जेब-उन्निसा को ज़रा भी पता न लगा।

औरङ्गज़ेब और ज़ेब-उन्निसा ने हुक्म सुनाया— "ख़ैर, इसके आने से इतना नुक़सान नहीं, लेकिन कोई

इसे बिना हमारे हुक्म बाहर न जाने दे। कोई इसे तकलीफ़ न दे और किसी तरह बेइज्ज़ती भी न करे। अन्यान्य बेगमों की तरह इस की इज्ज़त की जाय। यह जोधपुरी बेगम की हिन्दू बाँदियों का अन्न-जल खायगी। कोई मुसल्मान इसे छूने न पावे।"

जिस समय यह हुक्म दिया गया, उसी समय सबने निर्मल को सलाम किया। ज़ेब-उन्निसा उसे बड़े आदर के साथ अपने महल में लेगयी। उसने निर्मल के साथ नाना प्रकार की बातें कीं; मगर निर्मल के पेट के भीतर की थाह न पायी।

उसी दिन शामको एक बाँदीने आकर जोधपुरी बेगम से कहा, "एक सौदागर पत्थर की चीज़ें लेकर क़िले में आया है। उसने कुछ चीज़ें महल में भेजी हैं। चीज़ें अच्छी नहीं हैं; इसीसे किसी बेगम ने एक भी चीज़ नहीं ख़रीदी। आप कुछ ख़रीदेंगी क्या?"

माणिकलाल छाँट छाँट कर ख़राब चीज़ें लाये थे, जिससे कोई बेगम किसी चीज़ को पसन्द करके न रख सके। जिस समय बाँदी ने जोधपुरी से यह बात कही, उस समय निर्मलकुमारी वहीं थी। उसने जोधपुरी की ओर आँख से इशारा किया और बोली, "मैं ख़रीदूँगी।" जोधपुरी ने निर्मल का अभिप्राय समझ कर पत्थर की चीज़ें मँगवाईं।

बाँदी के बाहर चले जाने पर निर्मल ने, संक्षेप से, माणिकलाल के चिन्ह की बात जोधपुरी को समझा दी। जोधपुरी ने कहा—"तुम अपने स्वामी को एक चिट्ठी लिख दो। मैं पत्थर की चीज़ें पसन्द करती हूँ। तुम्हारे स्वामी को खबर देने का यह अच्छा सुयोग है।" इतने में बाँदी सब सामान लिवा लायी।

निर्मल ने सारी चीज़ें स्वयम् अपने नेत्रों से देखीं। सब पर माणिकलाल के चिन्ह देख कर, वह तो चिट्ठी लिखने में लग गयी और जोधपुरी चीज़ें पसन्द करने लगी। उन चीज़ों में एक छोटी सी रत्न जटित सन्दूक भी थी। सन्दूक़ में ताला कुञ्जी लगाने के लिये सोने की साँकली भी लग रही थी। जोधपुरी ने निर्मल की चिट्ठी उसी सन्दूक़ में रख दी और उसका ताला लगा दिया। जोधपुरी ने यह काम ऐसी सफ़ाई से किया कि, किसी की भी नज़र उस पर न पड़ी।

जोधपुरीने सारी चीज़ें पसन्द करके रख लीं; केवल वही सन्दूकड़ी फेर दी। सन्दूकड़ी लौटाने के समय, जान बूझ कर, चाभी देना भूल गयी।

बनावटी सौदागर माणिकलाल ने जब देखा कि, सन्दूकड़ी तो आगयी मगर इसकी चाभी नहीं आयी; तभी उनकी मुरझायी हुई आशा-लता हरी होगयी। उन्हों ने, बिकी हुई चीज़ों के दाम दमड़े सम्हाल कर,

अपनी दूकान को राह ली। उस जगह एकान्त में सन्दूक़ खोली। उसमें उन्हें निर्मल की चिट्ठी मिली।

चिट्ठी पढ़कर माणिकलाल निश्चिन्त होगये और उदयपुर जाने की तय्यारी करने लगे। फिर मन में सोचा, आज ही दूकान उठा देने से शायद कोई कुछ शक करे; इससे कुछ दिन और ठहरकर जाने का विचार पक्का रक्खा।

बारहवां परिच्छेद।

मुबारक की हत्या!

अब ज़रा, निर्मल को छोड़ कर, मियाँ मुबारक की खबर लेनी चाहिये। हम पहिले लिख आये हैं कि, रूपनगर से हार कर लौटी हुई सेना के किसी सर्दार को तो औरङ्गज़ेब ने पदच्युत कर दिया, किसी को क़ैद कर दिया और किसी को जानसे ही मरवा डाला; किन्तु मुबारक को, सब के मुँह से उनके वीरत्व की बात सुन कर, अपनी जगह पर बहाल रक्खा।

पाठकों को यह बता देना भी आवश्यक है कि,

ज़ेब-उन्निसा बेगम मुबारक पर मरती थी। उसने मुबारककी यह सुख्याति सुनकर मनमें कहा,—"मुबारकअली मेरे पास खुद ही आयेंगे।" किन्तु मुबारक न आये।

मुबारक के एक दरिया नामक विवाहिता स्त्री थी। उन्होंने उसे बहुत रोज़ से, जब से उनकी आशनाई ज़ेब-उन्निसा से हुई थी, छोड़ रक्खा था। लेकिन अब वह उसे अपने घर ले आये। उसको परिचर्य्याके लिये दास दासी रख दिये। उसके लिये अनेक प्रकार की पोशाकें और ज़ेवर बनवा दिये। मुबारक अपनी विवाहिता स्त्रीके साथ सुखसे रहने लगे।

मुबारक जब अपने आप न आये, तो ज़ेब-उन्निसा ने अपने एक विश्वासी खोजेके हाथ उन्हें बुलवाया। लेकिन मुबारक तब भी न आये। ज़ेब-उन्निसा क्रोधके मारे लाल हो गयी। बोली, "बड़ी हिमाक़त—बादशाहज़ादी मिहरबानी करके बुलाती है—तौभी नफ़र हाज़िर नहीं होता—बड़ी गुस्ताख़ी है!"

कुछ दिन तो ज़ेब-उन्निसा क्रोधमें चुप साध गयी। जब मन न माना, किसी तरह न सरा, तो फिर उसी विश्वासी खोजेको मुबारकके पास भेजा और उन्हें बुलवाया। मुबारकने कहला भेजा—"शाहज़ादी साहिबा के लिये मेरी बहुत बहुत तसलीमात हैं। दुनियामें शाहज़ादीसे ज़ियादा मेरे लिये कोई नहीं है। केवल

एक है। खुदा है, "दीन" है। मुझसे अब और गुन-ह्गारी न होगी—अब मैं और महलके भीतर न आऊँगा—मैं अब दरियाको घर ले आया हूँ।"

ज़ेब-उन्निसा यह बात सुनतेही गुस्सेके मारे दीवानी हो गयी। उसने दरिया और मुबारक के नाशकी दृढ़ प्रतिज्ञा की।

निर्मल के महल में रहनेसे ज़ेब-उन्निसा को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी कुछ कुछ आशा होती थी। उधर औरङ्ग़ज़ेब मनमें कहता था,—"मैं मेवाड़को अपने सेना-सागरमें डुबा दूँगा, इसमें सन्देह नहीं। राज-सिंहको राजसे एकदम अलग कर दूँगा, इसमें सन्देह नहीं। यह सब काम मेरी इच्छानुसार, मेरे इशारा करते ही हो जायँगे। इनके होनेमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है। लेकिन इन कामोंके हो जानेसे मेरे मानकी मरम्मत न हो जायगी। जब चञ्चलकुमारी मेरे पास आ जायगी तभी मेरा मान रहेगा। सुनता हूँ, राजपूत स्त्रियाँ जीती हुई चितामें जल मरती हैं, ज़हर खाकर प्राणत्याग कर देती हैं। यदि मैंने उदयपुरका नाम निशान भी मिटा दिया और चञ्चल हाथ न आई ; तो मेरी मिहनत फ़िज़ूल होगी। इससे इस रूपनगरकी बाँदीको अपने हाथमें कर लूँ, तो सब काम बन जायँ। यह चञ्चलको, धोखा देकर, मेरे पास ले आवेगी। क्या यह

बाँदी मेरे वशीभूत न होगी ? मैं दिल्लीका बादशाह हूँ, मैं क्या एक बाँदीको भी अपने वशीभूत न कर सकूँगा ? अगर मैं इसे वशीभूत न कर सकूँ, तो मेरा बादशाही करना ही फ़िज़ूल है।"

बादशाहने मनमें ऐसा विचार स्थिर करके,ज़ेब-उन्निसाको इशारा किया। उसने निर्मलकुमारीको अनेक प्रकारके क़ीमती क़ीमती ज़ेवर और कपड़े पहना दिये। वह बेगमोंमें बेगम हो गयी। वह जो कुछ कहती वही होता, जो माँगती वही पाती, केवल बाहर नहीं जाने पाती थी।

बादशाहने भीतरी बातोंका पता लगानेके लिये, अपने दाहिने हाथ, ज़ेब-उन्निसाको नियुक्त किया। आजकल ज़ेब-उन्निसा और निर्मलकी बातें खूब खुल खुलकर हुआ करती थीं। निर्मल जिस बातमें अपनी हानि न समझती उसे कह देती। बातोंही बातोंमें एक दिन रूपनगरके युद्धकी बात चल पड़ी। निर्मलने युद्ध आप तो न देखा था; किन्तु चञ्चलकुमारीसे सारी बातें सुनी थीं। उसने युद्ध सम्बन्धी और सब बातोंके सिवा यह भी कह दिया कि,मियाँ मुबारकने चञ्चलकुमारीके आगे हार मान ली और लड़ाई बन्द कर दी। चञ्चल स्वयँ दिल्ली आनेको तय्यार हुई। लेकिन उसके यह कहने पर कि मैं दिल्लीको राहमें विष खालूँगी, मुबारकअली चञ्चलकुमारीको न लाये।

इस बातको सुनकर ज़ेब-उन्निसा मनमें कहने लगी—"मुबारक साहब! इसी अस्लसे तुम्हारा सिर काटा जायगा।" ठीक मौक़ा पाकर ज़ेब-उन्निसाने औरङ्गज़ेबको युद्धको सारी कहानी कह सुनाई।

औरङ्गज़ेब इस बातके सुनतेही काला पीला हो गया, सिरसे पैर तक क्रोधके वशीभूत होकर बोला,—"अगर वह नफ़र ऐसा विश्वास-घातक है तो वह आजही जहन्नुममें जायगा।" औरङ्गज़ेब ज़ेब उन्निसाकी चालाकी को न समझा हो, सो बात नहीं है। मुग़ल बादशाहों का क़ायदा था कि, वे अपनी बहिन बेटियों की बदचलनी देख सुनकर भी कुछ न बोलते थे; किन्तु उन के प्रेमीको,पता पातेही, कौशलसे ठिकाने लगा देते थे। औरङ्गज़ेब मुबारक और ज़ेब-उन्निसाके विषयमें सब जानता था; लेकिन इतने दिन ठीक मौक़ा न आनेसे कुछ न बोला। आज मनमें समझ गया कि, आपसमें झगड़ा हुआ है। चलो भला हुआ। उसी समय बख़्शीको बुलवाकर मुबारकके मार डालनेका हुक्म दिया। बख़्शीकी आज्ञासे आठ आदमी जाकर मुबारकको पकड़ लाये। मियाँ मुबारक हँसते हँसते चले आये। आते ही देखते क्या हैं "कि, बख़्शीके पास दो पिंजरे रक्खे हैं। उन दोनों पिंजरों में विषधर काल सर्प बैठे हुए फुँकार मार रहे हैं।

मुबारक बख़्शीके पास खड़े होकर और दोनों ओर विषधर साँपोंके पिंजरे देखकर बोले—"क्या मुझे इन पर पैर रखना होगा?"

बख़्शी बोला—"बादशाहका हुक्म।"

मुबारकने पूछा—"यह हुक्म क्यों हुआ, कुछ मालुम हुआ है क्या?"

बख़्शी—नहीं—आपको कुछ मालुम नहीं हुआ?

मुबारक—कुछ अनुमानसे मालुम हुआ है। खै़र, अब देर क्या है?

बख़्शी—कुछ भी नहीं।

उसी समय मुबारकने जूते खोलकर एक पिंजरे पर पाँव रक्खा। साँपने पिंजरेके छेदसे काट लिया। दंशन-ज्वालासे मुबारकका चेहरा कुछ बिगड़ गया। मुबारकअली बख़्शीसे बोले,—"साहब! यदि कोई पूछे कि मुबारक क्यों मरा, तो मिहरबानी करके यह कह देना, शाहज़ादी आलम ज़ेब-उन्निसा बेगम साहिबाकी मर्ज़ी।"

बख़्शी भयभीत होकर बड़े कातर भावसे बोला—"चुप! चुप! इस पर भी।"

शायद एक साँपका विष कारगर न हो, इस ख्याल से जिसकी हत्या करनी होती थी उसे दो साँपोंसे कटवाया करते थे। मुबारक इस बातको जानते थे।

उन्होंने दूसरे पिंजरेके ऊपर भी पाँव रक्खा, दूसरे महा-सर्पने भी उनको काटकर तीक्ष्ण विष उगल दिया ।

मुबारक उसी समय विष-ज्वालासे जर्ज्जरीभूत और नील-कान्ति होकर, घुटनोंके बल बैठ गये और हाथ जोड़कर पुकारने लगे,—"अलाह अकबर ! यदि मैंने कभी कोई काम तुम्हारी दया पाने योग्य किया हो, तो इस समय दया करो ।"

इस तरह जगदीश्वरका ध्यान करते करते, तीक्ष्ण सर्प-विषसे जर्ज्जरीभूत होकर, मियाँ मुबारकने प्राण त्याग दिये ।

तेरहवां परिच्छेद ।

मुर्दा जिलानेकी तदबीर ।

दिल्लीमें जो जो घटनाएँ घटती थीं, जो जो बुरे भले काम होते थे, प्राय सभी की खबरें ज़ेब-उन्निसा के पास आजाती थीं । आज और सब खबरों के साथ मुबारकके मरनेकी खबर भी ज़ेब-उन्निसाके पास पहुँच गयी ।

जब तक उसके पास मुबारक की मृत्यु की खबर

न पहुँची थी, तब तक वह यह समझती थी कि उस खबरके सुनने से मुझे खुशी होगी। लेकिन ज्योंही यह खबर मिली कि, उसकी आँखों से अश्रु-धारा बह निकली, हिचकियाँ बँध गयीं। यह ऐसा भीतरी दुःख था जिसे वह किसी से कह भी न सकती थी। उसने अपने शयनागार का द्वार बन्द कर लिया और अपने सोनेके पलङ्ग पर जाकर औंधे मुँह पड़ गयी। रोते रोते आँखें लाल हो गयीं। जिन आँखों से कभी एक बूँद भी आँसूकी न गिरी थी, आज उनसे आँसुओंके दरिया बह चले। मनमें पछताती थी, "हाय! मैंने अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी क्यों मारी? अपने सुखकी राह मैंने आपही क्यों बन्दकर दी? जो स्वर्गीय आनन्द मैं चिरकालसे भोगती आती थी,आज उसकी सदा के लिये समाप्ति हो गयी। इस भाँति रोते विलपते जब उसे बहुत देर हो गयी, तब उसने अपने कमरेका दरवाज़ा खोला और अपने विश्वासी खोजा मुइनुद्दीन को पुकारा। खोजा हाज़िर हुआ। ज़ेब-उन्निसाने पूछा, "जो मनुष्य साँपके ज़हर से मर जाता है क्या उसका इलाज हो सकता है?"

मुइनुद्दीन बोला—"मर जानेपर क्या इलाज हो सकता है? मरे हुए भी कहीं जीते हैं"?

ज़ेब-उन्निसा—कभी सुना भी नहीं?

मुद्दनुद्दीन—हकीम अकबरअली ने एक दफ़ा एक साँपके काटे आदमी को जिलाया था, यह बात मैंने कानोंसे सुनी है, आँखोंसे नहीं देखी।

ज़ेब-उन्निसा—क्या तुम हकीम अकबरअली को जानते हो?

मुद्दनुद्दीन—हाँ, जानता हूँ।

ज़ेब-उन्निसा—वह कहाँ रहते हैं?

मुद्दनुद्दीन—दिल्ली में ही रहते हैं।

ज़ेब-उन्निसा—उनका घर देखा है?

मुद्दनुद्दीन—हाँ, देखा है।

ज़ेब-उन्निसा—अभी वहाँ जा सकोगे?

मुद्दनुद्दीन—हुक्म होते ही चला जाऊँगा?

ज़ेब-उन्निसा—आज मुबारक अली (कहते कहते गला भर आया) साँपके काटने से मर गये हैं, जानते हो?

मुद्दनुद्दीन—जानता हूँ?

ज़ेब-उन्निसा—वह कहाँ दफ़नाये गये हैं, जानते हो?

मुद्दनुद्दीन—यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन क़ब्र-स्तान को जानता हूँ। उनकी क़ब्र का पता लगा लूँगा।

ज़ेब-उन्निसा—मैं तुझे पाँच सौ अशर्फ़ियाँ देती

हूँ। इनमेंसे आधी अकबर अली को देना और आधी तू आप रखना। मुबारकअली को क़ब्रसे निकाल कर इलाज कराना। अगर वह ज़िन्दा हो जायँ तो उन्हें मेरे पास ले आना। जाओ अभी चले जाओ।

हुक्म मिलते ही, मुइनुद्दीन वहाँ से हकीम साहब के घरकी ओर चल दिया।

चौदहवाँ परिच्छेद।

मुर्दा जी उठा!
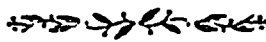
णिकलाल एक बार फिर शाही महलों में पत्थर का सामान लेकर गये। इस बार उन्होंने उसी सन्दूक़में अपना सिखाया हुआ कबूतर रखकर भेज दिया। निर्मलने उसी चाभीसे, जो जोधपुरी बेगमने उस दिन जान बूझकर अपने पास रख ली थी, सन्दूक़ खोल ली। कबूतरको एक पिंजरेमें रख लिया और एक चिट्ठी लिख कर सन्दूक़में रख दी। ताला बन्द करके, सन्दूक़ और सामानके साथ वापिस कर दी। निर्मलने अपनी चिट्ठीमें लिखा था—"मैं बहुत प्रसन्न हूँ। कुछ भी तकलीफ़

नहीं है। आप उदयपुर चले जावें। मेरे लिये न ठहरें। मैं पहले भी लिख चुकी हूँ कि, मैं बादशाहके साथ आऊँगी।"

माणिकलालने चिट्ठी देखतेही दूकान उठा दी और उदयपुरकी राह ली। उस समय कुछ कुछ अँधेरा था। आस्मानमें दो चार तारे टिम टिमा रहे थे। लेकिन सुबहकी सफेदी अपना अधिकार जमानेकी चेष्टा कर रही थी। दिल्लीमें बहुतसे दरवाज़े थे। उदयपुर अथवा रूपनगर जानेवालोंको अजमेरी दरवाज़ेसे बाहर निकलना होता था। अजमेरी दरवाज़ेसे निकलनेमें कोई कुछ सन्देह न करे, इस ख्यालसे उन्होंने अजमेरी दरवाज़ा छोड़कर दूसरे दरवाज़ेसे यात्रा की। दरवाज़े बाहर जातेही, उन्हें बायें हाथकी ओर एक क़ब्रस्तान मिला। वहाँ दो आदमी एक क़ब्रसे एक मुर्देको निकाल रहे थे। माणिकलाल को दूरसे अपनी ओर आता हुआ देखकर फौरन ही नौ दो हो गये। माणिकलालने लाश उलट पुलटकर देखी जाँची और अपने घोड़े पर लाद ली। कुछ दूर चलने पर एक छायादार स्थानमें लाश उतारी। अपना सफ़री बटुआ खोलकर एक शीशी निकाली। उसमेंसे चन्द बूँदें उसके मुँहमें टपका दीं, कुछ उसकी आँखों और चेहरे पर मल दीं। उन्होंने पाँच पाँच मिनटके अन्तरसे यह काम तीन बार किया। तीसरी

वार दवा लगाने खिलानेके तीन चार मिनट बादही मुर्देने साँस ली और कुछ चण बाद हाथ पैर हिलाने लगा। माणिकलाल किसी पासके गाँवसे एक लोटा दूध पहलेही ले आये थे। ज्योंही मुबारकको होश हुआ, उन्होंने थोड़ा सा गर्म दूध उसके मुँहमें डाल दिया। दूधके पहुँचतेही उसमें कुछ बल आया। उसने अच्छी तरह आँख खोलकर चारों तरफ़ देखा। हर तरफ़ जङ्गलही जङ्गल नज़र आया। उसको सारी बातें याद आ गयीं। माणिकलालको सामने पाकर बोला—"मुझे किसने बचाया है? आपने"?

माणिकलाल बोले—"हाँ।"

मुबारकअली बोले—"आपने मुझे क्यों बचाया? मैं आपको पहचानता हूँ। आपके साथ रूपनगरके पहाड़ पर युद्ध किया था। आपने ही मुझे शिकस्त दी थी।"

माणिकलाल—मैंने भी आपको पहचान लिया है, आपनेही महाराणा राजसिंहको पराजय किया था, आपका यह हाल कैसे हुआ?

मुबारक—यह बात इस समय कहनेको नहीं है। किसी और समय कहूँगा। आप कहाँ जा रहे हैं— उदयपुर?

माणिक—हाँ

मुबारक—मुझे भी साथ लेते चलेंगे? शायद आप

इस बातको न जानते होंगे कि, मैं अब दिल्ली लौटकर नहीं जा सकता, मैं राज दण्डसे दण्डित हूँ।

माणिक—संग ले जा सकता हूँ, किन्तु इस समय आप बहुतही कमज़ोर हैं।

मुबारक—शाम तक ताक़त आजायगी। क्या तब तक आप यहीं ठहर सकेंगे?

माणिक—हाँ, ठहर सकूँगा।

माणिकलालने मुबारकको और थोड़ा दूध पिलाया और गाँवसे एक घोड़ा ख़रीद लाये। उस पर उसे चढ़ाकर उदयपुरकी ओर रवान: हो गये।

रास्तेमें चलते चलते घोड़ा पास लाकर मुबारक अलीने ज़ेब-उन्निसाकी सारी कहानी कह सुनायी। माणिकलालको मालुम हो गया कि, मुबारकअली ज़ेब-उन्निसाके कोपानलमें भस्म हुए हैं।

इधर मुहनुद्दोनने ज़ेब-उन्निसासे आकर कह दिया कि, बहुत कुछ तदबीर करने पर भी वह नहीं जिये।

ज़ेब-उन्निसा फिर रोने लगी। उसने पत्थरसे, किसानकी लड़कीकी तरह, अपना सिर कूट लिया। जो दुःख दूसरेके सामने प्रकाश कर दिया जाता है वह हल्का हो जाता है; लेकिन जो दुःख दूसरेसे नहीं कहा जा सकता, वह बहुतही कष्ट देता है।

इधर मुबारककी बीबी दरियाने जब मुबारक अलीके

मरनेका समाचार सुना, तो वह मनमें ज़ेब-उन्निसाको धिक्कारने लगी। कुछ दिनों तक तो रोती पीटती रही; पीछे एक दम निराश होकर पागल सी हो गयी।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

युद्ध का उद्योग।

जिस दिन औरङ्गज़ेबने सुना कि, रूपनगर की राजकुमारीको महाराणा ले गये और मेरी सेना उनसे हार खाकर वापिस आ रही है, उसी दिनसे उसकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। इसके पीछे महाराणाकी चिट्ठीने तो जलती आगमें घी का काम कर दिया। औरङ्गज़ेबको न रातको नींद आती थी न दिनको कल पड़ती थी। अहर्निशि मेवाड़के नाश करनेकी चेष्टाही उसका एक मात्र उद्योग था। उसे जो चढ़ाई करनेमें इतनी देर हुई, उसका कारण युद्धका भयङ्कर उद्योग था। महाभारतमें जैसा उद्योग कौरव पाण्डवोंने किया था वैसाही उद्योग आलमगीरने किया। जहाँ जहाँ

उसका राज्य था वहाँ वहाँ की सारी सेना उसने बुलवा ली। उसका बड़ा पुत्र शाह आलम दक्खनी फ़ौज लेकर चल पड़ा। मँझला आज़मशाह बङ्गालकी कट्टर सेना लेकर रवान: हो गया। छोटे पुत्र अकबरशाहने काश्मीर और पञ्जाबकी सेना लेकर कूँच कर दिया। दिल्लीसे स्वयं बादशाह अजेय सेना लेकर, उदयपुरका नाम़ही पृथ्वीसे मिटा देनेके लिये, चल पड़े। जिस तरह समुद्रमें ऊँचे पर्वतकी चोटी शोभायमान लगती है; उसी तरह अनन्त मुगल-सेना सागरके बीचमें उदयपुर शोभा पाने लगा।

अनन्त साँपोंके बीचमें घिरकर गरुड़ जितना भय-भीत होता है, राजसिंह भी इस मुग़ल-सेनाको देखकर उतनेही भयभीत हुए थे। भारतमें, कुरुक्षेत्रके युद्धके बाद फिर कभी ऐसी युद्धकी तय्यारियाँ हुईं या नहीं, कह नहीं सकते। चीन, ईरानके फ़तह करनेके लिये भी जितनी सेनाकी जरूरत न होती, उतनीही सेना औरङ्गज़ेबने छोटेसे राज्य मेवाड़के नाश करनेके लिये चारों ओरसे इकट्ठी की। एक बार पृथ्वी पर ऐसी घटना और भी हो चुकी है। जिस ज़मानेमें पारसका राज्य बढ़ा चढ़ा हुआ था, उस समय पारस अधिपति ज़रक्ससने पचास लाख सेना लेकर ग्रीस नामक छोटेसे राज्य पर चढ़ाई की थी। ग्रीसके वीरोंने उसका गर्व्व खर्व्व करके उसे भगा दिया। इस बार ज़रक्ससे भी

ज़बरदस्त आलमगीर बादशाहने कई लाख फ़ौज लेकर राजपूतानेके एक छोटेसे राज्य पर चढ़ाई की। अब हम यह लिखेंगे कि महाराणा राजसिंहने क्या किया?

चारों ओरसे औरङ्ग़ज़ेबकी महासेनाके आनेकी ख़बर पाकर राजसिंहने पहलेही वह काम किया जो एक युद्ध-विद्या विशारदको करना चाहिये। उन्होंने पहाड़ोंके आगेकी समतल भूमि छोड़ दी और पहाड़ों पर अपनी सेना संस्थापित कर दी। उन्होंने अपनी सेनाके तीन भाग किये। एक भाग उन्होंने अपने पुत्र जयसिंहके आधीन पर्व्वत-शिखर पर संस्थापित कर दिया। दूसरा भाग अपने दूसरे पुत्र भीमसिंहके आधीन पश्चिम ओर संस्थापित कर दिया। इधर तीन राहें खुली हुई थीं। तीसरे भागका नेतृत्व अपने हाथमें लेकर 'नयन' नामक गिरि-सङ्कट पर बैठ गये।

आज़मशाह अपनी सेना लेकर उसी स्थान पर पहुँच गये। मगर पर्व्वत-मालाने उनकी राह रोक दी। पहाड़ पर उनकी सेना चढ़ न सकती थी; क्योंकि ऊपरसे गोला गोली और पत्थर-वृष्टि होनेका भय था। जिस तरह बन्द घरके द्वार पर कुत्ता धक्का मारता है, लेकिन दरवाज़ा खोल नहीं सकता; उसी तरह वह भी पहाड़ी दरवाज़ेको ठेलने लगे—लेकिन कुछ कर न सके।

औरङ्ग़ेबके साथ अजमेरमें अकबर मिल गये। पिता पुत्र दोनोंही अपनी अपनी फ़ौजें मिलाकर उस स्थान पर आये, जिधर तीन राहें खुली हुईं थीं। उनमेंसे एकका नाम 'दोवारि'; दूसरीका नाम 'मयलवारा' और तीसरी का नाम 'नयन' था। दोवारि नामक राह पर पहुँच कर, औरङ्ग़ेबने अकबरको पचास हज़ार फ़ौज लेकर आगे बढ़नेको अनुमति दी और आप उदयसागर नामक तालाबके किनारे तम्बू डेरे लगवाकर कुछ आराम करनेको ठहर गया।

शाहज़ादा अकबर, पहाड़ी राह तय करके, उदयपुरमें घुसने लगा। किसीने भी उसकी राह न रोकी। वहाँ पहुँच कर उसने महल, मकान, बाग़, बग़ीचे, तालाब वग़ैरः सब कुछ देखे; किन्तु मनुष्यका नाम भी न देखा। सब जगह सन्नाटा छा रहा था। अकबरने तम्बू डेरे गाढ़े जानेका हुक्म दिया और मनमें कहने लगा—"इस देशके लोग हमारी फ़ौजके खौफ़से भाग गये हैं।" मुग़ल-सेनामें आमोद-प्रमोद होने लगा। कोई खाने लगा, कोई खेल तमाशा करने लगा, कोई नाच गाना देखने लगा, कोई नमाज़ पढ़नेमें लग गया और कोई थकानके मारे सो गया। ऐसेही समयमें, जिस तरह सोते हुए मुसाफ़िर पर बाघ आ टूटता है उसी तरह राजकुमार जयसिंह शाहज़ादे अकबर पर आ टूटे। जयसिंह रूपी

बाघने सारी मुग़ल-सेनाको अपनी डाढ़ोंमें दबा लिया—प्राय कोई भी न बचा। पचास हजार मुग़ल-सेनामें से बहुत थोड़े लोग जान लेकर भागनेमें समर्थ हुए। शाह-ज़ादा गुजरातकी तरफ़ भाग गया।

शाहज़ादा मुअज्ज़म, जिसका उपनाम शाह आलम था, दक्खनसे फ़ौज लेकर अहमदाबाद होता हुआ पश्चिम प्रान्तमें आकर डट गया। उस राह पर 'गुण-राओ' नामक पहाड़ी राह थी। उस राहको पार करके, उसने कांकरौलीके पासके सरोवर और राजमहलके सामने ज़रा विश्राम लिया। राह देखने वालोंने ख़बर दी, कि आगे राह नहीं है। राह तय्यार करके आगे बढ़ना कठिन है। अगर राह बनाकर आगे चलेंगे-तो राजपूत पीछेकी राह बन्द करदेंगे—रसद आनेका उपाय न रहेगा—रसद न मिलनेसे बे-मौत मरना पड़ेगा। शाह आलम युद्ध-विद्या जानते थे; इसीसे आगे न बढ़े।

राजसिंहके रण-पाण्डित्यसे दक्खन और बङ्गालकी सेना कुछ भी न कर सकीं। पञ्जाबी फ़ौज झाड़के ऊपरकी धूलकी तरह न जाने कहाँ उड़ गयी। अब केवल स्वयं बादशाह—दुनियाके बादशाह आलमगीर रह गये।

सोलहवाँ परिच्छेद।

बादशाह पर अनङ्ग का प्रभाव।
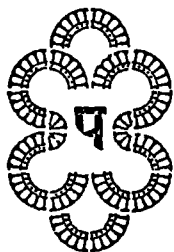
पहिले लिख आये हैं कि, शाहज़ादे अकबरको आगे भेजकर औरङ्गज़ेब उदयसागरके तटपर ठहर गया। वहीं एक तम्बूओं की नगरी खड़ी हो गयी। दिल्लीमें जिस तरह शाहीमहल, गली, मुहल्ले, बाज़ार और शहरपनाह थी; वैसेही यहाँ भी सब तय्यार हो गये। बीचमें बादशाही तम्बू, बग़लमें बेगमोंके तम्बू, कुछ दूर हटकर अमीर उमरावोंके तम्बू गड़ गये। बहुत लिखनेसे क्या, उदयसागरके तीर पर कपड़ोंकी एक नयी दिल्ली खड़ी हो गयी।

बादशाहके साथ, सदाके दस्तूरके माफ़िक़, इस बार भी सभी बेगमें आयी थीं। जोधपुरी, उदयपुरी, ज़ेबउन्निसा आदि सभी आयी थीं। जोधपुरीके साथ निर्मलकुमारी भी आयी थी। दिल्लीके रङ्गमहलमें जिस भाँति प्रत्येक बेगमका जुदा महल था; उसी तरह यहाँ भी हरेकके लिये जुदे जुदे महल तय्यार हुए।

आजके दिन औरङ्गज़ेब जोधपुरीके महलमें आकर हँसी दिल्लगीकी बातें कर रहा था। उस समय वहाँ

निर्मल कुमारी भी मौजूद थी। "इमलि बेगम" कह कर औरङ्ज़ेबने निर्मलको पुकारा। आजके पहले बादशाह उसे "निम्लि बेगम" कहकर बुलाया करता था; लेकिन 'निम्लि' कहनेमें भी कुछ कष्ट होता था; इसलिये आजसे उसे "इम्लि बेगम" कहने लग गया। बादशाह बोला—"इम्लि बेगम! तुम हमारी हो या राजपूत की?" निर्मल हाथ जोड़कर बोली—"आप दुनियाके बादशाह हैं, आप दुनियाका विचार करते हैं, इस बातका विचार भी आपही कीजिये।"

औरङ्ज़ेब—मेरे विचारमें तो यही आता है कि, तुम राजपूतकी लड़की हो, राजपूतही तुम्हारा स्वामी है, राजपूत-महिषीकी ही तुम सखी हो—अतः तुम राजपूतकी ही हो।

निर्मल—जहाँपनाह! यह विचार क्या ठीक हुआ? मैं राजपूतकी लड़की हूँ, किन्तु हज़रत जोधपुरी बेगम भी तो राजपूत की ही लड़की हैं। आपकी पितामही और प्रपितामही भी तो राजपूतोंकी ही लड़कियाँ थीं। वे क्या मुग़ल बादशाहोंकी हितैषिणी नहीं थीं।

औरङ्ग—वह मुग़ल बादशाहोंकी बेगम थीं, तुम तो राजपूतकी स्त्री हो।

निर्मल—(हँसकर) मैं शाहनशाह आलमगीरकी इम्लि बेगम हूँ।

औरङ्ग—तुम रूपनगरीकी सखी हो ।

निर्मल—जोधपुरी की भी तो हूँ ।

औरङ्ग—तब तुम मेरी हो ?

निर्मल—आप जैसी विवेचना करें ।

औरङ्ग—मैं तुमको एक काम पर मुक़र्रर किया चाहता हूँ । उससे मेरी भलाई और राजसिंहकी बुराई होगी । क्या तुम उस कामको करोगी ?

निर्मल—पहिले काम बताइये । काम जाने बिना, कुछ भी नहीं कह सकती । मैं किसी देवता ब्राह्मणका अनिष्ट न कर सकूँगी ।

औरङ्ग—मैं तुमसे वह सब काम कराना नहीं चाहता । मैं उदयपुर दख़ल करूँगा—राजसिंहकी राजपुरी दख़ल करूँगा । इन सब बातोंमें मुझे ज़रा भी शक नहीं है ; किन्तु राजपुरी दख़ल कर लेने पर भी रूपनगरीको अपने हस्तगत कर सकूँगा कि नहीं, इसमें सन्देह है ।

निर्मल—मैं आपके सामने गङ्गा यमुनाकी क़सम खाकर कहती हूँ कि, अगर आप उदयपुरकी राजपुरी दख़ल कर लेंगे, तो मैं चञ्चलकुमारीको आपके हाथमें समर्पण कर दूँगी ।

औरङ्ग—मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करता हूँ । तुम जानती हो कि, जो मेरे साथ धोखेबाज़ी करे, उसे

मैं टुकड़े टुकड़े कराकर कुत्तोंको खिला सकता हूँ।

निर्मल—निस्सन्देह, आप जो चाहें वही कर सकते हैं। लेकिन ये बातें तो पहले हो चुकी हैं। मैं क़सम खाकर कहती हूँ कि, मैं आपके साथ धोखेबाज़ी न करूँगी। लेकिन मुझे इस बातका सन्देह है कि, आपके राजपुरी अधिकार करलेने पर भी मैं उसे जीती पाऊँगी कि नहीं। राजपूत-स्त्रियोंकी यह रीति है कि, दुश्मनके हाथमें जानेसे पहिले चितामें जलकर मर जाती हैं। मैं उसे जीती न पाऊँगी, यह समझ कर ही आपकी बात स्वीकार करती हूँ; अन्यथा मेरे द्वारा चञ्चलका ज़रा भी अनिष्ट नहीं हो सकता।

औरङ्ग—इसमें अनिष्टकी कौन बात है? वह तो बादशाहकी बेगम हो जायगी।

निर्मल जवाब देने ही वाली थी कि, इतनेमें खोजेने आकर निवेदन किया—"पेशकार दरबारमें हाज़िर है। ज़रूरी अर्ज़ी पेश करनी है। हज़रत शाहज़ादे अकबर साहबका सम्वाद आया है।"

औरङ्गज़ेब शीघ्रही दरबारमें गया। पेशकारने अर्ज़ी पेश की। औरङ्गज़ेबने सुना कि, अकबरकी पचास हजार सेना छिन्न-भिन्न होकर प्राय सभी मारी गयी। जो बचे सो न जाने कहाँ भाग गये।

औरङ्गज़ेबने उसी समय तम्बू उखाड़नेका हुक्म दिया।

अकबरकी खबर रङ्गमहलमें भी पहुँच गयी। सुन कर निर्मलने पिशवाज पहन लिया और द्वार बन्द करके जोधपुरीको रूपनगरी नाचका नमूना दिखाया।

पीछे पिशवाज वगैरः उतारकर, निर्मल भली मानुष बनकर बैठ गयी। बादशाहने उसे बुलवाया। निर्मल के हाजिर होने पर बादशाह बोला—"हमारे डेरे उखड़ते हैं—लड़ाई पर जाना होगा—क्या तुम इस समय उदयपुर जाना चाहती हो?"

निर्मल—नहीं, इस समय मैं फ़ौजके साथ चलूँगी। चलते चलते जहाँ मुझे सुविधा मालुम होगी वहींसे चली जाऊँगी।

औरङ्गज़ेब कुछ दुःखित होकर बोला—"क्यों जाओगी?"

निर्मल—शाहन्शाहका हुक्म।

औरङ्गज़ेब कुछ खुश होकर बोला—"यदि मैं तुम्हें न जाने दूँ, तो क्या तुम मेरे रङ्गमहलमें रहनेमें सम्मत होगी?"

निर्मल हाथ जोड़कर बोली—"मेरा स्वामी है।"

औरङ्गज़ेब कुछ इधर उधर करके बोला—"यदि तुम इस्लाम धर्म ग्रहण करो—यदि तुम स्वामी-त्याग करो, तो मैं उदयपुरीकी अपेक्षा तुम्हें अधिक मानूँगा।"

निर्मल कुछ हँसकर सम्भ्रमके साथ बोली—"यह काम मुझसे न हो सकेगी, जहाँपनाह!"

औरङ्गज़ेब—क्यों न हो सकेगी? कितनीही राजपूत कन्याएँ मुग़लके घरमें आ चुकी हैं।

निर्मल—उनमेंसे कोई भी अपने स्वामीको छोड़कर नहीं आयी है।

औरङ्ग—यदि तुम्हारा स्वामी न होता, तो क्या तुम आ जातीं?

निर्मल—यह बात क्यों?

औरङ्ग—इस बातके कहनेमें मुझे शर्म मालुम होती है। मैंने ऐसी बात कभी किसीसे नहीं कही। मैं बूढ़ा होने पर आ गया, लेकिन मैंने कभी किसीको, आजके पहले, चाह की नज़रसे नहीं देखा। इस जन्ममें केवल तुमको ही प्यार किया है। अगर तुम्हारा स्वामी न होता, तो तुम मेरी बेगम हो जातीं। तुम्हारे बेगम होनेसे, मेरा यह स्नेह-शून्य-हृदय—दग्ध पाषाणवत हृदय—कुछ शीतल हो जाता।

निर्मलको औरङ्ग़ज़ेबकी बातों पर विश्वास होगया; क्योंकि उसका कण्ठ-स्वर इस समय विश्वास-योग्य मालुम होता था। निर्मल औरङ्ग़ज़ेबके लिये कुछ दुःखित होकर बोली,—"जहाँपनाह! इस बाँदीने ऐसा क्या काम किया है जिससे यह आपके प्रेमके योग्य हुई?"

औरङ्ग—मैं वह बात नहीं कह सकता। तुम सुन्दरी हो, लेकिन सौन्दर्य्य पर मुग्ध होनेकी अवस्था मेरी नहीं है। तुम सुन्दरी होने पर भी उदयपुरीसे अधिक सुन्दर नहीं हो। मैंने तुम्हारे सिवा और किसीसे कभी सत्य बात नहीं सुनी। तुम्हारी बुद्धि-चतुरता और साहस देखकर मैं विस्मित हुआ हूँ। तुम्हीं मेरी उपयुक्त महिषी होने योग्य हो। खैर, कुछ भी हो, आलमगीर बादशाह तुम्हारे सिवाय और किसीके नयन-बाणसे घायल नहीं हुआ—और किसीके कटाक्षसे मोहित नहीं हुआ।

निर्मल—शाहन्शाह! एक रोज़ रूपनगरकी राजकन्याने मुझसे पूछा था,—"तुम किसके साथ विवाह करना चाहती हो?" मैंने कहा—"आलमगीर बादशाहके साथ।" उसने पूछा—"क्यों?" मैंने कहा,—"मैंने बचपनमें बाघ खिलाये और अपने वशीभूत किये थे। मुझे बाघोंके वश करनेमें बड़ा आनन्द मालुम होता था। अब, अगर मैं बादशाहको वशीभूत कर सकूँ, तो मुझे वैसाही आनन्द होगा। मेरे भाग्यसे, जब मैं कँवारी थी आपसे साक्षात न हुआ। अब तो मैंने जिस दीन दरिद्रको वरण कर लिया है, उसीके साथ सुखी हूँ। अब आप मुझे विदा दें।"

औरङ्ग़ज़ेब दुःखित होकर बोला,—"दुनियाका बादशाह होने पर भी कोई सुखी नहीं होता—किसीको

साध नहीं मिटती। इस पृथ्वी पर,केवल तुमको ही मैंने मुहब्बतकी नज़रसे देखा है, किन्तु तुमको पा न सका! तुमसे प्रेम किया है, इसलिये तुम्हें न रोकूँगा—छोड़ दूँगा। तुमको जिस तरह सुख मिलेगा, मैं वही करूँगा। जिससे तुमको दुःख होगा, वह न करूँगा। तुम जाओ। मेरी याद रखना। अगर कभी मुझसे तुम्हारी कोई भलाई हो सके, तो मुझे ख़बर देना। तुम्हारा काम अवश्य करूँगा।"

निर्मल कोर्निश करके बोली,—"अब मेरी केवल एक भिक्षा रह गयी है। जिस समय मैं दोनों पक्षके मङ्गलके लिये आपसे सन्धि करनेको अनुरोध करूँ, उस समय आप मेरी बात पर कान दें।"

औरङ्ग़ज़ेब बोला—"उस बातका विचार उसी समय होगा।"

पीछे निर्मलने औरङ्ग़ज़ेबको अपना शिक्षित कबूतर दिखाया और बोली,—"इस सीखे हुए कबूतरको आप अपने पास रक्खें। जब आप इस दासीको याद करें, तब इस कबूतरको छोड़ दें। इसके ज़रियेसे मैं अपनी अर्ज़ी आप तक पहुँचाऊँगी। अभी तो मैं आपकी फ़ौजके साथ ही रहूँगी। जिस समय मेरा बिदा लेनेका मौक़ा आवे, उस समय बेगम साहिबा मुझे बिदा दे दें, आप उनसे यह बात बोल दीजिये।"

इस बात-चीतके बाद औरङ्गज़ेब अपनी सेनाके सञ्चालनकी व्यवस्था करने लगा। किन्तु उसके मनमें बड़ा विवाद उपस्थित हो गया। निर्मलका सा साहस, निर्मलकी सी चतुराई और निर्मलका सा साफ़ बात कहना, मुग़ल बादशाहने और कभी नहीं देखा था। अगर आज कोई राजा शिवाजी अथवा राजसिंह अथवा शाहज़ादे अकबर या मुअज्ज़म ऐसी दो टूक बातें कहते, तो औरङ्गज़ेबको उनकी ऐसी बातें हरगिज़ बरदाश्त न होतीं। किन्तु रूपवती,युवती,सहायहीना,अबला निर्मलके मुँहसे निकली हुई कड़वी बातें भी बादशाहको मीठी मालूम हुईं। औरङ्गज़ेब प्रेमान्धकी तरह शोकाकुल तो न हुआ, किन्तु कुछ दुःखी ज़रूर हुआ। आज औरङ्गज़ेबके प्रेमशून्य हृदयमें प्रेमका बीज जमा। यह सब इस लिये हुआ कि, बादशाह पर अनङ्गने अपना प्रभाव जमा लिया—अनङ्गके पुष्प-बाणोंके आगे बज्र-हृदय आलमगीरने हार मान ली।
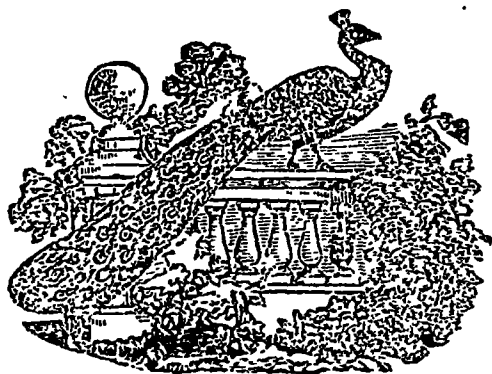
सत्रहवां परिच्छेद।

बादशाह जालमें।

सवेरेही बादशाही फ़ौजका कूँच शुरू हो गया। सबसे आगे सफ़रमैना पल्टन रास्ता साफ़ करनेको अपने हथियार लेकर चल खड़ी हुई। इस फ़ौजके हथियार कुदाल, फावड़े और कुल्हाड़ी वगैर: थे। यह फ़ौज राहके सामने जिन वृक्षोंको पाती थी काटकर दूर फेंक देती थी, ऊँची नीची जमीनको बराबर कर देती थी। मतलब यह कि, यह पथ-परिष्कारक सेना शाही सेनाके लिये राह साफ़ करती चलती थी। इस बनाई हुई राह पर गाड़ियोंमें लद लदकर तोपें चलती थीं ; जिनके घड़ घड़ शब्दके मारे कानों कान बात सुनाई न देती थी। तोपोंके साथ हज़ारों गोलन्दाज़ थे। तोपखानेके पीछे बादशाही खज़ाना था। शाही खज़ाना साथ साथ चलता था; क्योंकि औरङ्गज़ेबको किसीका भी विश्वास नहीं था ; इसीसे वह खज़ानेको किसीके भरोसे दिल्ली न छोड़ आया। औरङ्गज़ेबके शासनका मूलमन्त्र ही "अविश्वास" था। ध्यान रखना चाहिये कि, इस बार बादशाह दिल्लीसे जाकर फिर कभी दिल्ली लौटकर

न गया। पच्चीस बरस तक तम्बू डेरोंमें ही रहकर, अन्तमें, दक्खन देशमेंही उसने प्राण त्याग दिये।

ख़ज़ानेके पीछे बादशाही दफ़्तरख़ाना था। हाथी, गाड़ी और ऊँटोंके ऊपर बही खातोंकी थाकें लगी हुईं थीं। दफ़्तरख़ाना लेकर ऊँट, हाथी और गाड़ियोंकी क़तारकी क़तारें चल रहीं थीं। ख़ज़ानेके पीछे गङ्गाजल लेकर ऊँट चल रहे थे। गङ्गाजलके समान सुपेय जल और नहीं है, इसीसे बादशाहके सङ्ग गङ्गाजल रहता था। जलके पीछे आटा, दाल, घी, चाँवल, चीनी और अनेक प्रकारके पशु पक्षी आदि चलते थे। खाने पीनेके सामान के पीछे तोशाख़ाना था। तोशाख़ानेमें अनेक प्रकारकी पोशाकें और ज़ेवरात थे। इसके पीछे अगणित घुड़-सवार मुग़ल-सेना थी।

यह तो सेनाका पहला भाग था। दूसरे भागमें स्वयं बादशाह थे। आगे आगे ऊँटोंके ऊपर सवार थे, जिनके हाथोंमें जलती हुई आग थी। वे लोग गूगुल, चन्दन कस्तूरी वग़ैरः सुगन्धित पदार्थोंको जलाते चले जाते थे। चारों ओर ऐसी सुगन्ध फैली थी कि पृथ्वी तो पृथ्वी आकाश तक ख़ुशबूही ख़ुशबू होगयी थी। इनके पीछे ख़ास बादशाही बाड़ी गार्ड सेना अस्त्र शस्त्रसे सजी हुई, क़तार बाँधकर चल रही थी। बीचमें बादशाह उच्चैःश्रवा तुल्य घोड़े पर सवार थे। आपके सिर पर सुविख्यात श्वेत छत्र

था। घोड़ेके साज़ बाज़ और छत्रके रत्नोंके मारे जगा-जोत लग रही थी। बादशाहके पीछे रङ्ग महलकी औरतें थीं। कुछ हाथियोंके हौदोंमें सवार थीं, कुछ पाल-कियोंमें चढ़ी हुई थीं। जोधपुरी और निर्मल कुमारी, उदयपुरी और ज़ेब-उन्निसा हाथियोंके हौदोंमें सवार थीं। उदयपुरी हास्यमयी, जोधपुरी अप्रसन्ना, निर्मल-कुमारी रहस्यमयी, ज़ेब उन्निसा ग्रीष्मकालकी उखाड़ी हुई छिन्न भिन्न लताके समान थी।

इस मनोमोहिनी वाहिनीके पीछे कुटुम्बिनी और दासियाँ थीं, सभी घोड़ों पर सवार थीं। उनकी लम्बी लम्बी वेणी और लाल लाल होठ थे। उनका कटाक्ष बिजलीका काम करता था। यह अश्वारोहिणी वाहिनी भी अतिशय लोक-मनोमोहिनी थी। इसके पीछे फिर तोपख़ाना था।

तीसरे भागमें पैदल फ़ौज थी। उसके पीछे दास, दासी, मुटिया, मजूर और नाचनेवाली रण्डियाँ थीं। इन सबके पीछे गाड़ियोंमें तम्बू डेरे लदे हुए चलते थे।

जिस तरह वर्षाकालकी चढ़ी हुई नदी, अपने साथ भयङ्कर मगर घड़ियाल आदि जल-जीवोंको लेकर, रेतीले किनारोंको तोड़ती हुई, छोटे छोटे गाँवोंको डुबा-नेके लिये, तेज़ीसे चलती है; उसी तरह बादशाहके

असंख्य सेना, महा कोलाहल करती हुई, राजसिंहका राज्य डुबानेको चली जाती थी।

किन्तु यकायक फ़ौजकी चाल रुक गई। जिस राहसे अकबर सेना लेकर गया था, उसी राहसे औरङ्ग-ज़ेब भी जा रहा था। औरङ्गज़ेब चाहता था कि,मैं आगे चलकर अकबरकी सेनासे अपनी सेना मिलादूँगा। राहमें, अगर जयसिंहकी सेना मिल जायगी, तो उसे हम दोनों बाप बेटे बीचमें लेकर मार फेंकेंगे और उद-यपुर जाकर राज्य ध्वंस कर डालेंगे। लेकिन पहाड़ी राहपर चढ़नेके पहिले ही उसने सविस्मय देखा कि, राजसिंह पर्व्वतकी उपत्यकामें एक किनारे फ़ौज लेकर बैठे हुए हैं।

नयन नामक जो पहाड़ी तङ्ग रास्ता था, उसे राज-सिंहने पहिलेही रोक दिया था। किन्तु जब एक तेज़ चलनेवाले दूतसे शाहज़ादे अकबरके हारने और भाग जानेकी ख़बर सुनी, तो राजसिंह अपने अपूर्व्व रण-पा-ण्डित्यकी प्रतिभा विकाश करते हुए, अमृत लोभी बाज़ की भाँति, सेना सहित पूर्व्व परिचित पहाड़ी राह तेज़ी के साथ पार करके, इस पहाड़ पर आ डटे।

मुग़ल-बादशाहने देखा, राजसिंहके अद्भुत पाण्डित्य में हम लोगोंका सर्व्वनाश उपस्थित है। क्योंकि जिस राहसे मुग़ल जा रहे थे, उसी राहसे और चलने तथा

राजसिंहको बग़लमें छोड़कर जानेसे बड़ी विपदकी सम्भावना थी। बग़लसे जो हमला करता है, उसे रणसे विमुख करना मुश्किल है। यदि वह विजयी हो जाय, तो विपक्षी सेनाको छिन्न भिन्न कर सकता है। औरङ्ग-ज़ेब भी इस स्वतः सिद्ध रणतत्वको जानते थे। वह यह भी जानते थे कि, बग़लमें बैठे हुए शत्रुसे युद्ध किया जा सकता है; लेकिन ऐसा करनेके लिये अपनी सेनाको फिराकर शत्रुके सम्मुख करना ज़रूरी है। वह मनमें सोचते थे,—"इस पहाड़ी राहपर इतनी बड़ी सेना फिरा-नेको न तो स्थान है और न समय ही है। क्योंकि सेना के घूमते न घूमते राजसिंह पहाड़ से उतर कर सेना के दो खण्ड कर डालेंगे और फिर एक खण्डको सहजमें नाश कर डालेंगे। ऐसे युद्धमें ख़ाली साहस करना अनुचित है। अगर किसी तरह सेना घूम भी सके, राजसिंह युद्ध न करें और हमारी सेना को निर्विघ्न जाने दें,तो और भी अधिक विपदकी सम्भावना है। ऐसा करने से यदि हमारी सेना घूमकर आगे निकल भी जायगी, तो राजसिंह पहाड़ से उतर कर हमारी सेना के पीछे लग लेंगे। पीछे हो लेने से, माल असबाब लूट लेंगे और सेना को विनष्ट कर देंगे। ख़ैर, इस को भी उतनी परवाह नहीं। असल दुःख यह होगा कि, रसद मिलने की राह बन्द हो जायगी। सामने

हो कुमार जयसिंह की सेना है। राजसिंह और जयसिंह दोनों की सेना के बीच में पड़कर, हमारी हालत फन्दे में पड़े हुए चूहे की सी हो जायगी और हम सेना सहित मारे जायँगे।"

साराँश यह कि, दिल्ली के बादशाह की अवस्था इस समय जालमें पड़ी हुई मछली की सी हो रही थी। किसी तरह बचाव नहीं था। बादशाह फिर सोचने लगा —"हम सेना सहित फिर सकते हैं, किन्तु ऐसा करते ही राजसिंह हमारी सेनाके पीछे होलेंगे। हम तो उदय-पुर के राज्यको नेस्तनाबूद करने आये थे, किन्तु अब वह समय आ गया है कि,राजसिंह हमारे पीछे तालियाँ बजावेंगे और दुनिया हँसेगी। आज दुनियाके बादशाह का माथा जगत् के सामने नीचा हो जायगा। खैर, कुछ भी हो, मैं सिंह ही हूँ और राजसिंह चूहा ही है। क्या मैं सिंह होकर भी चूहेके सामने भागूँगा? हरगिज नहीं।"

बादशाह ने बहुत सा तर्क वितर्क करके मनमें निश्चय किया कि,यदि उदयपुर जानेकी और किसी राहका पता लग जाय तो काम बन जाय। उसने राहका पता लगानेके लिये पैदल और सवार छोड़े। साथही निर्मल कुमारी से भी पुछवाया। निर्मलने कहला भेजा,"मैं पर्दानशीन औरत हूँ। रास्तेकी बात मैं क्या जानूँ?" किन्तु थोड़ी

देर बाद ही ख़बर आयी कि, उदयपुर जानेका एक रास्ता और भी है। एक मुग़ल सौदागर मिला है। उसने रास्ता बताया है। एक मनसबदार उस रास्ते को देख भी आया है। वह रास्ता पहाड़के भीतर होकर गया है। राह अँधेरी और निहायत तङ्ग है। इतना ही अच्छा है कि, राह सीधी है; इससे सेना शीघ्र ही बाहर निकल जायगी। उधर कोई राजपूत भी नज़र नहीं आता। जिस मुग़ल सौदागरने यह राह बतायी है वह कहता है कि, उधर राजपूत-सेना बिलकुल नहीं है।

औरङ्ग़ज़ेब ने मनमें कहा,—"दीखती नहीं है, लेकिन सम्भव है कि कहीं पहाड़ में छिपा दी गयी हो।"

वह मन्सबदार जो राह देख आया था, उसका नाम बख़्त ख़ाँ था। वह बोला,—"जिस मुग़लने मुझे राह बतायी है, मैंने उसे पहाड़ पर भेज दिया है। अगर वह राजपूत-सेना देखेगा, तो हमें इशारा करेगा।"

औरङ्ग़ज़ेब ने पूछा,—"वह क्या हमारा सिपाही है?"

बख़्त ख़ाँ—नहीं, वह एक सौदागर है। उदयपुर शाल बेचने गया था। इस समय माल बेचकर उलटा आ रहा है।

औरङ्गज़ेब—ठीक है, उसी राह से फ़ौज ले चलो। बादशाही हुक्म होते ही फ़ौज फिरने लगी। क्योंकि बिना फिरे, वह उस पहाड़ी तङ्ग राहमें घुस न सकती थी। इस में भी भारी विपद की सम्भावना थी, किन्तु और उपाय ही क्या था? जालमें फँसी हुई बड़ी भारी मछली और किधर जा सकती थी? जिस ढँग से रक्षित होकर मुग़ल सेना आयी थी,अब उस तरह न रह सकी। जो भाग आगे था वह पीछे हो गया और जो पीछे था वह आगे हो गया। सेनाका तीसरा भाग आगे आगे चलने लगा। बादशाह ने हुक्म दिया कि, तम्बू डेरे और फालतू लोग सेनाके पीछे पीछे आवें। वही हुआ भी। औरङ्गज़ेब, छोटी छोटी तोपें और गोलन्दाज़ सेना लेकर, उस पहाड़ी अँधेरी राह में घुसने लगा। आगे आगे बख़्त ख़ाँ था।

यह हाल देखकर, राजसिंह, सिंहके समान छलाँग मार कर, पहाड़ से उतर पड़े और मुग़ल सेनाके बीच में मार करने लगे। जिस भाँति छुरीसे फूल-मालाके दो टुकड़े हो जाते हैं; उसी भाँति मुग़ल-सेनाके दो खण्ड हो गये। एक भाग तो औरङ्ग़ज़ेब के साथ उस पहाड़ी में घुस गया और एक भाग अपनी पहली राहपर ही राजसिंहके सामने रह गया।

मुग़ल बादशाह पर इस समय विपद पर विपद पड़

रही थी। जिस जगह हाथी, घोड़ों और डोलों पर बादशाही स्त्रियाँ थीं, ठीक उसी जगह, स्त्रियोंके सामने ही, राजसिंह सेना सहित पहाड़ से उतरे। जिस तरह ऊपर से चील के पड़ने से चिड़ियाएँ चाँ चाँ करने लगती हैं अथवा ससैन्य गरुड़को आते देखकर काले सर्पों के दल को जो दशा होती है, इस समय बादशाही स्त्रियों को भी वही दशा हो गयी। स्त्रियों के साथ जो सैनिक पहरे पर थे कुछ भी न बोले, किसी ने हथियार भी न उठाया। राजपूतों ने विना युद्ध किये ही, उन्हें क़ैद कर लिया। सारी बेगमें और उनकी असंख्य घुड़-संवार अनुचरियाँ राजसिंह की बन्दिनी हो गयीं।

माणिकलाल राजसिंहके पास ही रहते थे; क्योंकि आजकल वह उनके मुख्य प्रिय पात्र थे। माणिकलाल ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराजाधिराज! इस समय इस मार्ज्जारी सम्प्रदाय का क्या किया जाय? यदि आज्ञा हो तो दही दूध खानेके लिये इन्हें उदयपुर भेज दूँ।"

राजसिंह हँस कर बोले, "उदयपुर में इतना दूध दही नहीं है। सुना है, दिल्लीकी मार्ज्जारियों का पेट बहुत बड़ा होता है। केवल उदयपुरीको महिषी चञ्चल-कुमारी के पास भेज दो। उन्होंने इसके लिये मुझसे बहुत ज़ोर देकर कहा था। औरङ्गज़ेबका और सब धन औरङ्गज़ेबको लौटा दो।"

माणिकलाल हाथ जोड़कर बोला, "लूट का कुछ माल सैनिकोंको दे दिया जाय तो ठीक हो।"

राजसिंह हँसते हँसते बोले, "तुम जिसे चाहो ले लो। किन्तु हिन्दू मुसल्मानी स्त्री को छू नहीं सकता।"

माणिकलाल—वह लोग नाचना गाना जानती हैं।

राजसिंह—नाचने गानेमें मन लगाने से क्या राजपूत लोग तुम्हारी भाँति वीरत्व दिखा सकेंगे? सबको छोड़ दो। केवल उदयपुरी को उदयपुर भेज दो।

माणिकलाल—इस समुद्र में से उस रत्नको ढूँढकर कैसे निकाल सकता हूँ? मैं तो उसे पहचानता भी नहीं। यदि आज्ञा हो, तो हनुमान जी की तरह इस गन्धमादन को ले जाकर महिषी के पास उपस्थित कर दूँ। वह स्वयँ छाँट लेंगी। जिसको रखना होगा उसे रक्खेंगी, बाक़ी सबको छोड़ देंगी। जो छोड़ दी जायँगी, वह उदयपुरके बाज़ारमें मिस्सी सुर्मा बेचकर दिन काट लेंगी।

इसी समय महागज की पीठ से निर्मल कुमारी ने राजसिंह और माणिकलाल को देखा। उसने दोनों हाथ ऊँचे करके दोनों को प्रणाम किया। देखकर, राजसिंह ने माणिकलाल से पूछा, "वह और कौन बेगम है? मालुम तो हिन्दू होती है, क्योंकि सलाम न करके हम लोगों को प्रणाम करती है।"

माणिकलाल देखकर ज़ोर से हँसे और बोले, "महाराज! वह एक बाँदी है—बेगम किस तरह बन गयी? उसको पकड़ कर लाना होगा।"

यह बात कहकर, माणिकलाल निर्मल को हाथी से उतारकर अपने पास ले आये। निर्मल कोई बात तो न बोली, किन्तु हँसने लगी। माणिकलाल ने पूछा, "यह क्या है? तुम कब से बेगम हुईं?"

निर्मल मुँह आँख चलाकर बोली, "मेरा नाम हज़रत इमलि बेगम है, तसलीम दो।"

माणिकलाल—देता हूँ—तुम तो बेगम नहीं जान पड़तीं—तुम्हारे बाप दादा भी कभी बेगम हुए थे? यह भेष क्यों बनाया है?

निर्मल—पहले मेरे हुक्म पर अमल करो; पीछे बात बनाओ।

माणिकलाल—सीताराम! सीताराम! बेगम साहिबा को धमकी तो देखो।

निर्मल—हमारा हुक्म है कि, हज़रत उदयपुरी बेगम साहिबा सामनेके पाँच कलशदार हौदेमें तशरीफ़ रखती हैं, उनको हमारे हुजूर में हाज़िर करो।

कहते देर न हुई थी—माणिकलाल ने उसी समय उदयपुरी को हाथी से उतरने को कहा। उदयपुरी मुँह को घूँघट से ढँककर रोती रोती नीचे

उतरी। माणिकलाल एक डोला खाली कराकर उदय-पुरीके पास लेगये और उसे उसपर चढ़ाकर ले आये। इसके बाद माणिकलाल निर्मल के कान के पास मुँह लेजाकर बोले—"जी इमली बेगम साहिबा! और कुछ फ़रमाइये।"

निर्मल—चुप रह, बदतमीज़! मेरा नाम हज़रत इमलि बेगम साहिबा है।

माणिकलाल—अच्छा, बेगम ही सही। ज़ेब-उन्निसा बेगम को जानती हो?

निर्मल—क्यों नहीं जानती? वह तो हमारी बेटी ही लगती है। देख, आगे तीन कलश जिस हौदे पर शोभायमान हैं, उसी पर ज़ेब-उन्निसा बैठी है।

माणिकलाल उसे भी हाथी से उतार, डोले में बैठा-कर ले आये।

उसी समय और एक बेगम ने भी, हौदेका जरी का पर्दा उठाकर, निर्मलको आवाज़ दी। माणिकलालने निर्मल से कहा, "देखो, तुम्हें कौन बुलाती है?"

निर्मल देख कर बोली, "हाँ, जोधपुरी बेगम हैं। किन्तु उनको इस समय इधर मत लाओ। मुझे हाथी पर चढ़ा कर उनके पास ले चलो। सुन आऊँ, क्या कहती हैं।"

माणिकलाल ने निर्मल का कहना पूरा किया।

निर्मल कुमारी जोधपुरी के हाथी पर चढ़ गयी, जोधपुरी बोली—"मुझे अपने सङ्ग ले चल।"

निर्मल—क्यों मा ?

जोधपुरी—यह बात तो मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूँ। मैं इस म्लेच्छपुरी में और नहीं रह सकती।

निर्मल—यह नहीं हो सकता। तुम्हारा चलना नहीं होगा। यदि आज मुग़ल साम्राज्य टिक गया, तो तुम्हारा लड़का ही दिल्ली का बादशाह होगा। मैं वही काम करूँगी, जिससे आप सुख पावें।

जोधपुरी—ऐसी बात ज़बान पर मत लाना ; बेटी ! यदि बादशाह सुन लेगा तो मेरा बच्चा एक दिन भी न बच सकेगा। विष से उसके प्राण जायँगे।

निर्मल—मैं कोई बेजा बात नहीं कहती। शाह-ज़ादे का जो हक़ है, वह उसे समय पाकर मिलेगा ही। अब आप मुझे और कोई हुक्म न दें। यदि आप मेरे साथ चलेंगी, तो आपके पुत्र का अनिष्ट होना सम्भव है।

जोधपुरी सोच कर बोली, "यह बात सच है ; अतः मैं तुम्हारी बात मान लेती हूँ। मैं न चलूँगी। तुम जाओ।"

निर्मल कुमारी ने उनको प्रणाम करके विदा ली।

उदयपुरी और ज़ेब-उन्निसा उपयुक्त पहरे में घेरकर

निर्मल सहित चञ्चलकुमारी के पास उदयपुर भेज दी गयीं।

अठारहवाँ परिच्छेद।

मुबारककी मरणेच्छा।
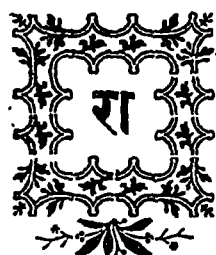
राजसिंह ने शेष बादशाही औरतों को, जिस पहाड़ी अँधेरी राह में औरङ्गजेब गया था, जाने दिया। उन सबके उस में घुस जाने पर, दोनों सेनाएँ निस्तब्ध हो गयीं। औरङ्गज़ेब की सेना आगे नहीं बढ़ सकती थी—क्योंकि राजसिंह राह बन्द करके बैठे हुए थे। किन्तु औरङ्गजेब की सागर समान अश्वारोही सेना युद्ध का उद्योग करने लगी। मुग़ल सवार घोड़ोंके मुँह फिरा कर राजपूतों के सामने होगये। उस समय राजसिंह ने कुछ हट कर उनकी राह छोड़ दी—उनके साथ युद्ध न किया। वे लोग "दीन दीन" करते हुए जिधर बादशाह गया था उधर ही चल पड़े। राजसिंह और आगे सरक गये।

शाही घुड़सवारों के आगे बढ़ते ही तोशाखाना आकर खड़ा होगया। उसके साथ जो रखवाले थे, वे नहीं के समान थे। राजपूतों ने उसे लूट लिया। उसके पीछे खाने की सामग्री थी। उसमें से जो हिन्दू के व्यवहार में आने लायक़ चीज़ें थी, वह राजसिंह की रसद में मिला ली गयीं। जो चीज़ें हिन्दूके खाने योग्य नहीं थीं उन्हें डोम दास आदि ले गये। उनसे जो खाते बना खाया, शेष पहाड़ पर फेंक दिया। पहाड़ पर पड़ी हुई सामग्री को स्यार कुत्ते आदि बनैले पशु खागये। राजपूतों ने दफ़तर ख़ाना हाथी से उतार लिया। अनेक काग़ज़ात जला दिये, अनेक इधर उधर फेंक दिये। इसके पीछे मालखाना थां; उस पर जैसे धन रत्न थे वैसे इस पृथ्वी पर और जगह नहीं थे। राजपूत उस धन और रत्न-राशि को देख कर लोभ से पागल होगये। उसके पीछे गोलन्दाज़ सेना थी। राजसिंह अपनी सेना संयत करके बोले, "तुम लोग व्यस्त मत हो, यह सब तुम्हारा ही है। आज छोड़ दो, आज इस समय युद्ध की ज़रूरत नहीं है।" राजसिंह निश्चेष्ट होकर बैठे रहे। औरङ्गज़ेब की सारी सेना उसी अन्धेरी पहाड़ी राह में घुस गयी।

राजसिंह माणिकलाल को अलग ले जाकर बोले, "मैं उस मुग़ल से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। मैंने जो चाहा

था,वही होगया। अब मैं बिना युद्ध किये मुग़ल का नाश कर सकता हूँ। मुबारक को मेरे पास ले आओ। मैं उसका सन्मान करूँगा।"

पाठकों को याद होगा, मुबारक माणिकलाल के हाथ से जीवन दान पाकर उनके साथ उदयपुर आये थे। राजसिंह उनके वीरत्व को जानते थे, इसीसे उनको अपनी सेना में उपयुक्त पद पर नियुक्त कर दिया था; किन्तु मुग़ल समझकर उनका पूरा पूरा विश्वास न करते थे; इससे मुबारक कुछ दुःखित रहते थे। आज उसी दुःख से एक बड़े भारी कामका भार उन्होंने अपने सिर लिया था। वह भारी काम जिस तरह सिद्ध हुआ, उसे हमारे पाठकों ने देखा है। पाठक समझ गये होंगे कि, मुग़ल सौदागर के भेष में मुबारक अली ही थे।

माणिकलाल आज्ञा पाते ही मुबारक को ले आये। राजसिंह ने मुबारक की बहुत ही प्रशँसा की। बोले, "अगर तुम ऐसा साहस और चातुर्य्य न प्रकाश करते, अगर तुम मुग़ल सौदागर बनकर औरङ्ग़ज़ेब की सेनाको उस अन्धेरी पहाड़ी राहमें न ले जाते; तो आज अनेक प्राणि-हत्याएँ होतीं। यदि तुम्हें कोई पहचान जाता, तो तुमपर भी बड़ी भारी विपद् आती।"

मुबारक बोला, "महाराज! जो आदमी सब के सामने मर गया, जिसे सब के सामने मिट्टी दे दी गयी,

उसे कोई चीन्ह सकने पर भी नहीं चीन्ह सकता। देखनेवाले के मन में भ्रम होगा, यह समझ कर ही मैं वहाँ गया था।"

राजसिंह बोले, "इस समय यदि हमारा काम सिद्ध न हो, तो उसमें हमारा ही दोष होगा। इस वक्त तुम जो पुरस्कार माँगो, वही दिया जाय।"

मुबारक बोला,—"महाराज! बे-अदबी माफ़ हो, मैंने मुग़ल होकर मुग़ल के राज्य ध्वंस होने का उपाय कर दिया है; मैंने मुसल्मान होकर हिन्दू-राज्य स्थापन का काम किया है; मैंने सत्यवादी होकर मिथ्या प्रवञ्चना की है; मैंने बादशाहका नमक खाकर नमक-हरामी की है। अब मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है। मेरी और किसी पुरस्कार की इच्छा नहीं है। मैं आप से केवल एक पुरस्कार की भिक्षा माँगता हूँ। मुझे तोप के मुँह सामने रखकर उड़ा देने का हुक्म दीजिये। अब मेरी और जीने की इच्छा नहीं है।"

राजसिंह विस्मित होकर बोले, "यदि इस काम में तुमको इतनी तकलीफ़ थी, तो यह काम क्यों किया? मुझसे कहा क्यों नहीं? मैं किसी और को इस काम पर नियुक्त कर देता। मैं किसी का दिल दुखाना पसन्द नहीं करता।"

मुबारक माणिकलाल को बताकर बोले, "इन

महात्माने मुझे जीवन दान किया था, इनका विशेष अनुरोध था, कि मैं यह काम सिद्ध करूँ। मेरे सिवा दूसरेसे यह काम सिद्ध भी न होता; क्योंकि मुग़ल लोग मुग़ल के सिवा हिन्दू का विश्वास न करते। मैं इस काम के अस्वीकार करने से अकृतज्ञता-पाश में पड़ता; इसी से यह काम किया है। मैंने स्थिर कर लिया है कि अब मैं इन प्राणोंको और न रक्खूँगा। मुझे तोपके मुँह उड़ा देने का हुक्म दीजिये, अथवा मुझे बँधवा कर बादशाह के पास भेज दीजिये, अथवा अनुमति दीजिये कि मैं जिस तरह हो सके, मुग़ल सेना में घुस कर आपके साथ युद्ध करके प्राण त्याग करूँ।"

राजसिंह अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बोले, "कल तुम को मुग़ल-सेना में प्रवेश करने की अनुमति दूँगा। और एक दिन ठहरो। अब मुझे तुम से केवल एक बात पूछनी है, औरङ्ग़ज़ेब ने तुम्हें क्यों मराया?"

मुबारक—वह महाराज के सामने कहने की बात नहीं है।

राजसिंह—क्या माणिकलाल से कहोगे?

मुबारक—इन से सब कह दिया है।

राजसिंह—और एक दिन अपेक्षा करो।

यह कह कर, राजसिंह ने मुबारक को बिदा दी। इसके बाद माणिकलाल मुबारकको अलग लेजा-

कर पूछने लगी, "साहिब! अगर आपको मरने की ही इच्छा थी, तो आपने मुझ से शाहजादी के पकड़ लाने का अनुरोध क्यों किया था?"

मुबारकअली ने कहा,—"भूल! सिंहजी, भूल! मैं शाहजादी को लेकर क्या करूँगा? मेरी इच्छा थी कि, उस शैतानीने जो मुझे काले सर्पों से खिलाकर मेरी जान ली थी उस से उसका बदला लेता; किन्तु मनुष्य जिस बात को आज चाहता है, कल उसकी इच्छा नहीं रखता। मैंने इस समय मरने का निश्चय कर लिया है—अब शाहज़ादी प्रतिफल पावे या न पावे, उससे मुझे क्या?"

माणिकलाल—अगर आप ज़ेब-उन्निसा को रखना न चाहें, तो मैं बादशाह से कुछ घूँस लेकर उसे छोड़ दूँ।

मुबारक—उसे एकबार और देखने की इच्छा है। उससे पूछना है कि, जगत् में धर्माधर्म पर तेरा कुछ भी विश्वास है कि नहीं? एकबार सुनने की इच्छा है कि, वह मुझे देख कर क्या करती है?

माणिकलाल—तब आप अब भी उसके प्रति अनुरक्त हैं।

मुबारक—नहीं, बिलकुल नहीं। सिर्फ़ एक बार देखना चाहता हूँ। आप से केवल यही एक मात्र भिक्षा माँगता हूँ।

तीसरा खण्ड ।

पहिला परिच्छेद ।

महा विपद् ।
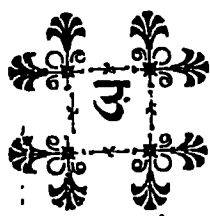
उधर यह हुआ, इधर बादशाह बड़ी आफ़तमें फँस गये । सेना आगे बढ़ न सकी । रन्ध्र-पथके मुँहसे कोई समाचार भी न मिला । सन्ध्याके पहिले ही उस रन्ध्र-पथमें गहरा अन्धकार छा गया । सारी सेनाके साथ मशालोंकी रौशनी की जाने योग्य सामान भी न था । खाली बादशाह और बेगमोंके पास रौशनीका इन्तज़ाम किया गया, और सारी सेना अन्धेरेमें रही । घोड़े आपसमें टक्कर खाने लगे—कितनेही घोड़े सवारों सहित नीचे गिर पड़े ; नीचे गिरे हुए घोड़े और सवार दूसरे घोड़ोंके पैरों तले कुचल गये । हाथियोंके पैरोंके नीचे बड़े बड़े पत्थर चूर्ण होने लगे । हाथी अङ्कुशका भय

त्यागकर इधर उधर दौड़ने लगी। अश्वारोहिणी स्त्रियाँ हाथी घोड़ोंके पैरों तले पड़कर आर्त्तनाद करने लगीं। पालकी ढोनेवालोंके पैर चूर मूर होकर खूनमें लद-फद हो गये। पैदल सेना बहुतही हैरान हो गई। सैकड़ों सिपाहियोंके हाथ पैर निकम्मे हो गये। उस समय औरङ्गज़ेबने, फ़ौजका कूँच बन्द करके, तम्बू गाढ़नेकी आज्ञा दी।

किन्तु तम्बू गाढ़नेको स्थान ही न था। ज्यों त्यों करके किसी तरह बादशाह और बेगमोंके तम्बूओंके लिये स्थान निकाला गया। और किसीको स्थान न मिला, जो जहाँ था वह वहीं रहा। घोड़ेका सवार घोड़े पर, हाथीका सवार हाथी पर—पैदल बेचारा अपने पैरको लिये खड़ा रहा। कोई पहाड़के सानुदेशमें स्थान करके उसपर पाँव लटकाये बैठा रहा। अधिकांश लोगोंको रातभर विश्राम करनेको जगह न मिली।

इस विपद्के साथही और एक विपद यह थी कि, खानेकी सामग्रीका अत्यन्त अभाव था। साथमें जो रसद थी वह राजपूतोंने लूट ली थी। खानेके और सामानकी तो बातही क्या, घोड़ोंको घास तक न थी। सारे दिन मिहनत करके किसीको कुछ भी खानेको न मिला। और तो क्या बादशाह और बेगमोंको भी निराहार और निर्जल रहना पड़ा। न खाने और न

सोनेसे सारी सेना मृत्युप्राय हो गयी। इस समय मुग़ल-सेनाकी बड़ी नाज़ुक हालत थी।

इधर तो यह कष्ट था, उधर बादशाहने उदयपुरी और ज़ेब-उन्निसाके हरण हो जानेका समाचार सुना। बादशाह क्रोधके मारे और भी आगबबूला हो गया। औरङ्ग़ज़ेब सारी सेनाको मरा नहीं सकता था; अन्यथा वह यह काम भी कर डालता। माँदमें क़ैद हुआ शेर, शेरनीको पिंजरेमें देखकर, जिस तरह गर्ज्जना करता है उसी तरह औरंङ्गज़ेब गर्ज्जना करने लगा।

गम्भीर रात्रिमें सेनाका कोलाहल निवृत हो गया। ऐसा मालुम होता था कि, कहीं पहाड़के ऊपर अनेकानेक वृक्षोंके उखाड़नेसे शब्द हो रहा है। किन्तु कोई समझ न सका कि क्या बात है। सभी उसे भौतिक शब्द समझकर चुप मारकर रह गये।

बादशाहने रात तो ज्यों त्यों काटी सवेरे ही सेना और सेनापतियोंको नर्म गर्म कह सुनकर सेना बढ़ानेका हुक्म दिया; लेकिन देखने पर मालुम हुआ कि रन्ध्र-पथ हज़ारों वृक्षोंसे बन्द कर दिया गया है। आदमी तो आदमी कुत्ता बिल्ली भी उसमें होकर नहीं निकल सकता। सैनिक लोग हथेली पर जान लेकर रास्ता साफ़ करने लगे, किन्तु कुछ करते धरते न बना। ऊपरसे राजपूत पत्थर बरसाने लगे। हज़ारों आदमी हताहत हो गये।

तब बादशाहने जिधरसे सेना आई थी उधरही चलनेका हुक्म दिया। दुर्भाग्यकी बात,उधर भी रन्ध्र-पथ वृक्षोंसे बन्दकर दिया गया। इधर जब मुग़ल लोगोंने हाथियोंसे रास्ता साफ़ करानेका उद्योग किया, तो राजसिंहने तोपों द्वारा गोला वृष्टि आरम्भ कर दी। उससे हाथी घोड़े और पैदल एवं सेनापति चूर्ण हो गये। जिस तरह अग्निके भयसे क्रूर साँप कुण्डली मारकर छिपने लगता है; उसी तरह मुग़ल-सेना हटकर उसी रन्ध्र-पथमें घुस गयी। इस समय दिल्लीका बादशाह सेना सहित एक क्षुद्र भुइँहारके सामने पिंजरे में बन्द चूहेके समान था। बादशाहने बहुत कुछ अक्ल लड़ाई, मगर कुछ काम न हुआ।

भारतेश्वरको निर्मलकी याद आई। उसे इस समय उस क्षुद्रा राजपूत-कुल-बाला पर ही कुछ भरोसा हुआ। इस दुस्समयमें बादशाहको वह अबला ही उद्धारकारिणी जँची; इसलिये उसने उसका कबूतर उड़ा दिया।

दूसरा परिच्छेद।

उदयपुरी का अपमान।

निर्मलकुमारी उदयपुरी बेगम और ज़ेब-उन्निसा बेगमको उपयुक्त स्थानमें रखकर, महारानी चञ्चलकुमारीके पास गयी और उसे आद्योपान्त समस्त विवरण सुनाया। सारा हाल सुनकर चञ्चलकुमारीने पहले उदयपुरीको बुलाया। उदयपुरीके आने पर चञ्चलने उसे बैठनेको एक जुदा आसन दिया और आप उसकी इज्ज़त करनेके लिये उठकर खड़ी हो गयी। उदयपुरी चञ्चलकुमारीके पास अत्यन्त विषन्न और विनीत भावसे आयी थी। किन्तु इस समय चञ्चलकुमारीका आदर सत्कार देखकर मनमें कहने लगी—"क्षुद्रप्राण हिन्दू डरके मारे ही इतना शिष्टाचार दिखाते हैं।" बोली—"तुम मुग़लके हाथोंसे क्यों मरनेकी इच्छा करती हो?"

चञ्चलकुमारी कुछ हँसकर बोली,—"हम तो मुग़लसे मृत्यु-कामना नहीं करतीं। तुम्हारा जो ऋण है उसीके चुकानेको तुम्हें बुलाया है। ओ हो! चिलम ठण्डी पड़ गयी। जाओ, बेगम साहिबा! मिहरबानी करके तमाखू तो भर लाओ।"

चञ्चलने पहले जैसा शिष्टाचार दिखाया था, अगर बेगम भी उसके उपयुक्त व्यवहार करती तो चञ्चलकुमारी उसका अपमान न करती। अब तो 'जैसी करनी वैसी भरनी' वाली बात हो गयी। उदयपुरीकी कड़वी बातसे तेजस्विनी चञ्चलके मन में गर्व्व आ गया। उदयपुरीको, चञ्चलकुमारीको भेजी हुई चिट्ठीमें जो तमाखू भरनेके लिये निमन्त्रण था, याद आ गया। सारा शरीर पसीने पसीने हो गया। तथापि अभ्यस्त गर्व्वको फिर हृदयमें स्थापन करके बोली—"बादशाहकी बेगमें तमाखू नहीं भरा करतीं।"

चञ्चलकुमारी—जिस वक्त तुम बादशाहकी बेगम थीं तब तमाखू नहीं भरती थीं। अब तो तुम मेरी बाँदी हो। तमाखू भरो, यही मेरा हुक्म है।

उदयपुरी रोने लगी—दुःखसे नहीं, क्रोधसे—बोली, "तुम्हारी इतनी स्पर्द्धा जो आलमगीर की बेगमको तमाखू भरनेका हुक्म देती हो?"

चञ्चल-मुझे भरोसा है कि, कल आलमगीर बादशाह खुद यहाँ आकर महाराणाकी चिलम भरेगा। यदि उसे तमाखू भरना न आता हो, तो तुम कल उसे सिखा देना। आज तुम सीख लो।

चञ्चलकुमारी ने परिचारिका को आज्ञा दी, "इससे तमाखू भरवा लो।"

उदयपुरी उठी नहीं ।

तब परिचारिका बोली, "चिलम उठाओ ?"

उदयपुरी तोभी न उठी। परिचारिका उसे हाथ पकड़कर उठाने आयी। अपमान होनेके भयसे, दिल्लीके बादशाहकी प्रधाना बेगम चिलम उठाने गयी। चिलम तक पहुँची भी न थी कि, थरथर थरथर काँपने लगी और चक्कर खाकर फ़र्श पर गिर पड़ी। परिचारिकाने उसे सम्हाल लिया, इससे चोट न आयी।

चञ्चलकुमारीकी आज्ञासे कई दासियोंने उसे उठाकर एक बहुत सुन्दर पलँग पर सुला दिया और उसकी सुश्रुषा करने लगीं। गुलाब वग़ैरः के छींटे देनेसे कुछ देरमें उसे होश हो गया। चञ्चलकुमारीने आज्ञा देदी कि कोई किसी प्रकार भी बेगमका अपमान न करे। खाने पीने और सोनेका प्रबन्ध जैसा चञ्चलकुमारीके लिये था,वैसाही उदयपुरीको होगया। चञ्चलने निर्मलसे कह दिया, इसकी परिचर्य्या मुझसे भी अधिक हो की जाय।

निर्मल बोली—वह सब हो जायगा, किन्तु उससे इसकी परितृप्ति न होगी।

चञ्चल—इसे और क्या चाहिये ?

निर्मल—जो इसे चाहिये वह इस राजपुरीमें नहीं मिलेगा।

चञ्चल—शराब? जिस समय उसको दरकार पड़े तब थोड़ा सा गोमूत्र दे देना।

उदयपुरी परिचर्य्यासे सन्तुष्ट हो गयी, किन्तु रातको उपयुक्त समय उपस्थित होने पर उसने निर्मलको बुलाकर नम्रता पूर्व्वक कहा—"इमलि बेगम! थोड़ी सी शराबका हुक्म दीजिये।"

निर्मल—"देती हूँ" कहकर उसने चुपचाप राजवैद्यके पास समाचार भेजा। राजवैद्यने एक बूँद दवाई भेज दी और उपदेश दिया कि कुछ शरबत बनाकर उसमें एक बूँद यही दवा मिलाकर दे देना और कह देना कि यह शराब है। निर्मलने राजवैद्यके कथनानुसार काम किया। उदयपुरी उसे पीकर बहुतही खुश हुई। बोली—"अति उत्कृष्ट मद्य है" उसे पीनेके थोड़ी देर बादही वह गहरी नींदमें गर्क़ हो गयी।

तीसरा परिच्छेद।

हाय मुबारक! मुबारक!

जेब-उन्निसा अकेली बैठी हुई है। दो एक परिचारिकायें उसकी परिचर्य्या कर रही हैं। निर्मलकुमारी भी दो एक दफ़ा उसकी ख़बर लेने गयी थी। ज़ेब-उन्निसा ने उदयपुरी के चिलम भरने की बात सुन ली। सुनते ही उसे अपने लिये भी चिन्ता हुई।

परिशेषमें, निर्मल उसे भी चञ्चल कुमारी के पास ले गयी। वह न तो विनीत न गर्व्वित भाव से चञ्चल के पास जाकर खड़ी हो गयी। मनमें स्थिर किया, मैं आलमगीर बादशाहकी लड़की हूँ, वह इस बातको न भूलेगी।

चञ्चलकुमारी ने अतिशय आदर सम्मान के साथ उसे एक अलग आसन बैठने को दिया और उससे बड़े सौजन्य के साथ नाना प्रकारकी बातें करने लगी। ज़ेब-उन्निसा भी सौजन्यता के साथ उसकी बातों का जवाब देने लगी। आपस में रञ्ज हो, ऐसी बात दोनों ही ने अपनी अपनी ज़बान से न निकाली। अन्तमें चञ्चल कुमारी ने उसकी उपयुक्त परिचर्य्या का हुक्म

दिया और उसे इत्र पान इलायची आदि देकर अपने कमरे में जाने को कहा।

किन्तु ज़ेब-उन्निसा उठी नहीं और बोली, "महारानी! मुझे आपने यहाँ किस लिये मँगवाया है, क्या मैं कुछ सुन सकती हूँ?"

चञ्चल—वह बात आप से कहनी नहीं होगी; किन्तु कहे विना भी न चलेगा। एक दैवज्ञ की आज्ञा से आप यहाँ बुलवायी गयी हैं। आज आप अपने कमरे में अकेली सोना, दरवाज़ा खुला रखना। पहरेवाली अलक्ष्य रूपसे पहरा देंगी। आपका कुछ भी अनिष्ट न होगा। दैवज्ञ ने कहा है, आज रातको आप एक स्वप्न देखेंगी। जो स्वप्न आप आज देखें, उसे कल मुझ से कहें, आप से मेरी यही प्रार्थना है।

सुनकर ज़ेब-उन्निसाने चिन्तित भावसे बिदा ली। उसे खाने पीने रहने सहने और सोने का वैसा ही आराम कर दिया गया, जैसा कि उसे दिल्लीके रङ्गमहल में था। वह सोयी, किन्तु उसे नींद न आयी। चञ्चलकुमारी को आज्ञानुसार दरवाज़ा खुला छोड़ दिया गया और कमरे में दूसरा कोई भी न रहा। ज़ेब-उन्निसा ने चञ्चलकी आज्ञानुसार काम इसलिये किया कि, वह इस बात से डरती थी कि मेरी भी दशा उदय-पुरीकी सी न हो। किन्तु रातभर अकेली रहने से उसके

मनमें शङ्का हुई कि, कहीं मुझ पर अत्याचार तो न किया जायगा। मालुम होता है, इसीलिये ये बन्दोबस्त किया गया है। अतएव उसने स्थिर किया कि,मैं रातभर नींद न लूँगी.सतर्क और सावधान रहूँगी।

ज़ेब-उन्निसा बहुत कुछ चाहती थी कि, मुझे नींद न आवे; किन्तु निद्रा देवी उस पर अपना दखल जमाये ही लेती थी। उसने कई बार उठकर मुँह धोया, पलँग पर बैठी रही, लेकिन निद्रा ने उस का पीछा न छोड़ा। वह बीच बीचमें चमक उठती थी। जब निद्रा या तन्द्रा भङ्ग होती थी तब उसके मन में ये विचार आते थे—कहाँ दिल्लीकी बादशाहज़ादी, कहाँ उदयपुरकी बन्दिनी; कहाँ मुगल बादशाहत की रङ्गभूमि की प्रधाना अभिनेत्री, मुग़ल बादशाहत के आकाश का पूर्ण चन्द्र.तख्त ताऊस का सर्व्वोज्ज्वल रत्न, जिसके बाहु बल से काबुल से लेकर विजयपुर गोलकुण्डा तक शासित होता है, उसका दाहिना हाथ और कहाँ उदयपुर की कोठरी में चूहेकी तरह पिंजरे में बन्द, रूपनगरके भुँइयार की बेटीकी बन्दिनी! इस से मरण क्या भला नहीं है? निश्चय ही भला है। जो मरण मैंने प्राणाधिक मुबारक को दिया था, वह अच्छा नहीं तो क्या अच्छा है? जिस मौतसे मुबारक मरा वह अमूल्य है—क्या मैं उस मौतके योग्य नहीं हूँ? हाय

मुबारक! मुबारक! मुबारक! क्या तुम अपने अमोघ वीरत्व से सामान्य भुजङ्गोंके विषको जय न कर सके? हाय! तुम्हारी अनिन्दनीय मनोहर मूर्त्ति भी क्या सर्प-विष में लीन हो गयी? क्या इस उदयपुर में ऐसा साँप नहीं है जो मुझ काल-भुजङ्गिनी को डस ले। मानुषी काल भुजङ्गी क्या फणवाले काल भुजङ्गी से डसी नहीं जा सकती? हाय मुबारक! मुबारक! मुबारक! तुम एक बार सशरीर आकर मुझे काल भुजङ्गीसे कटाओ; मैं मरती हूँ कि नहीं, देखो तो सही।

वह उपरोक्त बातें आँख मींचकर कह रही थी। ज्योंहीं उसने आँख खोली तो क्या देखती है कि; मुबारकअली सशरीर सामने मौजूद हैं। देखते ही वह बेतहाशा चिल्ला उठी और आँखें मींचकर बेहोश हो गयी।
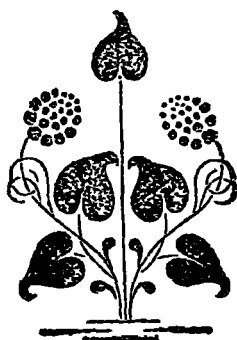
चौथा परिच्छेद।

उदयपुरीका और भी अपमान।

उस रातकी घटना के बाद जब ज़ेब-उन्निसा सोकर उठी. तो पहचानी नहीं जाती थी। सारी रात आगके पास बैठने से मनुष्यकी जो दशा हो जाती है वैसी ही दशा उसकी हो गयी। आज उसके चेहरे पर रही सही सुर्खी भी न रही। सारा चेहरा पीला पड़ गया। देह में ऐसी निर्ब्बलता आ गयी, मानों चार छः महीने से खाट में पड़ी हो। उठना चाहती थी, उठती थी; लेकिन गिर गिर पड़ती थी।

ख़ैर, जैसे तैसे पलँग से उठी, मन मारकर कपड़े लत्ते बदले, बाल वाल सँवारे। बहुत कहने सुनने से, पानीकी घूँटों के साथ दो चार निवाले गले से नीचे उतारे। इसके बाद पहिले उदयपुरी से मिलने गयी। देखा, उदयपुरी अकेली बैठी है—सामने कूमारी मरियमकी प्रतिमूर्त्ति और एक ईसाका क्रास पड़ा है। बहुत दिन से उदयपुरी ईसा और उसकी मा को भूल गयी थी। आज दुर्दिन में उनकी याद आयी। ईसा-इनके चिन्ह स्वरूप ये दोनों उसके साथ २ रहा करते थे।

वर्षामें दुःखी मनुष्यके पुराने छाते की भाँति आज वह बाहर निकाले गये थे। ज़ेब-उन्निसा ने देखा कि, उदयपुरी की आँखों से आज अविरल अश्रुधारा बह रही है। बूँद पर बूँद, बूँद पर बूँद उसके गालोंपर गिर गिर कर नीचे ढलक रही हैं। ज़ेब-उन्निसा ने उदयपुरी आजकी भाँति सुन्दर पहले कभी नहीं देखी थी। वह स्वभाव से ही परमा सुन्दरी थी—किन्तु गर्व्वके समय, भोग विलास के समय, उसका अतुल सौन्दर्य्य भद्दा हो जाया करता था। आज आँसुओं से उसका भद्दापन जाता रहा—अपूर्व्व रूप-राशिका पूर्ण विकाश होगया।

उदयपुरी ज़ेब उन्निसा को देखकर अपने दुःखकी बातें कहने लगी। बोली, "मैं बाँदी थी—बाँदी की दर से ही बेची गयी थी—बाँदी ही क्यों न रही? मेरे भाग्यमें ऐश्वर्य्य क्यों हुआ?"—इतनी बात अपने विषय में कह कर, फिर बोली, "तुम्हारी यह दशा कैसे हो गयी है, कल तुम्हारा क्या हाल हुआ? काफ़िरने तुम्हारे ऊपर क्या ज़ुल्म किया?"

ज़ेब-उन्निसा दीर्घ निश्वास परित्याग करके बोली, "काफिर की क्या साध्य है? अल्लाह ने ही यह हालत की है।"

उदयपुरी—सब कुछ वही करता है, लेकिन क्या हुआ है, ज़रा सुनूँ तो सही!

ज़ेब-उन्निसा—इस समय उस बात को मुँह पर नहीं ला सकती। मरने के समय कहूँगी।

उदयपुरी—जो हो, ईश्वर राजपूत को इस स्पर्द्धा का दण्ड दे!

ज़ेब-उन्निसा—राजपूतका इसमें कोई दोष नहीं है।

यह बात कहकर ज़ेब-उन्निसा चुप हो गयी। उदयपुरी भी कुछ न बोली, शेष में चञ्चलकुमारी से मुलाक़ात करनेके लिये ज़ेब-उन्निसा ने उदयपुरी से रुख़सत ली।

उदयपुरी बोली, "क्यों, क्या तुम्हें बुलाया है?"

ज़ेब-उन्निसा—न।

उदयपुरी—तुम्हारा विना बुलाये जाना उचित नहीं है। तुम बादशाह की कन्या हो।

ज़ेब-उन्निसा—मेरा निजका ज़रूरी काम है।

उदयपुरी—मिलने पर पूछना कि कितनी अशर्फ़ियाँ लेकर, ये गँवार लोग हम लोगों को छोड़ देंगे?

"पूछूँगी" कहकर ज़ेब-उन्निसा चली गयी। फिर अन्दर ख़बर कराकर चञ्चल से मिली। चञ्चल ने पहले दिनकी भाँति ही उसका आदर सन्मान किया। शेषमें पूछा, "कैसी हो, रातको सुख से नींद तो आयी न?"

ज़ेब-उन्निसा—आपने जैसी आज्ञा दी थी वैसा ही किया, लेकिन डरके मारे रात भर नींद न आयी।

चञ्चल—कुछ स्वप्न देखा ?

ज़ेब-उन्निसा—स्वप्न नहीं देखा, किन्तु प्रत्यक्ष में कुछ देखा है।

चञ्चल—बुरा या भला ?

ज़ेब-उन्निसा—न अच्छा न बुरा। उसे कह नहीं सकती—लेकिन उस विषय में, मैं आपसे एक भिक्षा चाहती हूँ।

चञ्चल—बोलिये।

ज़ेब॰—उसे फिर देख सकती हूँ ?

चञ्चल—दैवज्ञ को बिना पूछे कह नहीं सकती। पाँच सात रोज़ बाद दैवज्ञ के पास आदमी भेजूँगी।

ज़ेब॰—आज नहीं भेज सकतीं ?

चञ्चल—इतनी क्या जल्दी है, बादशाहज़ादी ?

ज़ेब॰—इतनी जल्दी, अगर आप इसी समय उसे दिखा सकें तो मैं सदा आपकी बाँदी होकर रहूँ।

चञ्चल—आश्चर्य की बात है शाहज़ादी! ऐसी क्या चीज है ?

ज़ेब-उन्निसा ने कुछ जवाब न दिया। उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। यह देख कर भी चञ्चल ने दया नहीं की। बोली, "आप पाँच सात दिन अपेक्षा करें, विवेचना करूँगी।"

उस समय जेब उन्निसा हिन्दू मुसल्मानका प्रभेद

भूल गयी। जहाँ उसका जाना उचित नहीं था, वहीं गयी। जिस पलँग पर चञ्चल कुमारी बैठी थी, उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। फिर छिन्नलताकी तरह चञ्चल के चरणों में गिर गयी। और रो रो कर उसके कमल चरणोंको भिगोने लगी। बोली, "मेरी जान बचाओ। नहीं तो आज मर जाऊँगी।"

चञ्चलकुमारी ने उसे उठा कर बैठायी। उसने भी हिन्दू मुसल्मान का कुछ भेद न रक्खा। बोली, "शाहज़ादी, आप जिस तरह कल रातको द्वार खोल कर अकेली सोईं थीं आज भी वैसा ही करना। निश्चय ही आपकी मनोकामना सिद्ध होगी।"

यह कहकर उसने ज़ेब-उन्निसा को बिदा दी।

इधर उदयपुरी ज़ेब-उन्निसा की बाट देख रही थी। किन्तु ज़ेब-उन्निसा उसके पास न गयी। निराश होकर उदयपुरी ने स्वयँ चञ्चलकुमारीके पास जाने की अनुमति चाही।

मिलने पर उदयपुरी ने ज़ेब-उन्निसा से पूछा,—"आप कितनी अशर्फ़ियाँ लेकर हम लोगोंको छोड़ सकती हैं?"

चञ्चल कुमारी बोली,—"अगर बादशाह सारे भारतवर्षको और दिल्ली की जुम्मा मसजिद तुड़ा सके और तख्त ताऊस यहाँ भेज सके, और साल दर साल हम

को राज-कर देना स्वीकार करे, तो तुम लोगोंको छोड़ सकती हूँ।"

उदयपुरी क्रोधसे अधीर होकर बोली, "गँवार भुँइयारके घरमें इतनी स्पर्द्धा, आश्चर्य है!

इतनी बात कहकर उदयपुरी उठकर चलने लगी, चञ्चलकुमारी हँसकर बोली, "बिना हुक्म कहाँ जाती हो? तुम गँवारी भुँइयारनी की बाँदी हो, क्या तुम यह बात नहीं जानती?" फिर एक दासी को हुक्म दिया,—"हमारी इस नयी बाँदी को ले जाकर और और महिषियोंको दिखा लाओ। कह देना, यह दाराशिकोह की ख़रीदी हुई बाँदी है।"

उदयपुरी रोती रोती दासी के साथ हो ली। दासी राजसिंहकी और और महिषियोंके पास, औरङ्ग़ज़ेबकी प्रेयसी महिषी को घुमा लायी।

निर्मल आकर चञ्चल से बोली, "महारानी! आप असल बात को तो भूली जाती हैं? आपने उदयपुरी को किस काम के लिये बुलाया है? ज्योतिषी की बात क्या याद नहीं है?"

चञ्चलकुमारी हँस कर बोली, "उस बात को भूली नहीं हूँ। उस रोज़ बेगम बहुत ही कातर होकर पड़ गयी, इससे उसे और दुःखित न कर सकी। अभी तो वह अपने हाथ ही में है, फिर देखा जायगा।

पाँचवाँ परिच्छेद।

जेब-उन्निसा और मुबारक की शादी।

आधी रातका समय है। सब जगत् चुप चाप गाढ़ निद्रामें निमग्न है। ज़ेब-उन्निसा, बादशाहकी बेटी, सुख-शय्यापर आँसुओंकी धारा बहा रही है। उसे किसी तरह कल नहीं पड़ती। आजकी रात उसे काल-रात्रि सी प्रतीत हो रही है। ऐसीही समय में हवाके तेज़ झोंकेने आकर घरके सब चिराग़ गुल कर दिये। इस समय ज़ेब-उन्निसाके मनमें कुछ भयका सञ्चार हुआ। ज़ेब-उन्निसा मनमें कहने लगी,—"डरकी क्या बात है? मैं तो स्वयम मरण-कामना करती हूँ! जो मरनेको तय्यार है उसे किसका भय? कल मरा आदमी देखा है, लेकिन आजतक बची हुई हूँ। जहाँ मरे हुए आदमी जाते हैं वहीं मैं भी जाऊँगी, यह बात निश्चित है, तब भय किस बातका? बहिश्त तो मेरे कपालमें नहीं है—जहन्नुममें जाना होगा, इसीसे इतना भय है। इतने दिनोंसे मुझे किसी बात पर विश्वास नहीं था। जहन्नुमको भी नहीं मानती थी,

बहिश्तको भी नहीं मानती थी, खुदाको भी नहीं जानती थी, दीनको भी नहीं जानती थी, केवल भोग विलासको ही जानती थी। अल्लाह रहीम! तुमने क्यों ऐश्वर्य्य दिया? ऐश्वर्य्य से ही मेरा जीवन विषमय हो गया? इसीसे मैंने आपको नहीं पहचाना। किन्तु आप तो जानते हैं। जान सुनकर आपने निर्दयी हो मुझे क्यों यह दुःख दिया? मेरे समान ऐश्वर्य्य किसके कपालमें लिखा है? मेरी तरह दुःखी कौन है?"

इतनेमें एक चींटीं या कीड़ेने उसे काट लिया। ज़ेब-उन्निसाके कोमल अङ्गमें आग जलने लगी। उसकी दंशन-ज्वालासे वह कुछ कातर हुई। पीछे मनही मन हँसकर कहने लगी—"हाय! चींटीके काटनेसे मैं कातर हूँ। इस अनन्त दुःखके समय भी कातर हूँ। मैं आप तो चींटीका डङ्क भी सहन नहीं कर सकती। किन्तु मैंने अपने प्राणाधार प्राणोंसे भी प्रिय मुबारकको अवलीलाक्रमसे काल-भुजङ्गोंसे कटवा दिया। ऐसा कोइ नहीं है जो मुझे वैसेही विषधर सर्प ला दे। साँप है, मुबारक नहीं है!"

उसके मुँहसे अन्तिम शब्द निकलतेही अन्धकार में से किसीने उत्तर दिया—"मुबारकको पानेसे क्या तुम न मरोगी?"

"यह क्या!" कहकर ज़ेब-उन्निसा कपड़े फेंककर

उठ बैठी। जिस तरह गीत सुनतेही हिरनी उन्मत्त होकर उठ बैठती है उसी तरह ज़ेब-उन्निसा उठ बैठी। बोली—"यह क्या ?"

जवाब आया—"किस को ?"

ज़ेब-उन्निसा बोली, "किसको! जो बहिश्तमें चला गया है क्या उसके भी कण्ठ-स्वर है ? वह क्या छाया मात्र नहीं है! तुम किस तरह बहिश्तसे आते हो जाते हो मुबारक ? कल तुम्हें देखा था, आज तुम्हारी बात सुनी—तुम मरे हो या जीते हो ? मुद्दन-उद्दीनने क्या मुझसे झूठ बात कही थी ? तुम जीते हो चाहे मरे हो, तुम मेरे पास—मेरे इस पलँग पर एक क्षण के लिये बैठ नहीं सकते ? यदि तुम छाया मात्रही हो, तोभी मुझे भय नहीं है। एक बार बैठो।"

जवाब मिला—"क्यों ?"

ज़ेब-उन्निसा कातर होकर बोली—"मुझे कुछ कहना है। जो बात मैंने कभी नहीं कही, वही कहूँगी।"

मुबारक उस समय अन्धकारमें ज़ेब-उन्निसाके पास पलँगके ऊपर आकर बैठ गया। ज़ेब-उन्निसाने मुबारकका हाथ अपने हाथमें ले लिया। बोली—"छाया नहीं हो प्राणनाथ! मेरा अपराध क्षमा कर दो। मेरे करतबको भूल जाओ। मैं तुम्हारी हूँ। अब तुम्हें न छोड़ूँगी।" ज़ेब-उन्निसा पलँगसे उतरकर मुबा-

रकके क़दमों पर गिर पड़ी और बोली—"मुझे माफ़ कीजिये, मैं ऐश्वर्य्यके गौरवमें पगली हो गयी थी। आज मैंने शपथ करके ऐश्वर्य्यको त्याग दिया है—यदि आप मेरा क़ुसूर माफ़ कर दें तो मैं लौटकर दिल्ली न जाऊँगी। बोलो, तुम जीवित हो।"

मुबारक दीर्घनिश्वास छोड़कर बोले—"मैं जीवित हूँ, एक राजपूतने मुझे क़ब्रसे निकाल कर प्राण दान दिया है। उसीके साथ मैं यहाँ आया हूँ।"

ज़ेब-उन्निसाने पैर न छोड़े। उसकी आँखोंके पानी से मुबारकके पैर भीज गये। मुबारकने उसके हाथ पकड़ कर उसे उठाना चाहा किन्तु वह उठी नहीं, बोली—"मुझ पर रहम कीजिये। मुझे माफ़ कीजिये।'

मुबारक बोले—"तुमको माफ़ किया, माफ़ करनेकी इच्छा न होती, तो तुम्हारे पास हरगिज़ न आता।"

जेब-उन्निसा बोली,—"अगर आये हो, अगर मेरा कसूर माफ़ कर दिया है तो मुझे अपनी कर लीजिये। मुझे अपनी करके चाहें साँपोंके मुँहमें दीजिये चाहें अपने पास रखिये, अब मुझे फिर न छोड़ना। मैं आपके सामने क़सम खाकर कहती हूँ कि, अब मैं दिल्ली जाने की इच्छा न करूँगी। अब फिर आलमगीर बादशाह के रङ्गमहलमें न आऊँगी। मुझे किसी शाहज़ादेसे

विवाह नहीं करना है। मैं तो आपके साथ रहूँगी।"

मुबारक सब भूल गये—सर्प-दंश-ज्वाला भूल गये—अपनी मरनेकी इच्छा भूल गये—ज़ेब-उन्निसाके प्रीति-शून्य असह्य वाक्य भूल गये। केवल ज़ेब-उन्निसाकी अतुल रूपराशि उनकी आँखोंमें समायी हुई रह गई। ज़ेब-उन्निसाकी प्रेमपूर्ण कातरोक्ति उनके कानोंमें घूमने लगी; शाहज़ादीका दर्प चूर्ण हुआ देखकर, उनका मन पानी पानी हो गया। मुबारकने पूछा—"क्या तुम इस ग़रीबको अपना ख़ाविन्द बनानेमें राज़ी हो?"

ज़ेब-उन्निसा सजल नयनोंसे हाथ जोड़कर बोली—"क्या मेरा भाग्य ऐसा हो सकता है?"

बादशाहज़ादी अब बादशाहज़ादी नहीं थी, मानुषी मात्र थी। मुबारक बोले—"तब निर्भय और निःसङ्कोच होकर मेरे साथ आओ।"

दीपक जलानेकी सामग्री पास थी। मुबारकने दीपक जलाकर फ़ानूसमें रक्खा और बाहर आकर खड़े हो गये। ज़ेब-उन्निसाने उनके कहने अनुसार कपड़े लत्ते पहन लिये। पीछे मुबारक उसका हाथ पकड़ कर उसे बाहर ले गये। पहरेवाली मुबारकसे मिली हुई थीं। चञ्चलकुमारीने उन लोगोंको मुबारक अलीकी इच्छानुसार काम करनेका हुक्म दे दिया था।

पहरे वालियोंने उन दोनोंके लिये पहलेसेही सवारी तय्यार कर रक्खी थीं। दोनोंही अपनी अपनी सवारी पर चढ़ लिये। उदयपुरमें दो चार मुसल्मान सौदागरी करनेके लिये रहते थे। उन्होंने महाराणासे आज्ञा लेकर एक छोटी सी मसजिद बनवा ली थी। मुबारक अली ज़ेबःउन्निसाको वहीं ले गये। उस जगह एक मुल्ला, एक वकील और एक गवाह ये तीनों मौजूद थे। उन लोगोंके साहाय्यसे मुबारक और ज़ेब-उन्निसाकी शादी हो गयी।

शादी हो जानेके बाद मुबारक अली बोले—"इस वक्त मैं तुमको जहाँसे लाया हूँ वहीं पहुँचाऊँगा। भरोसा है कि जल्दीही तुम्हारा छुटकारा हो जायगा।

यह कहकर मुबारक अली ज़ेब-उन्निसाको फिर उसके सोनेके कमरेमें पहुँचा आये।
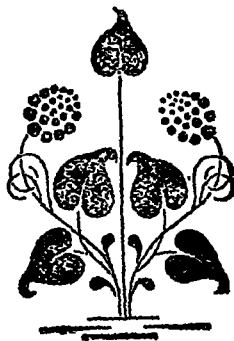
छठा परिच्छेद ।

दिल्लीश्वर एक रोटीके टुकड़ेका भिखारी ।

शादी होनेके अगले दिन, तीसरे पहरके समय, ज़ेब-उन्निसा चञ्चलकुमारीके पास बैठकर प्रसन्न-चित्तसे बात-चीत कर रही थी। दो दिन रातमें जागरण करनेसे उसका शरीर म्लान—दुश्चिन्ताके दीर्घकाल भोगसे उसका बदन विशीर्ण हो रहा था। जो ज़ेब-उन्निसा, रत्न-राशि और पुष्पराशिसे मण्डित होकर सीसमहलके दर्पण दर्पणमें अपनी प्रतिमूर्त्ति देखकर हँसा करती थी, अब यह वह ज़ेब-उन्निसा नहीं थी। जो यह जानती थी कि बादशाहज़ादीका जन्म केवल भोग बिलासके लिये हुआ है, यह वह बादशाहज़ादी नहीं थी। ज़ेब-उन्निसा समझ गयी कि बादशाहज़ादी भी नारी है। बादशाहज़ादीका हृदय भी नारीका हृदय है। स्नेहशून्य नारीका हृदय जलशून्य नदीकी तरह केवल कीचड़से भरा हुआ है।

ज़ेब-उन्निसाने इस समय अकपट भावसे गर्व्वको परित्याग करके बड़ीही नम्रतासे गत रात्रिका सारा

हाल चञ्चलकुमारीको सुनाया। चञ्चलकुमारी यह सब हाल पहलेही जानती थी। सारी बीती कहकर ज़ेब-उन्निसा हाथ जोड़कर बोली,—"महारानी! अब मुझे और क़ैद रखनेसे क्या फ़ायदा? अब मैं इस बात को भूल गयी हूँ कि, मैं बादशाह आलमगीरकी कन्या हूँ। अगर आप मुझे उनके पास भेजना भी चाहें, तो मेरी इच्छा उनके पास जानेकी नहीं है। जाने से मेरी प्राण-रक्षाकी सम्भावना नहीं है। अब आप मुझे छोड़ दें, तो मैं अपने स्वामीके साथ, उनके स्वदेश तुरकिस्तानको, चली जाऊँ।"

सुनकर चञ्चलकुमारी बोली,—"इन सब बातोंका जवाब देनेकी मेरी शक्ति नहीं है। स्वयं महाराणाही जो चाहें सो कर सकते हैं। उन्होंने आप मेरे पास रखनेके लिये भेजी थीं। मैं आपको रखती हूँ। अब जो यह घटना हो गयी है, उसके जिम्मेदार महाराणाके सेनापति माणिकलाल हैं। मैं माणिकलालके प्रति विशेष बाधित हूँ; इसीसे यह सब काम किया है; किन्तु छोड़ देने का उपदेश मुझे मिला नहीं है। इसवास्ते इस विषय में बिना महाराणाकी आज्ञा के कुछ भी नहीं कर सकती।"

ज़ेब-उन्निसा विषन्नभाव से बोली—"महाराणाको क्या आप मेरी यह भिक्षा जना नहीं सकतीं? उनके

डेरे बहुत दूर तो नहीं हैं। कल रातको पहाड़ परसे उनके डेरेका चिराग़ नज़र आता था।"

चञ्चलकुमारी बोली,—"पहाड़ जितना नज़दीक दिखायी देता है, उतना नज़दीक नहीं है। हम लोग पहाड़ी देशमें रहते हैं, इससे पहाड़ों का हाल जानते हैं। आप भी काश्मीर गयी थीं, यह बात आप को भी याद होगी। कुछ भी हो, आदमी भेजना कष्ट साध्य नहीं है। राणाजी इस बात पर राज़ी होंगे, ऐसा भरोसा नहीं कर सकती। अगर ऐसा हो सकता कि, उदयपुर की क्षुद्र सेना इस एक युद्ध में ही मुग़ल-राज्यको एकदम ध्वंस कर सकती और बादशाह के साथ हमारी सन्धि स्थापन की सम्भावना न होती, तो वे आपको अपने स्वामी के साथ जानेकी अनुमति दे देते; लेकिन जब एक दिन न एक दिन सन्धि स्थापन करनी ही होगी, तो आप लोगों को बादशाह के निकट अवश्य ही वापिस भेजना होगा।"

ज़ेब-उन्निसा—ऐसा काम करके आप हमें निश्चय ही मृत्यु-मुखमें भेजेंगी। इस विवाह की बात जान जाने से बादशाह मुझे विष भोजन करावेगा और मेरे स्वामी की तो बात ही कुछ नहीं है। वह तो अब दिल्ली कभी न जायँगे। जानेसे मृत्यु निश्चित है। फिर इस विवाह से कौनसा अभीष्ट सिद्ध होगा, महारानी?

चञ्चल—जिससे कोई उत्पात न खड़ा हो, ऐसा ही उपाय किया जायगा।

यह दोनों इस तरह बात-चीत कर रही थीं, उसी समय निर्मल वहाँ कुछ व्यस्त भावसे आकर उपस्थित हुई। निर्मल ने चञ्चल को प्रणाम करके ज़ेब-उन्निसाको अभिवादन किया। ज़ेब-उन्निसा ने भी उसे प्रत्यभिवादन किया। इसके बाद चञ्चल ने पूछा, "निर्मल! इतनी घबरायी सी क्यों है?"

निर्मल—"विशेष सम्वाद है।" उस समय ज़ेब-उन्निसा वहाँ से उठ गयी। चञ्चल ने पूछा, "युद्ध का सम्वाद है या और कुछ?"

निर्मल—जी हाँ, युद्धका ही सम्वाद है।

चञ्चल—लोगोंके मुँह सुना जाता है कि चूहे ने बिलमें प्रवेश किया है और महाराणाने बिल बन्द कर दिया है। सुना जाता है कि, चूहा बिलमें मरना ही चाहता है।

निर्मल—इससे भी अधिक और एक बात है। चूहा बहुत ही भूखा है। आज मेरा वह कबूतर वापिस आगया है। बादशाह ने उसे छोड़ दिया है।

चञ्चल—क्या चिट्ठी भेजी है?

निर्मल—हाँ।

चञ्चल—क्या लिखा है?

निर्मलने चिट्ठी अपनी आँगी से निकाली और इस भाँति पढ़कर सुनाने लगी—

"मैंने जैसा स्नेह तुम से किया है वैसा किसी से कभी नहीं किया। तुम भी मुझे मुहब्बतकी नज़रसे देखती हो। आज पृथिवीश्वर दुर्दशापन्न होकर अनाहार मरता है। दिल्लीका बादशाह आज एक टुकड़ा रोटीका भिखारी है। कुछ उपकार नहीं कर सकतीं क्या? अगर साध्य हो तो करो। इस समय का उपकार कभी न भूलूँगा।"

सुनकर चञ्चलकुमारी ने पूछा, "क्या उपकार करोगी?"

निर्मल बोली, "वह बात कह नहीं सकती और कुछ तो नहीं कर सकती, किन्तु बादशाह और जोधपुरीके लिये कुछ खानेको भेज दूँगी।"

चञ्चल—किस तरह? वहाँ तो मनुष्यके जाने की राह भी नहीं है।

निर्मल—वह बात इस समय नहीं कह सकती। मुझे एक बार शिविरमें जानेकी अनुमति दीजिये। क्या कर सकती हूँ, देख आऊँ।

चञ्चल कुमारी ने अनुमति देदी। निर्मल हाथी-पर चढ़ कर और अपने साथ बहुत से रक्षक लेकर अपने स्वामी के पास शिविरमें गयी। जाते ही माणिक

लालसे मुलाक़ात हो गयी। माणिकलाल ने पूछा, "युद्ध करने आयी हो क्या?"

निर्मल किस के साथ युद्ध करूँगी? तुम क्या मेरे साथ युद्ध करने योग्य हो?

माणिकलाल—मैं तो इस योग्य नहीं हूँ, किन्तु आलमगीर बादशाह तो है।

निर्मल—मैं उसकी इमलि बेगम हूँ—उसके साथ युद्ध क्यों करूँगी? मैं तो उसके उद्धार के लिये आयी हूँ। मैं जो हुक्म देती हूँ, उसे मन लगाकर सुनो।

इसके बाद माणिकलाल और निर्मल कुमारी में क्या बात-चीत हुई, सो तो हम नहीं जानते। सिर्फ़ इतना ही मालुम है कि, बहुत सी बातें हुईं।

माणिकलालने निर्मलको तो उदयपुर वापिस भेज दिया और आप महाराणा से मुलाक़ात करनेके लिये उनके तम्बू में गये।

सातवां परिच्छेद ।

सन्धिका प्रस्ताव ।

णिकलाल ने महाराणा को प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे, "यदि इस दासको किसी और युद्ध-क्षेत्र में भेज दें तो बड़ी कृपा हो ।"

राणा ने पूछा—"क्यों, यहाँ क्या हुआ है ?"

माणिकलाल ने उत्तर दिया,—"यहाँ तो कोई काम नज़र नहीं आता । यहाँ तो क्षुधार्त्त मुग़लों के आर्त्तनाद के सिवाय और कुछ भी नहीं है। मुझे सोच होता है कि, यदि ये सब हाथी, घोड़े, ऊँट और मनुष्य इस रन्ध्र-पथ में मर जायँगे, तो इन की दुर्गन्धसे उदयपुर बच न सकेगा,—बड़ी भारी मरी फैलेगी ।

राणा बोले,—"अतएव तुम्हारे विचार में इस मुग़ल-सेना को अनाहार मार डालना अनुचित है ?"

माणिकलाल—बेशक, युद्धमें लाख लाख आदमी को मरते हुए देखकर भी दुःख नहीं होता ; किन्तु बैठे हुए क्षुधार्त्त एक मनुष्य को मरते देख कर ही दुःख होता है।

राणा—तब उन लोगों के सम्बन्ध में क्या किया जाय ?

माणिकलाल—महाराज! मुझमें इतनी अक्ल नहीं जो आपको इस विषयमें सलाह दे सकूँ। मेरी क्षुद्र बुद्धिमें सन्धि स्थापन का यही उपयुक्त समय है। भूखसे पीड़ित मुग़ल जैसे नरम रहेंगे वैसे पेट भरने पर न रहेंगे। मेरी समझ में राज-मन्त्रियों और सेनापत्तियों को बुलाकर इस विषय में सलाह करना अच्छा होगा।

राजसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। वह भी नहीं चाहते थे कि, इतने आदमी उपवास करके मरें। हिन्दू लोग भूखेको खिलाना अपना परम धर्म मानते हैं। अतएव हिन्दू शत्रुको भी भूखों मारकर नष्ट करना पसन्द नहीं करते।

साँझ के समय शिविरमें राज-सभा लगी। प्रधान सेनापति और प्रधान मन्त्री आकर उपस्थित हो गये। राज-मन्त्रियों में प्रधान दयाल साह थे। वे भी उपस्थित थे, माणिकलाल भी मौजूद थे।

राजसिंहने विचार्य्य विषय सबको समझा दिया और उसपर सब सभासदोंकी सम्मति माँगी। कितनों ही ने तो कहा,—"मुग़ल को यहाँ भूखों मार कर क़ब्र में गाड़ दो। नहीं तो उससे मिट्टी ढुवाने का

काम लो। मुग़ल के हाथ से राजपूतों को जो जो बुराइयाँ हुई हैं उनके याद आने पर किसी की इच्छा नहीं होती कि उसे हाथ में पाकर छोड़ दें।"

इसके जवाब में महाराणाने कहा, "मैं इस बात को स्वीकार कर लेता, किन्तु औरङ्ग़ज़ेब और औरङ्ग़ज़ेब की इस सेनाके मरने से मुग़लोंको अन्त न हो जायगा। औरङ्ग़ज़ेब के मरने पर शाह आलम बादशाह होगा। शाह आलमकी दक्खनी फ़ौज दूसरे पहाड़ पर उपस्थित है। क्या हम लोग इन सबको ध्वंस कर सकेंगे? यदि न सकेंगे,तो एक दिन न एक दिन सन्धि करनी होगी। यदि सन्धि करनी ही होगी, तो ऐसा सुअवसर और कब मिलेगा? इस समय औरङ्ग़ज़ेब के प्राण कण्ठ में हैं— इस समय उससे जो कहेंगे वही उसे मानना होगा। समयान्तर में ऐसा हो न सकेगा।

दयाल साह बोले,—"ठीक है, लेकिन मेरी समझ में तो ऐसे पापिष्ट, पृथ्वीके कण्टक को मार डालना ही पृथ्वी का पुनरुद्धार करना है। ऐसा पुण्य और किसी कामसे न होगा। महाराज! मतान्तर न कीजिये।"

राजसिंह बोले,—"सारे मुग़ल बादशाह ही पृथ्वीके कण्टक हुए हैं। औरङ्ग़ज़ेब शाहजहाँकी अपेक्षा क्या नराधम है? उससे जितना हमारा अमङ्गल हुआ है,

औरङ्गज़ेबसे क्या उतना हुआ है? इस युद्धमें यदि हम लोग लड़ने ही पर कमर बाँध लें—इस सुअवसरमें सन्धि न करें तो असंख्य राजपूत विनष्ट हो जायँगे, बचेंगे कितने? हम लोग थोड़े हैं; मुसल्मान बहुत हैं। अगर हम लोगोंकी संख्या कम हो जायगी, तो जब और मुग़ल आवेंगे तब हम किनके बाहुबलसे उन्हें भगावेंगे?"

दयाल साह बोले—"महाराज! समस्त राजपूताने के एकत्र होने पर, मुग़लको सिन्धु पारकर आनेमें कितनी देर लगेगी?"

राजसिंह बोले,—यह बात सच है। किन्तु भारत में ऐसी एकता कभी हुई है? पहिले भी कई बार ऐसी चेष्टाएँ की गयीं, क्या कुछ फल हुआ? तब इस बात का भरोसा कैसे किया जाय?"

दयाल साह बोले, "सन्धि होने पर भी औरङ्गज़ेब सन्धि रक्षा करे, ऐसा भरोसा नहीं है। ऐसे मिथ्यावादी भण्डने कभी इस पृथ्वी पर जन्म नहीं लिया। यहाँ से छुटकारा पातेही, वह सन्धिपत्रको फाड़कर फेंक देगा। जो अब तक किया है वही फिर करेगा।"

राजसिंह बोले, "ऐसा विचार करनेसे कभी सन्धि हो ही नहीं सकती। क्या यही सबका मत है?"

इस भाँति बहुतसे बाद विवादके बाद, सबने राणा-

जीका मतही स्वीकार किया। सन्धिकी बातही पक्की रही।

दयालसाह बोले, "औरङ्गज़ेबने तो सन्धिके लिये दूत भेजा नहीं है। गरज तो उसको है, हम अपनी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव कैसे करें?"

राजसिंहने जवाब दिया, "दूत आ कैसे सकता है? इस रन्ध्र-पथमें तो चींटीके आने जानेकी भी राह नहीं है।"

दयाल साह बोले, "तब हमारा दूत ही कैसे जा सकेगा? उस बार औरङ्गज़ेबने हमारे दूतके मार डालनेका हुक्म दिया था। इस बार क्या वह वैसी ही आज्ञा न देगा? उसका ठिकाना ही क्या?"

राजसिंह बोले, "इस बार वह ऐसा काम न करेगा, यह बात निश्चित है। क्योंकि इस समय कपट-सन्धिमें भी उसका मङ्गल है। तब वहाँ हमारा ही दूत कैसे जायगा, इस बारेमें बेशक गोलयोग है।"

उस समय माणिकलालने कहा—"यह भार मेरे ऊपर डाला जाय। मैं महाराणाका पत्र औरङ्गज़ेबके पास पहुँचाकर, उसका उत्तर भी ला दूँगा।"

सबको माणिकलालकी बात पर भरोसा हो गया। क्योंकि सभी जानते थे कि कौशल और साहसमें माणिकलाल अद्वितीय है। इस लिये चिट्ठी लिखनेका हुक्म

हुआ। दयालसाहने चिट्ठी लिखवा दी। उसका मर्म यह था कि, बादशाह सारी सेना मेवाड़से ले जावें। मेवाड़में गो हत्या और देवालय-भङ्ग न हों और यहाँके लोगोंको जजिया न देनी पड़े। ऐसा होने पर राज-सिंह रास्ता खोल देंगे और बिना छेड़छाड़ बादशाह को यहाँसे जाने देंगे।

सारे सभासदोंको चिट्ठी सुनायी गयी। सुनकर माणिकलाल बोले, "बादशाहकी स्त्री और कन्या हमारे यहाँ हैं। क्या वे यहीं रहेंगी?

माणिकलालके यह बात बोलतेही सारी सभा हँसने लगी। कोई बोला, "उन्हें रहने दो। उनसे महाराणा के महलोंके आँगन झड़वाये जायँगे।" कोई बोला, "उनके मूल्य स्वरूप एक एक करोड़ रुपया बादशाहसे लेने चाहियें," इत्यादि नाना प्राकरके प्रस्ताव हुए। महाराणा बोले, "दो मुसल्मान बाँदियोंके लिये सन्धिमें गड़बड़ डालना ठीक न होगा। उन दोनोंको लौटा देंगे, लिख दो।"

वह बात भी लिख दी गयी। चिट्ठी मणिकलालके ज़िम्मे कर दी गयी। उसके बाद सभा भङ्ग हो गयी।

आठवाँ परिच्छेद ।
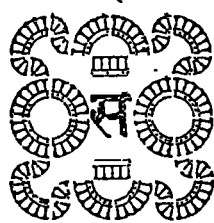
सभाभङ्ग होने पर भी माणिकलाल वहाँसे न गये। सब चले गये, तब माणिकलालने महाराणासे चुपचाप कहा—"मुबारकको बख़शिशका यही समय है।" राजसिंहने पूछा, "वह क्या चाहता है?"

माणिकलाल—बादशाहकी जो कन्या हमारे यहाँ बन्दी है, उसीको चाहता है।

राजसिंह—उसे यदि बादशाहके पास न भेजेंगे तो सन्धि हरगिज़ न होगी। मैं स्त्रियों को पीड़ित किस तरह कर सकूँगा?

माणिक—पीड़न करनेकी आवश्यकता नहीं है। शाहज़ादीके साथ कल रातको मुबारककी शादी हो गयी है।

राजसिंह—यह बात अगर शाहज़ादी बादशाहसे कह देगी तो सारा गोलमाल मिट जायगा।

माणिक—इससे कुछ फ़ायदा न होगा। दोनोंका सिर काट लिया जायगा।

राजसिंह—क्यों?

माणिक—शाहज़ादीका विवाह शाहज़ादेके सिवा

औरके साथ नहीं हो सकता। इस शाहज़ादीने क्षुद्र सैनिकके साथ विवाह करके, दिल्लीके बादशाहके कुलमें कलङ्क लगाया है। सबसे बड़ी बात यह है कि, बादशाहसे बिना कहे विवाह किया है। इस कारणसे उसे दिल्लीके रङ्गमहलमें क़ायदेके माफ़िक़ ज़हर खाना पड़ेगा। उस बार मुबारक सर्प-विषसे बच गया। इस बार उसे हाथीके पैरके नीचे मरना होगा। यदि वह क़सूर किसी तरह माफ़ भी हो जाय, तो उसने जो भलाई आपके साथ की है उसके कारण उसे बादशाह अवश्य ही शूली पर चढ़वा देगा।

राजसिंह—इसका कुछ प्रतिकार मुझसे हो सकता है?

माणिक—औरङ्गज़ेब जबतक कन्या और जमाईको माफ़ न कर दे, तब तक आप सन्धि न करेंगे, यह नियम भी सन्धिपत्रमें लगा दीजिये।

राजसिंह बोले—मैं इस कामके करनेको तय्यार हूँ। उन लोगोंके लिये, मैं बादशाहको एक अलग पत्र लिख देता हूँ। औरङ्गज़ेब कन्याको शायद माफ़ कर दे; किन्तु मुबारकको माफ़ कर देगा, ऐसा मुझे भी भरोसा नहीं है। ख़ैर, कुछ भी हो, अगर मुबारक इस बातसे राज़ी हो, तो मैं यह काम करनेको प्रस्तुत हूँ।"

इतनी बात कहकर राजसिंहने एक जुदी चिट्ठी

अपनेही हाथसे लिखकर माणिकलालको देदी। माणिक-लाल दोनों चिट्ठियाँ लेकर, उसी रात उदयपुर चले गये।

उदयपुर पहुँचकर माणिकलालने पहले यह सारा समाचार निर्मलको सुनाया। निर्मल सन्तुष्ट हो गयी। उसने भी एक चिट्ठी बादशाहको लिखा दी। उस चिट्ठीमें यह लिखा था:—

"शाहन्शाह !

बाँदीकी असंख्य कूर्निश, हजूरने जो आज्ञा दी थी, बाँदीने उसका पालन कर दिया है। मेरी अन्तिम भिक्षाकी बात याद कर लें और बिना हील हुज्जतके सुलह कर लें। आपकी—

इमलि बेगम।"

यह चिट्ठी निर्मलने माणिकलालको दे दी। इसके बाद निर्मलने सारी बातें ज़ेब-उन्निसासे कहीं, वह सुन-कर बहुत ही प्रसन्न हुई। इधर माणिकलालने भी सारा हाल मुबारकसे कहा। मुबारक कुछ न बोला। माणि-कलाल उसे सावधान करनेके लिये बोले—"साहब! बादशाह आपको माफ़ करेगा, ऐसा भरोसा तो मुझे नहीं होता।"

मुबारक बोला—खैर, देखा जायगा।

दूसरे दिन सवेरेही माणिकलालने सारी चिट्ठियों को तह करके निर्मलके कबूतरके पाँवमें बाँध दी।

कबूतर छोड़तेही आकाशमें उड़ने लगा। वह पैरके बोझसे बहुत दुःखी हुआ; तौभी किसी तरह उड़ता उड़ता जहाँ औरङ्गज़ेब, ऊँचा माथा करके, आकाशकी ओर देख रहा था जा पहुँचा। बादशाहने चिट्ठियाँ खोल लीं।

नवाँ परिच्छेद।

आखिर तमाखू भरनीही पड़ी।

कबूतर शीघ्रही औरङ्गजेबका जवाब ले आया। राजसिंह जो जो चाहते थे, औरङ्गज़ेबने सभी मञ्जूर कर लिया। केवल एक गोलयोग किया, लिखा,—"चञ्चलकुमारी को देना होगा।" राजसिंहने लिख भेजा—"उसके देनेसे तुम्हारा इसी दशामें मरना अच्छा है।" आखिर औरङ्गजेबको वह ज़िद भी छोड़ देनी पड़ी। उसने मुनशीको बुलाकर सन्धि-पत्र लिखाया और उस पर अपना पञ्जा लगा दिया और नीचे अपने हाथसे लिख दिया—"मञ्जूर!" जेब-उन्निसा और मुबारककी माफ़ीकी चिट्ठी भी अपने हाथसे ही लिख दी; लेकिन उसमें एक शर्त्त यह लिख दी कि इस विवाह

की बात कभी किसीके सामने कही न जायगी। हाँ, वह लोग एक जगह मिल भुल सकेंगे।

राजसिंहने सन्धि-पत्र पाकर मुग़ल सेनाके छोड़ देनेकी आज्ञा दे दी। राजपूतोंने हाथी लगाकर सारे वृक्ष हटा दिये। मुग़ल लोग इस समय खानेको कहाँ पावेंगे, यह सोचकर राजसिंहने, दया पूर्व्वक, बहुत सा खाने पीनेका सामान भेज दिया। शेषमें उदयपुरी, ज़ेब-उन्निसा और मुबारकको उदयपुरसे लानेका हुक्म दिया। इस समय निर्म्मलने चुपके चुपके चञ्चलको इशारा किया और कानमें कहा—"क्या उदयपुरीने तुम्हारा दासी-कार्य्य पूरा कर दिया?" चञ्चलसे यह बात कहकर उसने उदयपुरीसे कहा—"मैं तुम्हें जिस कामके लिये बुलाने गयी थी, वह काम तुमने कर दिया कि नहीं?"

उदयपुरी बोली—"तेरी जीभके मैं टुकड़े टुकड़े करवा दूँगी। तुम लोगोंकी साध्य क्या, जो मुझसे तमाखू भरवाओ? तुम्हारे जैसे लोगोंकी क्या शक्ति है जो बादशाहकी बेगमको रोक रक्खो? क्यों, अब तो छोड़ना ही होगा? किन्तु जो अपमान किया है उसका प्रतिफल तो अवश्य दूँगी। उदयपुरका चिन्ह भी न रक्खूँगी।"

उस समय चञ्चलकुमारी स्थिर भावसे बोली—"सुना

है, महाराणाने बादशाहको और तुमको दया करके छोड़नेकी आज्ञा दे दी है। आप उसके बदलेमें एक मीठी बात भी कहना नहीं जानतीं। अतएव आप न छोड़ी जायँगी। आप बाँदी-महलमें जाकर मेरे लिये तमाखू भर लाओ। मेरा हुक्म फ़ौरन तामील करो।

ज़ेब-उन्निसा बोली, "यह क्या महारानी! आप इतनी निर्दयी हैं?

चञ्चलकुमारी बोली—"आप जा सकती हैं—कुछ विघ्न न कीजिये—इसे मैं अब न छोड़ूँगी।"

ज़ेब-उनिसाने उदयपुरीको बहुत कुछ समझाया, तब उदयपुरी कुछ नर्म पड़ी। किन्तु चञ्चलकुमारी बहुत ही कड़ी हो गयी। दया करके, ख़ाली यह बात बोली, "मुझे तमाखू भरकर ला दोगी तभी जाने पाओगी।"

उदयपुरी बोली—"तमाखू भरना तो मुझे आता नहीं।"

चञ्चलकुमारी बोली—"बाँदी बता देगी।"

आख़िर लाचार होकर उदयपुरी राज़ी हुई। बाँदीने सब तरीक़ा बता दिया। उदयपुरी चञ्चलकुमारीके लिये तमाखू भर लायी।

उस समय चञ्चलकुमारीने सलाम करके उनको बिदा दी। बोली, "यहाँ जो जो हुआ है वह सब आप बादशाहसे कह देना और कह देना कि मैंने ही तस्वीरको

नाक तोड़ दी थी। और कहना कि यदि वह फिर किसी हिन्दू बालाके अपमानकी इच्छा करेंगे, तो मैं केवल तस्वीर पर लात चलाकर ही राज़ी न हूँगी।"

उस समय उदयपुरी सब बातें गटगट सुनती रही, कुछ बोली नहीं, आँखोंमें आँसू भर लायी और चल दी।

महिषी, कन्या और खानेकी चीज़ पाकर औरङ्ग-ज़ेब, बेंतकी चोट खाये हुए कुत्तेकी भाँति पूँछ तुड़ाकर, राजसिंहके सामनेसे भाग खड़ा हुआ।

दसवाँ परिच्छेद।

फिर नाउम्मेदी।
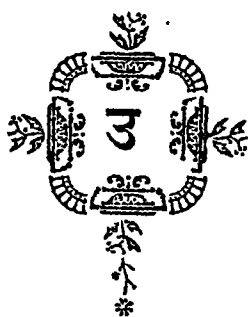
दयपुरी और ज़ेब-उन्निसाको विदा करके चञ्चलकुमारी रञ्जीदा होगयी। मुग़ल बादशाह पराजित हुआ, उसकी बेगमने चञ्चलके लिये तमाखू भरकर दासीका काम कर दिया; लेकिन राणा कुछ न बोले। चञ्चलको रोते देखकर निर्मल उसके पास आकर बैठ गयी। उसके

मनकी बात जानकर निर्मल बोली—"महाराणाको इस बातकी याद क्यों नहीं दिला देतीं?"

चञ्चल—तुम क्या पागल हो गयी हो? स्त्रियोंसे यह बात बार बार कही जाती है?

निर्मल—तब तुम अपने बापको आनेके लिये क्यों नहीं लिखतीं?

चञ्चल—क्यों? उस चिट्ठीके जवाब पर क्या और चिट्ठी लिखूँगी?

निर्मल—बापके साथ क्रोध और अभिमान कैसा?

चञ्चल—उस बार भी मैंने ही चिट्ठी लिखी थी। उस चिट्ठीका जैसा जवाब आया, उसे याद करनेसे मेरी छाती काँपती है। अब मैं क्या लिखनेका साहस कर सकती हूँ?

निर्मल—वह चिट्ठी तो विवाहके लिये लिखी थी।

चञ्चल—इस बार किसके लिये लिखूँगी?

निर्मल—यदि महाराणा कुछ भी न बोलें; तो पीहरमें जाकर रहनाही अच्छा है। औरङ्गज़ेब अब इधर न आवेगा; इसीलिये पत्र लिखनेको कहती थी। बापके घरके सिवा और उपायही क्या है?

चञ्चल उत्तर देना चाहती थी, किन्तु मुँहसे उत्तर बाहर न निकला—चञ्चल रोने लगी। निर्मल यह बात कहकर लजा गयी।

चञ्चल आँसू पोंछकर लज्जावश कुछ हँसी, निर्मल भी हँसी। निर्मल हँसकर बोली—"मैं दिल्लीके बादशाहके सामने कभी नहीं लजाई। तुम्हारे सामने लजाई—यह दिल्लीके बादशाहके लिये बड़ीही लज्जाकी बात है। एक बार इसलिये बेगमका मुन्शीपना देखो। दवात क़लम लेकर लिखना शुरुकरो—मैं बोलती जाती हूँ।"

चञ्चलने पूछा—किसको लिखूँगी—मा को या बाप को?

निर्मल बोली—"बापको।"

चञ्चलने लिखा—"इस समय मुग़ल बादशाह राजपूतोंके हाथमें है। वह पराजित करके राजपूतानेसे भगा दिया गया है। अब वह मुझपर बल प्रकाश करेगा, ऐसी सम्भावना नहीं है। अब आपकी सन्तानके प्रति आपकी क्या आज्ञा है? मैं आपके ही आधीन हूँ—"

निर्मल बोली—"महाराणाके आधीन नहीं?"

चञ्चल बोली—"दूर हो पापिष्ठा!" चञ्चलने वह बात लिखी नहीं।

निर्मल बोली—"तब लिखो, कि मैं और किसीके भी आधीन नहीं हूँ।" अगत्या चञ्चलने यही बात लिख दी।

चिट्ठी पूरी हो जानेपर निर्मलने कहा—"अब इसे रूपनगर भेज दो।" चिट्ठी रूपनगर भेज दी गयी। रूपनगरके रावने जवाब दिया, "मैं दो हज़ार फ़ौज लेकर उदयपुर आता हूँ। राणाको पर्व्वत-द्वार खोल रखनेको कह देना।"

इस आश्चर्य्य उत्तरका अर्थ चञ्चल और निर्मल कुछ न समझ सकीं। उन लोगोंने विचार किया कि, जब इसमें फ़ौजकी बात है तब राणाजीको सूचना देनी चाहिये। निर्मलने माणिकलालके पास यह खबर भेज दी।

राणाजी भी इसी तरहके गोलयोगमें पड़े थे। वे चञ्चलकुमारीको भूले नहीं थे। उन्होंने भी विक्रमसिंह सोलङ्कीको चिट्ठी लिखी थी। पत्रका मर्म चञ्चलके विवाहकी बात थी। उसमें उन्होंने उनके आपकी बात याद दिला दी थी और यह भी याद दिला दी थी कि जिस समय राजसिंहको उपयुक्त पात्र समझूँगा तब आशीर्व्वाद सहित कन्यादान कर दूँगा। राणाने पूछा "आपकी क्या इच्छा है?"

इस चिट्ठीके जवाबमें विक्रमसिंहने लिखा, "मैं दो हज़ार सेना लेकर आता हूँ। रास्ता छोड़ दीजिये।"

राजसिंह भी चञ्चलकी तरह इस समस्याको न समझ सके। मनमें कहने लगे, "केवल दो हज़ार

सवारोंसे विक्रम मेरा क्या करेगा ? मैं सतर्क हूँ ।" अतएव उन्होंने विक्रमके लिये राह छोड़ देनेको आज्ञा प्रचार कर दी ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

सन्धि भङ्ग ।

औरङ्ग़ज़ेबने उदयसागरके तीर पर आकर डेरे डाले । फ़ौजने खाना पीना किया । सिपाहियों और वाहनोंकी जान बची । सिपाहियों में नाच गाना और नाना प्रकारके रसिकताके काम आरम्भ हुए ।

उधर बादशाह रङ्गमहलमें गया । ज़ेब-उन्निसा हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी । बादशाहने कहा "तुमने जो कुछ किया है, वह अपनी इच्छासे नहीं किया ; इसलिये मैंने तुमको माफ़ किया । किन्तु ख़बरदार ! शादीकी बात कहीं ज़ाहिर न होने पावे ।"

इसके बाद बादशाह उदयपुरी बेगमसे मिला । उदयपुरीने उसके अपमानकी बात आद्योपान्त कह सुनाई । एक बात की दश बात लगाई । बादशाह क्रोधके मारे आग बबूला हो गया ।

इसके अगले दिन औरङ्गज़ेबने दरबार किया। एकान्तमें मुबारकको बुलाकर कहा—"मैंने तुम्हारे सारे क़सूर माफ़ किये; क्योंकि तुम मेरे जमाई हो। मैं जमाईको नीचे पदपर नहीं रख सकता। मैंने तुमको दो हज़ारी मन्सबदार बनाया। परवाना निकल आयगा। किन्तु इस समय तुम यहाँ रह नहीं सकते; क्योंकि शाहज़ादा अकबर मेरी तरह पहाड़के बीचमें जालमें फँसा है। उसके उद्धारके लिये दिलेरखाँ सेना लेकर गया है। उस जगह तुम्हारे जैसे योद्धाके साहाय्य की दरकार है। तुम आज ही रवानः हो जाओ।"

मुबारक इन सब बातोंसे खुश न हुए; क्योंकि वह जानते थे कि, औरङ्गज़ेबका आदर शुभकर नहीं। किन्तु मनमें दुःखित न हुए। अत्यन्त विनीत भावसे बादशाहसे रुख़सत होकर, दिलेरख़ाँके पास जानेका उद्योग करने लगे।

उनके जाने बाद, औरङ्गज़ेबने एक विश्वासी दूतके द्वारा दिलेरख़ाँके पास एक चिट्ठी भेजी। उसमें लिख दिया, "मुबारकको तुम्हारे पास भेजता हूँ। वह एक दिन भी न जी सके, ऐसा उपाय करना। युद्धमें मर जाय तो भला, अगर युद्धमें न मरे तो और किसी तरह खपा देना।

दिलेरख़ाँ मुबारकको पहचानते नहीं थे किन्तु उन्होंने

बादशाहकी आज्ञा पालन करनेका दृढ़ विचार कर लिया।

इसके बाद औरङ्गज़ेबने दरबारमें बैठकर अपना अभिप्राय प्रकाशित किया। बोला—"मैंने जालमें फँसकर सन्धि की है। वह सन्धि रक्षणीय नहीं। एक क्षुद्र भुँइहार राजाके साथ बादशाहकी सन्धि कैसी? मैंने सन्धि-पत्र फाड़ दिया है। राजसिंहने रूप-नगरी मेरे पास वापिस नहीं भेजी। रूपनगरीके पिताने उसे मुझे दिया था। उसपर राजसिंहका क्या अधिकार है? उसके लौटाये बिना, मैं राजसिंहको माफ़ नहीं कर सकता। अतएव युद्ध जिस भाँति चलता था, उसी भाँति चलेगा। राणाके राज्यमें गाय देखतेही मुसल्मान मार डालें। देवालय देखतेही तोड़ डालें। जजिया सभी जगहसे वसूल की जावे।"

यह हुक्म जारी हो गया। उधर दिलेरखाँ मारवाड़ होकर उदयपुर जाने लगे। राजसिंहको यह समाचार मिल गया। उन्होंने अपना आदमी बादशाहके पास भेजा और पूछा—"अब युद्ध क्यों?" औरङ्गज़ेबने उत्तर दिया—"भुइँहारके साथ बादशाहकी सन्धि कैसी? जब तक तुम मेरी रूपनगरी बेगमको मेरे पास न भेज दोगे, तबतक मैं तुम्हें माफ़ न करूँगा।" यह बात सुनतेही राजसिंह हँसकर बोले,—"अभी तो मैं जीता

हूँ।" रूपनगरीका अपहरण औरङ्गज़ेबके हृदयमें शेल के समान खटकता था। उसने राजसिंहसे अपनी अभीष्ट-सिद्धिकी सम्भावना न देखकर, रूपनगरके राजा को चिट्ठी लिखी—"तुम्हारी कन्या अब तक भी मेरे पास नहीं आयी है। उसे जल्दी मेरे पास हाज़िर करो—नहीं तो मैं रूपनगरका नाम निशान भी न रक्खूँगा।" औरङ्ग़ज़ेबके मनमें भरोसा था कि बापके ज़िद करने पर, चञ्चलकुमारी मेरे पास आनेको राज़ी हो जायगी। चिट्ठी पाकर विक्रमसिंहने जवाब दिया—"मैं दो हज़ार फ़ौज लेकर जल्दी ही आपके हुजूरमें हाज़िर होता हूँ।"

औरँगज़ेबने मनमें सोचा, "फ़ौज क्यों?" फिर मन में समझा कि, शायद विक्रमसिंह मेरी मददके लिये फ़ौज लेकर आता है।

बारहवाँ परिच्छेद।

फिर युद्ध।
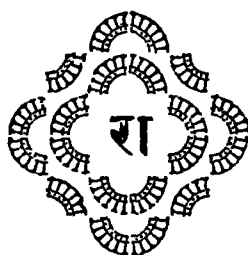
राजसिंह राजनीतिमें अद्वितीय पण्डित थे। उन्होंने विचार लिया था कि जब-तक मुग़ल हमारे राज्यसे अपनी सारी सेना लेकर दूर न निकल जायगा, जब तक मेवाड़की सीमाके बाहर न हो जायगा, तब तक हम अपने तम्बू न उखाड़ेंगे। राजसिंहने अपने विचारानुसार डेरे न उठाये। सारी राजपूत-सेना अपनी जगह पर डटी रही। इसी बीचमें ख़बर आयी कि, विक्रम सिंह दो हज़ार सेना लेकर रूपनगरसे आते हैं।

एक सवारने आगे आकर दूतके रूपमें राजसिंहके दर्शनकी कामना प्रगट की। राजसिंहकी आज्ञा पाकर पहरेवाला उसे अन्दर ले आया। दूतने प्रणाम करके कहा कि, विक्रम सोलङ्की आपके दर्शनके लिये सैन्य आते हैं।

राजसिंह बोले—"अगर वह तम्बूके भीतर आकर मिलना चाहते हैं तो अकेले आवें। अगर ससैन्य मिलना चाहें तो बाहर रहें—मैं सेना लेकर आता हूँ।"

विक्रमसिंह अकेले तम्बूमें आकर मिलने पर राज़ी हो गये। उनके आने पर,राजसिंहने उन्हें सादर आसन प्रदान किया। विक्रमसिंहने राणाको कुछ नज़र दी। उदयपुरके राणा राजपूत-कुलके प्रधान थे इसीसे उन्हें यह नज़र दी गयी; लेकिन राजसिंह नज़र न लेकर बोले, "आपको यह नज़र मुग़ल बादशाहको ही देनी चाहिये।"

विक्रमसिंह बोले—"महाराणा राजसिंहके जीवित रहते, कोई राजपूत मुग़ल बादशाहको नज़र न देगा। महाराज! मुझे क्षमा कीजिये। मैंने आपको न जान कर ही वैसी चिट्ठी लिखी थी। आपने मुग़लको जैसा शासित किया है, उससे मालुम होता है कि अगर सारा राजपूताना आपके आधीन होकर काम करे, तो मुग़ल-साम्राज्य सम्मूल नष्ट हो जावे। मैं आपको केवल नज़र देने ही नहीं आया हूँ। मैं और भी दो सामग्री देने आया हूँ। एक मेरे दो हजार सवार; द्वितीय, मेरी यह तलवार—आज भी इन भुजाओंमें कुछ बल है। आप मुझे जिस काम पर नियुक्त करेंगे, शरीर पतन करके भी उस कामको पूरा करूँगा।"

राजसिंह अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। वे अपना आन्तरिक आनन्द विक्रमसिंहको जना कर, बोले,—"आज आपने सोलङ्कीकी सी बात कही है। दुष्ट मुग़-

लने सन्धि करके मुझसे छुटकारा पाया है। अब छुट-
कारा पाकर कहता है कि मैंने सन्धि नहीं की। अब
दिलेरख़ाँ फ़ौज लेकर शाहज़ादे अकबरके उद्धारके लिये
आता है। दिलेरख़ाँको राहमें ही रोकना होगा। उसके
अकबरके साथ मिलकर युद्ध करनेसे कुमार जयसिंह
पर विपद् आवेगी; इसलिये मैंने गोपीनाथ राठौरको
भेजा है। किन्तु उसके पास अल्प सेना है। अब मैं
अपनी फ़ौजसे कुछ आदमी अपने सुदक्ष सेनापति माणि-
कलालके आधीन भेजूँगा। लेकिन औरङ्गज़ेब अभी
दूर नहीं गया है; अतः मैं आप इस जगहसे हट नहीं
सकता। मेरी इच्छा है कि, आप अपनी अश्वारोही
सेना लेकर उसी युद्धमें चले जायँ। आप तीन जने
मिलकर दिलेरख़ाँको राह में ही संहार कर डालें।

विक्रमसिंह बोले "आपकी आज्ञा शिराधार्य।"

इतनी बात कहकर विक्रम सोलङ्कीने युद्धमें जानेके
लिये बिदा ली। चञ्चलकुमारीके सम्बन्धमें कोई बात
न हुई।

उपसंहार।

गोपीनाथ राठौर, विक्रमसिंह सोलङ्की और माणिकलालने राहमें ही दिलेर खाँके छक्के उड़ा दिये। उसकी फ़ौज कुछ तो मारी गई और कुछ भाग गयी। केवल मुबारक अली मैदानसे न हटे। दरिया बीबीने पहाड़ परसे निशाना ताककर गोली मारी। उससे वे फिर न उठे। दरिया भी उस दिन पीछे दुनियामें दिखायी न दी। मुबारकके मरनेकी ख़बर सुनकर ज़ेब-उन्निसा बहुत कुछ रोई पीटी। उसने उस दिनसे फ़कीरनीका भेष बना लिया। संसारका सब सुख, अच्छा खाना, पीना, पहनना सभी छोड़ दिया।

उधर विक्रमसिंह शाही फ़ौजको हराकर राणाके पास पहुँचे। राणाने उन्हे छातीसे लगा लिया। पीछे सब उदयपुर गये। विक्रमसिंहने अपनी कन्याके विवाह की बात चलायी। बोले, "आप ही उसके उपयुक्त वर हैं। अब विवाह होनेमें क्या विलम्ब है?"

औरङ्गज़ेब फिर भी फ़ौज लेकर चढ़ आया। राजसिंहनें उसे फ़िर परास्त किया और वह भाग गया।

यह युद्ध चार वर्षतक चलता रहा, किन्तु अन्तमें मुगलही हारे। लांचार होकर औरँगज़ेबने सचमुचको सन्धि की। राणाज़ीने जो जो चाहा औरङ्गज़ेबने वही वही स्वीकार किया। मुग़ल बादशाहको जैसी शिक्षा इस बार मिली वैसी कभी न मिली।

शुभ दिन, शुभ लग्नमें चञ्चलकुमारी और राजसिंह का विवाह हुआ। विक्रमसिंहने बड़ी प्रसन्नताके साथ कन्यादान किया। बोले, "यह जोड़ी युग युग जीवे।"

महाराणाने लाखों रुपया दान पुण्य किया। उस दिनके दान से हज़ारों कङ्गाल मालदार हो गये। राज-सिंहने चञ्चलकुमारी अपनी प्रधाना महिषी बनायीं। उधर माणिकलालको प्रधान सेनापतिका पद दिया। निर्मल और माणिकलाल भी सुखसे रहने लगे।

जिस तरह इन युगल जोड़ियोंके बुरे दिन कट कर भले दिन आये, भगवान सबके दिन उसी तरह फेरे।

समाप्त।
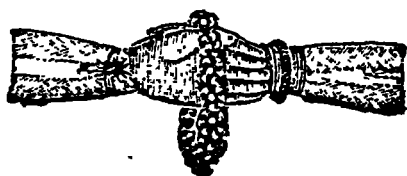
हिन्दी संसारमें नई पुस्तकें।

स्वास्थ्यरक्षा।

(दूसरी आवृत्ति)

यह वही पुस्तक है जिसकी तारीफ़ समस्त हिन्दीके समाचार-पत्रों और देशके धुरन्धर विद्वानोंने मुक्तकण्ठसे की है। इस बड़ी पुस्तककी सूची इस छोटेसे विज्ञापनमें लिखना गागरमें सागर भरना है। इसमें हज़ारों अनमोल विषय हैं। आजतक इसके जोड़की किताब हिन्दीमें नहीं छपी। कामशास्त्र, कोकशास्त्र, चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, भावप्रकाश आदि ऋषि मुनि प्रणीत अनेक ग्रन्थों और यूनानी तथा डाक्टरीकी अच्छी अच्छी पुस्तकों को मथकर यह अपूर्व्व ग्रन्थ तैयार किया गया है। इस ग्रन्थका एक एक विषय लाख लाख रुपयोंको भी सस्ता है। इसमें जो आनन्द और मज़ेकी बातें कूट कूटकर भरी गयी हैं, वह हज़ारों लाखों रुपया खर्च करने वाले सेठ साहूकारों और राजा महाराजाओंको भी दुर्लभ हैं। हम विश्वास दिलाते हैं, कि इस किताबको नियम

पूर्व्वक, आदिसे अन्ततक, पढ़नेवाला और इसमें लिखे विषयों पर अमल करने वाला, सदा सुखी और आरोग्य रहकर, चैनसे ज़िन्दगी बिता सकता है। यही नहीं—इसका बाँचनेवाला अपनी प्राण-प्यारीका प्यारा बनकर, संसारका आनन्द लूटकर सुन्दर बलवान और निरोगी सन्तान पैदा कर सकता है। कहते हैं "पुनर्दारा पुनर्वित्तं न शरीरं पुनः पुनः।" अर्थात् स्त्री और धन फिर भी हो सकता है; किन्तु शरीर फिर नहीं हो सकता। संसारमें शरीरसे बढ़कर कुछ नहीं है; यदि शरीरका सच्चा सुख चाहते हो तो "स्वास्थ्यरक्षा" अवश्य पढ़ो। जो इस पुस्तक को पास रक्खेगा और इसमें लिखे नियमों पर चलेगा उसे कदापि वैद्य हकीमकी खुशामद न करनी पड़ेगी। जो बिना गुरुके वैद्यक और कोकशास्त्रके गूढ़ विषयोंको सीखना चाहते हैं, जो संसारका सच्चा सुख भोगना चाहते हैं, जो बहुत दिन-तक जीना चाहते हैं—उन्हें यह पुस्तक अवश्य ही मँगाकर देखनी चाहिये। भाषा इसकी बहुतही सहज और सरल रक्खी गयी है। थोड़ीसी हिन्दी जाननेवाला भी इसको बखूबी समझ सकता है। सेठ साहूकार, गुमाश्ते, मास्टर, विद्यार्थी, बालक, बूढ़े, नर और नारी, शिक्षित, अर्द्धशिक्षित, हाकिम, अहलकार, राजा महा-राजा सबके लिये यह पुस्तक अमृतका भण्डार है। इस

पुस्तकमें अनमोल विषय लिखे गये हैं। ऐसी अनुपम पुस्तकका दाम यदि एक अशर्फ़ी भी रक्खा जाता, तोभी अधिक न होता। परन्तु हमारा और देशके विद्वानोंका मनशा है, कि यह पुस्तक गृहस्थ मात्रके घर घरमें जा पहुँचे और अमीर ग़रीब सभी इसका आनन्द लूटें; इसी ग़रज़से पाँचों भाग सहित बड़े आकारको २२२ सफ़ोंकी किताबका दाम १॥) रक्खा गया है। डाक महसूल।) एक पैसेका कार्ड भेजनेसे घर बैठे १॥) में मिल जाती है। छपाई इतनी सुन्दर है कि आजतक हिन्दीमें इससे बढ़िया कोई पुस्तक नहीं छपी। बहुतही फैशनेबिल खूबसूरत और मज़बूत कपड़ेकी जिल्दवालीका दाम २) है डा० म०।)

अंगरेजी शिक्षा।

पहिला भाग।

आजतक बिना उस्ताद के अँगरेज़ी सिखानेवाली जितनी पुस्तकें निकली हैं उनमें यह सबसे उत्तम है। सबसे उत्तम होनेके कारण ही आजतक इसकी ११ हज़ार कापियाँ निकल गईं और अनेक विद्वानोंने इसकी तारीफ़ दिल खोलकर की है।

इस किताबके पढ़नेसे थोड़ी सी हिन्दी या देवनागरी जाननेवाला बिना गुरुके अँगरेज़ी अच्छी तरह सीख

सकता है। इसके पढ़ने से दो तीन महीनोंमें ही साधारण अँगरेज़ी बोलना, तार लिखना, चिट्ठी पर नाम करना, रसीद, नोटिस, हुण्डी, वगैरः लिखना बड़ी आसानी से आ जाता है। किताब की छपाई सफ़ाई ऐसी मनमोहिनी है कि किताब को देखते ही छाती से लगानेको जी चाहता है। यह किताब एक अनुभवी (तजुरबेकार) हेडमाष्टर की बनायी हुई है; इसीसे यह इतनी उत्तम बनी है कि बूढ़ा आदमी भी बुढ़ापेमें अँगरेज़ीकी साध मिटा सकता है।

जो शख्स अपनी बढ़ी उम्रमें भी अँगरेज़ी सीखना चाहते हैं, जो बालक, बूढ़े, या जवान बिना गुरुके घर में बैठकर अँगरेज़ी सीखना चाहते हैं, जो माता पिता अपने बालकों को बहुत ही थोड़े दिनोंमें अँगरेज़ी सिखाया चाहते हैं, जो उस्ताद अपने शागिर्दों को थोड़े दिनों में ही अँगरेज़ी सिखाकर नामवरी लूटना चाहते हैं, उन सबको यह किताब बिना विलम्ब ख़रीद लेनी चाहिये।

यह किताब व्योपारियों, रेलमें काम करनेवालों, डाकख़ानेमें काम करनेवालों, कचहरियोंमें काम करनेवालों, मिलोंमें मजदूरी करनेवालों, अँगरेज़ी स्कूलोंकी लोअर क्लासोंमें पढ़ने वालोंके बड़े ही काम की है। जिन गाँवोंमें अँगरेज़ी पढ़ानेके लिये मदरसे नहीं हैं

वहाँके बालकोंके लिये तो यह बड़ाही उत्तम और सस्ता उस्ताद है। स्कूलमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको रोज़मर्रहके कामके विषय, मसलन तार लिखना, हुण्डो रसीद लिखना, चिट्ठियोंपर ऐड्रेस लिखना जो मिडिल क्लासतक नहीं मालुम होते, एक दो महीने में ही अपने आप आजाते हैं। स्कूलमें पढ़नेवालों और स्कूलोंमें न पढ़नेवालों, पर अँगरेज़ी सीखने की इच्छा रखनेवाले लोगोंको यह पुस्तक अवश्य ही खरीद लेनी चाहिये। यदि काम धन्धेसे छुट्टी पाकर वे एक घण्टे रोज़ भी इस किताब पर ध्यान देंगे तो विना कष्टके काम लायक़ अँगरेज़ी जान जायँगे। इतनी उत्तम किताब का दाम जिसमें १५० सफे हैं हमने लागत मात्र ॥) आठ आना रक्खा है। एक पैसेके कार्डपर लिख भेजनेसे ⁄) दो आने डाकखर्चमें यानी कुल ॥⁄) में घर बैठे पुस्तक पहुँच जाती है।

अंगरेजी शिक्षा।

दूसरा, तीसरा, चौथा भाग।

इन तीनों भागोंमें अँगरेज़ी व्याकरण बहुत ही उत्तमतासे समझाया है। व्याकरण (Grammar) कैसा कठिन है वह पढ़नेवालों से छिपा नहीं है। लेकिन इन तीनों भागोंके लेखक ने इन भागोंमें अँगरेज़ी

व्याकरण (ग्रामर) और चिट्ठी पत्री लिखनेके तरीके इस उत्तमतासे समझाये हैं कि आजतक किसी किताब में नहीं समझाये गये हैं। इन तीनों भागोंमें अँगरेज़ी ग्रामर ख़तम कर दी गयी है। हरेक विषयको खूब उदाहरण (Examples) दे देकर सरल हिन्दी में समझाया है। व्याकरण के कठिन से कठिन विषय जो मिडिल तो क्या ऐन्ट्रेन्स या मैट्रीक्युलेशन क्लास में भी मुश्किल से आते हैं वही ऐसी सरलता से समझाये हैं मानों एक बड़ा पुराना अनुभवी उस्ताद सामने बैठ दिल खोलकर समझा रहा है। चिट्ठियाँ लिखने की ऐसी ऐसी रीतियाँ ऐसी कारीगरीसे दिखाई हैं कि छोटे छोटे बालक धड़ाधड़ अँगरेज़ी चिट्ठियाँ लिखने लगते हैं। बालकों से लेकर आफिसोंमें काम करनेवाले बाबू तक इन तीनों भागोंसे असीम लाभ उठा सकते हैं। तीनों भागोंमें कोई ८०० सफे हैं। हरेक भागमें प्रायः २७० सफ़े हैं। छपाई सफ़ाई वही मन-मोहिनी है। तिसपर भी प्रत्येक भागका दाम एक एक रुपया है और डाकखर्च चार चार आना है। एक साथ चारों-भाग मँगानेसे डाकखर्चमें किफायत होगी। चारों भाग का दाम ३॥) है और डाकखर्च चारों भागोंका ॥।=) है लेकिन एक साथ मँगाने से हम चारों भाग मय डाक खर्च के ४) चार रुपये में घर पहुँचा देंगे।

हिन्दी बंगला शिक्षा ।

बँगला भाषा आजकल भारतकी सभी देशी भाषाओंसे ऊँचे दर्जे पर चढ़ी हुई है। बँगलामें अनेक प्रकारकी हज़ारों लाखों पुस्तकें हैं। इस वास्ते हर शख्सकी इच्छा रहती है कि हम बँगला सीखें। परन्तु आजतक ऐसी कोई पुस्तक नहीं निकली जिसके सहारे हिन्दी पढ़े लिखे लोग बँगला सीख सकें। हमने बँगला पढ़नेके शौकीनोंके लिये ही यह पुस्तक तय्यार कराई है। इस पुस्तकके सहारे हिन्दी जाननेवाला बखूबी, बिना उस्ताद के, दो महीनेमें ही बँगला अखबार, उपन्यास आदि पढ़कर अपनी इच्छा पूरी कर सकेगा। इसकी रचना परमोत्तम और छपाई सफाई मनमोहिनी है तिसपर भी प्रायः २०० सफोंकी पुस्तकका दाम ॥) आठ आना और डाकखर्च ≈) है। जो बँगला भाषाके अपूर्व्व रत्नोंको देखना चाहते हैं, जो अनेक भाषाओंके सीखनेके शौकीन हैं वे इसे अवश्य खरीदें।

बीरबल की हाज़िरजवाबी
और
चतुराई ।

अँगरेज़ी में एक कहावत है कि "खुश रहो तो सदा तन्दुरुस्त रहोगे"। मतलब यह है कि सदा निरोग और बलवान रहने के लिये मनुष्य को खुश रहनेकी ज़रूरत है। काम धन्धे से छुट्टी पाकर चित्त प्रसन्न करनेवाली पुस्तकें देख कर दिल बहलाना बहुत ही अच्छा है। इस पुस्तक में ऐसे ऐसे चुटकुले और बढ़िया किस्से छाँट छाँट कर लिखे गये हैं कि पढ़नेवालोंको कोरा आनन्द आनेके सिवाय लाख लाख रुपये की नसीहतें भी मिलती हैं। मित्र मण्डली हँसी के मारे लोट पोट होने लगती है। उदास चित्त लोगोंके दिलकी कली कली खिल उठती है। पुस्तक एक दफे देखने ही लायक़ है। यह पहिला भाग है। अगर ग्राहक अनुग्राहक महाशय इस भाग को खरीद कर हमारा उत्साह बढ़ायेंगे तो हम दूसरा भाग भी उनको भेंट करेंगे। इस भागमें ८४ सफे हैं। अक्षर साफ बम्बई के समान मोटे मोटे हैं। तिस पर भी दाम केवल ।) मात्र है। पुस्तकें थोड़ी रह गई हैं। देर न करनी चाहिये।

अक़्लमन्दीका खजाना।

इस पुस्तकका जैसा नाम है वैसाही गुण है। सच-मुचही यह नीति, चतुराई और अक़्लमन्दीका ख़जाना है। इस पुस्तकके पढ़ लेने पर भी कौन मनुष्य मूर्ख रह सकता है? इसमें दुनिया भरके अक़्लमन्दोंकी नीति और चतुराईकी बातें कूट कूटकर भरी हैं। चीन, जापान, हिन्दुस्तान, इँगलिस्तान और ईरान आदि सभी देशों की नीति भरी है। जो दुनिया में किसीसे धोखा खाना नहीं चाहते, जो सभा चातुरी सीखा चाहते हैं, जो बड़े बड़े विद्वानोंमें अक़्लमन्द बनना चाहते हैं, जो गृहस्थीका स्वर्ग-सुख लूटना चाहते हैं। जो स्वर्गमें जानेकी इच्छा रखते हैं, जो घर गृहस्थी की कलह और तकरार मिटाना चाहते हैं, जो अपनी स्त्री और पुत्रोंको अपने हुक्ममें रखना चाहते हैं, जो स्त्रियोंको पतिव्रता और पुत्रोंको माता पिताका भक्त बनाया चाहते हैं, जो नौकरोंको अपना आज्ञाकारी बनाया चाहते हैं, जो वर्णाश्रम धर्मके तत्वको जानना चाहते हैं, जो स्त्री पुरुष के धर्म जानना चाहते हैं, जो राज-नीतिके गूढ़ विषयोंको जानना चाहते हैं, जो संसारमें सुखसे ज़िन्दगी बिताकर मरना चाहते हैं, जो अपनी औलाद को सुमार्गी बनाया

चाहते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य खरीदनी चाहिये। हर मनुष्य को चाहें वह गृहस्थ हो, चाहे साधु सन्यासी हो, चाहें वकील बारिस्टर हो, चाहे सेठ साहूकार और नौकरी करनेवाला हो यह पुस्तक और स्वास्थ्यरक्षा अवश्य पढ़नी पढ़ानी सुननी सुनानी चाहियें। जिनमें ज़रा भी ज्ञान हो उन्हें संसारका आनन्द उठाने केलिये ये दोनों पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहियें। हिन्दी भाषा इतनी साफ़ और सरल है कि थोड़ा पढ़ा बालक भी इसकी अनमोल बातोंको समझ सकता है। छपाई सफाई मनमोहिनी है। दाम प्रायः तीन सौ सफोंकी पुस्तकका १) रुपया डाकखर्च ।) आना है।

गुलिस्ताँ।

यह वह पुस्तक है जिसकी प्रशँसा तमाम जगत्में हो रही है। वलायत फ्रान्स, चीन, जापान और हिन्दुस्तानमें सर्व्वत्र इस पुस्तक के अनुवाद हो गये हैं। लेकिन अफसोसकी बात है कि बिचारी हिन्दीमें इसका एक भी पूरा अनुवाद नहीं हुआ। इसके रचयिता शेख़ सादीने इसमें एक एक बात एक एक लाख रुपये की

लिखी है। वास्तवमें यह पुस्तक अनमोल है। इसी कारणसे यह पुस्तक यहाँ मिडिल, एन्ट्रेन्स, एफ० ए० बी० ए० तकमें पढ़ाई जाती है। इसकी नीतिपर चलने वाला मनुष्य सदा सुखसे रहकर जीवनका बेड़ा पार कर सकता है। मनुष्य मात्रको यह पुस्तक देखनी चाहिये। इसका अनुवाद बिलकुल सीधी सरल हिन्दीमें हुआ है। यह नयी चीज़ देखनेही योग्य है। इस पुस्तक में २०० सफे हैं तथा सफ़ाई और छपाई मनमोहिनी है तिस पर मूल्य १) रुपया और डाक महसूल ॥) आना रक्खा गया है।

कालज्ञान।

यह पुस्तक वैद्यों या वैद्यक विद्या से प्रेम करने वालों या उसका अभ्यास करनेवालों के बड़े ही काम की है। ऐसी ही पुस्तकों के सहारे वैद्य लोग पहिले नाम और धन कमाते थे। यह बातें संस्कृतके बड़े बड़े ग्रन्थों में होने से आजकल के अधिकाँश साधारण वैद्य इस विद्यासे कोरे रहते हैं। इस पुस्तक में वह विद्या है, जिस के सीखने के लिये यूनान का नामी हकीम हिन्दुस्तान आया था और इस विषय की मुख्य मुख्य बातों को तख़्ती पर लिख कर गले में लटकाये फिरता

था। वैद्यों को यह अपूर्व्व पुस्तक अवश्य गलेका हार बना कर रखने योग्य है। चिकने काग़ज़ पर मनमोहिनी छपाई सहित ७६ सफे की पुस्तक का दाम ।) डाक खर्च ≈)

मानसिंह
और
कमलादेवी।

यह एक अपूर्व्व चित्ताकर्षक उपन्यास है। एकबार पढ़ना शुरू करके छोड़ने को जी नहीं चाहता। इसमें दिल्ली के बादशाह जहाँगीर और नूरजहाँ का प्रेम, शेरखाँ की बहादुरी, सामन्तसिंह की वीरता, मानसिंह का बादशाह अकबर की प्रेयसी कमलादेवी के साथ गुप्त प्रेम, हेमलता का पातिव्रत, बाँकेलाल की चातुरी, सदाशिव की धूर्त्तता और ज्योतिष का चमत्कार, अकबर के दरबारी बहरामखाँ, मुहब्बतखाँ आदि की आपस की चालबाज़ियाँ वगैरः देखने सुनने लायक हैं। आज तक ऐसा उपन्यास हिन्दी में नहीं निकला। उपन्यास के शौकीनों को यह उपन्यास एकबार अवश्य देखना चाहिये। भाषा इसकी बिलकुल सरल और रोचक है। छपाई भी ऐसी हुई है कि आप पुस्तक को

देखतेही छातीसे लगा लेंगी और लाचार होकर आपको अपने मुँहसे वाह वाह करनी पड़ेगी। पुस्तकमें २५६ सफे और मनमोहिनी छपाई होने पर भी इसका दाम केवल ॥) रक्खा गया है। डाक खर्च ।)

गल्पमाला।

हिन्दीमें बिल्कुल नयी पुस्तक।

यह पुस्तक हालही प्रकाशित हुई है। इसमें एकसे एक बढ़कर मनोरञ्जक और उपदेशपूर्ण दस कहानियाँ लिखी गयी हैं। पढ़ना आरम्भ करने पर छोड़नेको जी नहीं चाहता। हिन्दीके अच्छे अच्छे विद्वानोंने इस पुस्तककी प्रशंसा की है। पढ़ते समय कभी करुणाकी नदी लहराती है, कभी प्रेमका समुद्र उमड़ने लगता है, कभी पुण्यकी जय देख हृदयमे पवित्र भावका सञ्चार होता है और कहीं पापके कुफल को देखकर परमात्माके अटल न्यायकी महिमा प्रत्यक्ष आँखोंके आगे दिखायी देने लगती है। दस उपन्यासोंके पढ़नेसे जो आनन्द नहीं मिल सकता वह केवल एक गल्पमालाहीसे मिल सकता है।

बादशाह लियर।

यह विलायतके जगद्विख्यात कवि शेक्सपियर "किंग लियर" नामक नाटकका गद्यमें बहुतही मनोमोहन और रोचक अनुवाद है। एक बार पढ़ना आरम्भ करके बिना खतम किये पुस्तकके छोड़नेको जी नहीं चाहता। शेक्सपियरने बादशाह लियर और उसकी तीन कन्याओंका चरित्र बहुतही उत्तम रूपसे लिखा है। दिलखुश होनेके अलावः इस पुस्तकसे एक प्रकारकी शिक्षा भी मिलती है। पढ़ते पढ़ते कभी हँसी आती है कभी आँखोंमें आँसू भर आते हैं। पुस्तक देखनेही योग्य है। दाम ॥) डाक खर्च ।)

खूनी मामला।

बहुतही दिलचस्प अकचकाने वाली घटनाओंसे पूर्ण जासूसी उपन्यास है। जासूसकी चालाकियाँ कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। देखनेही लायक चीज़ है। दाम ।)

पता— हरिदास एण्ड कम्पनी।
२०१ हरीसन रोड, बड़ाबाजार,
कलकत्ता।